कविवर गोस्वामी जी का अवधी और ब्रज भाषा दोनों पर अधिकार है। विनय पत्रिका, कृष्ण गीतावली और कविता वली भाषा में लिखी गई हैं। रामलला नहछू, बरवै रामायण तथा रामचरित मानस की रचना अवधी भाषा में हुई है। कहीं-कहीं अरबी फारसी तथा संस्कृत शब्दों का उचित प्रयोग मिलता है। आपकी भाषा अलंकार युक्त एवं रसों से ओत प्रोत है। दोहा-चौपाई तथा अन्य छन्द का सुप्रयोग रामचरित मानस में मिलता है तथा कवित्तों का प्रयोग कवितावली में मिलता है। छन्द अलंकार और रसादि का उचित समावेश है। रस और अलंकार के सुन्दर समन्वय से कवि के दोनों पक्षों कला पक्ष तथा भाव पक्ष में निपुण होने का परिचय मिलता है।

तुलसीदास जी राम साहित्य के सम्राट हैं। उन्होंने राम के चरित्र का आधार लेकर मानव जीवन की जितनी व्यापक और उपयुक्त समीक्षा की है उतनी हिन्दी साहित्य के किसी कवि ने नहीं की। इस समीक्षा के साथ ही साथ उन्होंने लोक शिक्षा का भी ध्यान रक्खा और मानव जीवन में ऐसे आदर्शों की स्थापना की जो सार्वदेशिक और सर्वकालीन हैं और समय के प्रवाह में नहीं बह सकते उन्होंने इन आदर्शों की भित्ति पर अपनी भक्ति के स्वरूप की इतनी सुन्दर विवेचना की कि वह तत्कालीन धार्मिक अव्यवस्था में ही नहीं, अपितु आज भी भव-व्याकुल मानव का पथ प्रदर्शन कर रही है और युग युग तक करती रहेगी इस भक्ति में नीति की धारा भी मिली हुई है। इस प्रकार इस कवि ने विश्व-व्यापी विचारों की व्याख्या की। देखिये लोक हित की दृष्टि से जासु राज में प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरक अधिकारी। मित्रता का कितना सुन्दर आदर्श है

जे न मित्र दुख होई दुखारी, तिन्ह बिलोकत पातक भारी।
सामान्य नीति के आदर्श का सुन्दर रूप

धीरज धर्म मित्र अरु नारी, आपति काल परखिये चारी।

इस प्रकार इस सच्चे हृदय वाले रस मग्न कवि ने अपनी रचना के द्वारा मानव का कल्याण किया। नैराश्य और पीड़ित जनता को

क मार्ग दिखाकर उसको दारुन दुखो मे नचाया। केवल राम-रित मानस ने ही एक ऐसी भेंट हमको प्रदान की जो हमारी राजनैतिक माजिक आर्थिक नैतिक प्रवृत्तियों का महान कोष है। महाकवि सी की मृत्यू निम्न दोहे के अनुसार मानी जाती है।

संवत सोलह सै असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यौ शरीर॥

रामचरित मानस

वंदना

शब्दार्थ-सोरठा सिधि होई=सफल होना। गननायक देव-नाथ, गुणों के स्वामी। करिवर बदन=हाथी के जैसे सुन्दर मुख वाले गणेश जी। अनुग्रह=कृपा। सदन=घर।

व्याख्या-सोरठा जो सुमिरत ······ सुभगुन सदन

महाकवि गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरित मानस की रचना करते समय सभी देवी और देवताओं की स्तुति की। किन्तु सर्व-प्रथम आपने 'पहिले गणिपत पूजिये' वाले सिद्धान्त को लेते हुए गणेश जी ही को अपनी बदना का पात्र बनाया। गणेश जी की वंदना करते हुए तुलसीदास जी कहते है कि मैं उन बुद्धिमान और गुणों के आगार श्री गणेश जी की वंदना करता हूँ जिनके सुमिरने से सम्पूर्ण कार्य सफल होते है अतः हे गणेश जी! आप मेरे ऊपर कृपा करें।

शब्दार्थ मूक=गूगाँ। वाचाल=अधिक बोलने वाला। गिर=पहाड़। गहन=विशाल। कलिमल=कलियुग के पाप। सरोरुह=कमल। अरुन=लाल। उरधाम=हृदय में निवास।

व्याख्या० मूक होई ··········सागर सयन।

महाकवि तुलसीदास जी विष्णु भगवान की स्तुत करते हुए कहते है कि हे विष्णु भगवान! आपका शरीर नील कमल के समान तथा

नेत्र लाल कमल के सदृश्य सुन्दर हैं। आप क्षीर सागर के निवासी कलियुग के समस्त पापो और दुखों को निवारण करने वाले हैं। आपकी कृपा से गूगाँ बोलने लगता है तथा लङ्गड़ा बड़े २ विशाल पर्वत पर चढ़ जाता है अर्थात् आपकी दया से सब कुछ हो सकता है, असम्भव सम्भव मे परिणित हो जाता है। अतः हे भगवान विष्णु आप मेरे हृदय मन्दिर मे विराज कर मेरे ऊपर दया बनाये रक्खे।

शब्दार्थ इंदु=चन्द्रमा। कुन्द=कमल=उमारमन=शिवजी। मर्दन मयन=कामदेव का नाश करने वाले शिव भगवान।

व्याख्या कुन्द इन्दु ....मर्दन मयन

कविवर तुलसीदास जी शिव भगवान की बन्दना करते हुए कहते हैं कि हे पार्वती के स्वामी, कामदेव के संहारक, शिव भगवान! आपका शरीर कमल के सदृश्य कोमल तथा चन्द्रमाँ के सदृस्य श्वेत और उज्जवल है। आप दीनों पर सदा प्रेम करने वाले हैं अतः आप मेरे ऊपर भी कृपा दृष्टि कीजिए। अर्थात् मेरे सङ्कटों का निवारण कीजिए।

शब्दार्थ कृपासिन्धु=दया के आगार। बदऊं=वन्दना। कंज=कमल। मोहतम=मोहरूपी अन्धकार। रवि=सूर्य।

व्याख्या बदौं..................रविकर निकर।

यहाँ पर तुलसीदास जी अपने पूज्य गुरू नर हरिदास जी की बन्दना करते हुए कहते हैं कि मैं उन कृपासिन्धु गुरू के चरण कमल की वन्दना करता हूँ जो कि मनुष्य के रूप में भगवान के सदृश्य हैं तथा जिनकी वाणी सूर्य की किरणों के सदृश्य हृदय रूपी अन्धकार में प्रकाश फैलाती है तथा संसार के मोह रूपी अन्धकार को नष्ट कर नव ज्योति फैलाने वाली हैं।

सती मोह

शब्दार्थ-चौ• जगजननि=संसार की माता। कुम्भज ऋषि=अगस्त्य ऋषि। अखिलेश्वर=जगत पिता, परमेश्वर। गिरिनाथा=शिवजी। दक्षकुमारी=सती जी। तेहि=उसी। भन्जनि महि भारा=

पृथ्वी के दुःख रूपी बोझ को उतारने वाले। अविनाशी = अक्षय, विनाश न होने वाला।

व्याख्या—चौ० एक बार त्रेता युग··· ···· अविनासी।

प्रस्तुत चौपाइयाँ महाकवि तुलसीदास जी द्वारा रचित रामचरित मानस मे अवतरित हैं। यहाँ पर कवि तुलसीदास जी उस समय का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जब त्रेता युग मे शिव भगवान जगजननी सती जी के साथ अगस्त्य ऋषि के पास गये। ऋषि ने सम्पूर्ण जगत का स्वामी समझ कर उनका पूजन किया तथा उन्हे राम कथा विस्तार पूर्वक सुनाई जिसको शिवजी ने बड़े ही सुख पूर्व सुनी। फिर ऋषि ने शिव भगवान से हरि-भक्ति के विषय में पूंछा। तब शिव भगवान ने उनको भक्त समझकर हरि कथा सुनाई। श्री राम भगवान के गुणों की कथाएं कहते सुनते शिव जी कुछ दिनों वहाँ रहे फिर मुनि से विदा माँग कर अपने निवास स्थान को चले। साथ मे दक्ष कुमारी सती जी भी थीं।

उन्हीं दिनों पृथ्वी का भार उतारने के लिए श्री हरि (विष्णु भगवान) ने रघुवंश में राजा दशरथ के यहाँ अवतार लिया। यहाँ अविनाशी भगवान श्री रामचन्द्र जी उस समय पिताके बचन से राज्य का त्याग कर उदासी वेष बलकल वस्त्र धारण कर दण्डक बन मे विचर रहे थे।

अर्थ—दो० शिव भगवान हृदय में विचारते जा रहे हैं कि भगवान राम के दर्शन किस प्रकार हों। प्रभु ने अवतार गुप्त रूप से लिया है, मेरे जाने से सब लोग भगवान के अवतार को समझ कर उन्हें भगवान के रूप में जान जायेगें।

अर्थ—सो० भगवान शिव को इस बात का अत्यन्त दुख था कि भगवान के गुप्त रूप से अवतार के विषय को सब जान जायेगें किन्तु उनके नेत्र भगवान के दर्शनार्थ तरस रहे थे अतः उनके हृदय में बड़ा ही दुःख था तथा भगवान राम के दर्शन के लिए उनके हृदय में द्वन्द हो रहा था। लेकिन सती जी इस भेद को समझने में असमर्थ थीं।

शब्दार्थ- मनुज=मानव, मनुष्य। कर=हाथ। बिधि=ब्रह्मा। मूढ़=मूर्ख। बैदेही=सीता जी। इव=इस भाँति। बिपिन=बन। परम सुजान=परम ज्ञानी लोग।

व्याख्या-चौ० रावन मरन ...... दुःख ताकें।

प्रस्तुत चौपाइयों मे तुलसीदास जी भगवान राम के अवतार पर प्रकाश डालते हुए कह रहे हैं कि रावण ने अपनी मृत्यु का वरदान ब्रह्मा जी से मानव के द्वारा माँगी थी (क्योंकि उस समय रावण को यह विश्वास था कि मनुष्य जाति उसके लिए एक साधारण चीज है और उसकी विजय मनुष्य तो क्या देवताओं पर भी अङ्कित है) किन्तु विष्णु भगवान ने मनुष्य रूप में अवतार ले कर ब्रह्मा के वरदान को सत्य (अर्थात् पालन) किया। इधर शिव भगवान के हृदय में भगवान के दर्शन न होने के कारण दुःख था। कोई भी युक्ति सफल नहीं बैठती थी। अतः महादेव जी के हृदय में पछतावा था, और वे चिन्ता में डूबे हुए थे। उसी समय अज्ञानी मूर्ख रावण ने मारीच को साथ ले कर कपट मृग द्वारा सीता जी का छल से हरण किया। उसे रामचन्द्र जी की वास्तविकता शक्ति का कुछ ज्ञान न था। मृग का शिकार कर जब रामचन्द्र जी लछमण सहित आश्रम मे आये और उसे सीता रहित पाया तो उनके कमल नयन मे नीर भर आया। सीता जी के बिरह मे रामचन्द्र जी साधारण मनुष्य की भाँति व्याकुल है तथा दोनों भाई बन मे सीताजी को खोजते फिर रहे है जिनके कभी कोई संयोग, बियोग नहीं है उनमे प्रत्यक्ष रूप से बिरह दुःख देखा।

अर्थ-दो० भगवान राम की विचित्र लीला को केवल ज्ञानी और उन तक पहुँचने वाले ही जान सकते है उनकी लीला विचित्र है। साधारण मन्द बुद्धि वाले अज्ञानी मनुष्य जो कि मोह के आधीन अपने हृदय मे भिन्न बात समझते है।

शब्दार्थ हिय=हृदय, उर। हरषु=आनन्द। चिन्हारी=परिचय। पावन=पवित्र। मनोज=कामदेव। अजहुँ=अब तक। बिरज=माया रहित। अज=अजन्मा। अकल=अगोचर।

व्याख्या-चौ०—संभु समय…… ……रहित न रोकी।

कविवर तुलसीदास जी कहते हैं कि शिव भगवान ने उसी अवसर पर भगवान रामचन्द्र जी को देखा और उन्हें अत्यन्त हर्ष हुआ। शोभासिन्धु भगवान राम को शिवजी ने नैन भर कर देखा किन्तु अनुपयुक्त अवसर समझ परिचय नहीं किया। कामदेव को मर्दन करने वाले शिवजी अपने इष्ट राम को 'जगत को पावन करने वाले सच्चिदानन्द की जय हो', ऐसा कह कर चल दिये। कृपानिधान शिव पुनः पुनः हर्षातिरेक से पुलकित होते हुए सतीजी के साथ चले जा रहे थे। शिव भगवान की ऐसी दशा को देख कर सती के मन में सन्देह उत्पन्न हुआ। वे मन में सोचने लगीं कि शंकर जी की सारी जगत् वंदना करता है, वे जगत के ईश्वर हैं, देव, मानव मुनि सब उनको शीश झुकाते हैं किन्तु उन्होंने तो केवल एक राजपुत्र को सच्चिदानन्द पर धाम कहकर प्रणाम किया और उनकी शोभा देखकर वे इतने प्रेम मग्न हो गये कि अब तक उनके हृदय से प्रेम झलक रहा है, रोके नहीं रुकता।

अर्थ-दो० सती जी सन्देह के कारण अपने मन में सोचती हैं कि जो ब्रह्म सर्व व्यापक, माया रहित, अजन्मा, अगोचर निष्काम तथा अभेद है, जिसे वेद भी पूर्ण-रूपेण नहीं जानते क्या वह शरीर धारण कर मनुष्य हो सकता है ?

शब्दार्थ० अग्यइव=अज्ञानी की तरह। श्री पति श्री लक्ष्मी जी+पति=स्वामी=लक्ष्मी के स्वामी। असुरारी असुर+अरी= राक्षसों के शत्रु। मृषा=झूठ, असत्य। प्रबोध=ज्ञान। विमल= स्वच्छ।

व्याख्या-चौ० विष्णु जो सुर ‥‥ ‥मुनि धीरा।

प्रस्तुत चौपाइयों में तुलसीदास जी ने सती जी के हृदय में भ्रम पूर्ण सन्देह का रूप प्रस्तुत किया है सती जी मन में सोचती हैं कि देवताओं के हित के लिए मनुष्य रूप धारण करने वाले, शिव के सदृश्य ही सर्वज्ञ, ज्ञान के आगार, लक्ष्मी जी के स्वामी तथा असुरों

के शत्रु विष्णु क्या अज्ञानी के सदृश्य स्त्री की खोज करेंगे ? फिर सन्देह उठता है कि शिव भगवान सर्वज्ञ हैं, सब को विदित है अतः उनके वचन भी झूठे नहीं हो सकते। इस प्रकार उनके हृदय में सन्देह का निवारण नहीं हुआ। सतीजी ने अपने सन्देह (भ्रम) को शिव के सामने प्रगट नहीं किया किन्तु अन्तर्यामी शिव भगवान ने सब कुछ जान लिया और फिर वह बोले हे सती ! तुमको स्त्री स्वभाव के सदृश्य सन्देह नहीं करना चाहिए। जिनकी कथा तुम्हें अगस्त्य ऋषि ने सुनाई और मैंने उनका गान किया ये वही मेरे आराध्य और इष्टदेव श्री रघुवीर जी हैं। इनकी सेवा ज्ञानी मुनि सदा किया करते हैं।

व्याख्या—छन्द ज्ञानी, मुनि, योगी, और सिद्ध सतत् निर्मल तथा निष्काम हृदय से जिनका ध्यान करते हैं तथा वेद पुराण और शास्त्र 'नेति-नेति कहकर जिनकी कीर्ति गाते हैं, उन्हीं सर्व-व्यापक, समस्त ब्रह्माण्डों के स्वामी, माया पति, परम स्वतन्त्र, ब्रह्मरूप भगवान राम ने अपनी इच्छानुकूल रघुकुल में मणि रूप में अवतार लिया है।

अर्थ—सो० अनेक बार समझाये जाने पर भी सती के हृदय में शिव का कोई उपदेश नहीं बैठा, तब महादेव जी मन में भगवान की लीला को जान कर मुसकराते हुए बोले

शब्दार्थ बट छाँही=बड़ वृक्ष की छाँह। दच्छसुता=सती जी। साखा=विस्तार। कल्यान=शु० रूप• कल्याण=मङ्गल।

व्याख्या—चौ० जौ तुम्हरे······ ···सुख धामा।

सन्देह निवारण के लिए शिवजी ने सती जी से राम की परीक्षा लेने के लिए कहा कि अगर अधिक सन्देह है तो जाकर स्वयं परीक्षा क्यों नहीं लेती। तुम्हारे लोटने की प्रतीक्षा में मैं इस बड़ की छाँह में बैठा रहूँगा। विवेक द्वारा अपना भ्रम दूर करना। शिवजी की आज्ञा शिरोधार्य कर सती जी वहाँ से चलीं और मन में सोचने लगी कि क्या करू ? अर्थात् किस प्रकार परीक्षा लूँ ? इधर शिव ने अनुमान किया कि अब दक्षसुता सती जी का कल्याण नहीं है। जब मेरे सम-

आने पर भी भ्रम दूर नहीं हुआ तब तो विधाता ही उल्टे हैं। जो कुछ राम भगवान ने रचा है वही होगा। तर्क द्वारा कौन विस्तार बढ़ाये। मन में ऐसा कहकर शिव जी हरि भगवान का नाम जपने लगे। इधर सती जी सुख के धाम रामचन्द्र जी की तरफ गयीं।

अर्थ-दो० सतीजी पुनः पुनः हृदय में विचार कर तथा सीताजी का रूप धारण कर रामचन्द्र जी के आने वाले मार्ग से चलीं।

शब्दार्थ भ्रम=असत् में सत् का विश्वास हो जाना जैसे रस्सी में साँप का निश्चय होना। मतिधीर=धीर बुद्धि वाला। अन्तर-जामी=हृदय तक तह लगाने वाला। पानि-शु० रूप० पाणि=हाथ बिपिन=बन।

व्याख्या-चौ० लछिमन दीख················केहि हेतू।

तुलसीदास जी कहते हैं कि जब लक्ष्मण जी ने सतीजी को सीता के कपट रूपी वेष में देखा जो कृत्तिम था, तो वह आश्चर्य चकित हो गये उनके हृदय में भ्रम उत्पन्न हो गया। वे बहुत गम्भीर हो गये और कुछ नहीं कह सके क्योंकि धीर बुद्धि लक्ष्मण रामचन्द्र जी के प्रभाव से परिचित थे। किन्तु जिनके स्मरण मात्र से अज्ञान नष्ट हो जाता है, वही सर्वज्ञ अन्तरयामी तथा सुरस्वामी श्री रामचन्द्रजी भगवान सती के कृत्तिम भेष को जान गये। अपनी माया शक्ति को हृदय में समझकर रामचन्द्रजी हँस कर बोले कि स्त्री स्वभाव के प्रभाव को देखो कि यहाँ भी सती जी छिपाव (कपट) करना चाहती हैं। प्रथम भगवान ने सती जी को प्रणाम किया और फिर अपना पिता सहित परिचय देकर विजन में एकाकी घूमने का कारण पूछा कि हे सती जी शिव जी कहाँ पर हैं और आप बन में अकेले किस लिए घूम रही हैं?

अर्थ-दो० राम के मृदु तथा रहस्य से युक्त बचनों को सुनकर सती जी को संकोच हुआ वे चिन्तित हृदय से डरती हुई शिव के समीप चलीं।

शब्दार्थ हारे। दाह=भयानक जलन। विविध=अनेक भाँति-भाँति के। बिधि=ब्रह्मा। इन्दिरा=लक्ष्मी।

व्याख्या–चौ०—मैं संकर .... सब देवा।

प्रस्तुत चौपाइयों में सतीजी के हृदय की चिन्ता स्पष्ट झलक रही है वह सोच रही है कि मैंने शिवजी का कहना नहीं माना और अपने अज्ञान द्वारा श्री रामचन्द्र जी की परीक्षा की। अब जाकर क्या उत्तर दूँगी? ऐसा सोच सती के हृदय मे अति दुःख हुआ। सती को दुखी जानकर रामचन्द्र जी ने अपना प्रभाव पूर्ण कौतुक (लीला) उन्हें दिखाया। सती जी ने मार्ग मे जाते हुए यह कौतुक देखा कि रामचन्द्र जी सीता और लक्ष्मण जी सहित, हमारे आगे आ रहे हैं। जब सती जी ने पीछे उन्हें देखा तो वहाँ भी राम, लक्ष्मण और सीता सुन्दर वेष में दिखाई दिये। सती जी जिधर देखती थीं उधर ही राम सीता और लक्ष्मण दृष्टिगोचर होते थे। फिर सती जी ने अनेक शिव, ब्रह्मा विष्णु देखे जो एक से एक अधिक प्रभावशाली थे। नाना प्रकार के वस्त्रों से सुसज्जित सभी देवता श्री रामचन्द्र जी की चरण वन्दना और सेवा कर रहे थे।

अर्थ–दो० सती ने अनगिनत, अनुपम सती, ब्रह्माणी और लक्ष्मी देखीं। देवताओं के रूप के अनुकूल ही सब देवाङ्गनायें भी थी।

शब्दार्थ चराचर=चर+अचर=जड़ और चेतन। सभीता=भय युक्त। नयन उघारी=आँखें खोल कर।

व्याख्या–चौ० देखे जहं .... रहे गिरीसा।

सती जी ने राम तथा अन्य अनेक शक्तिशाली देवताओं और संसार के सभी चराचर जीवों को देखा-अनेक देवता भाँति २ के वेष धारण किये हुए प्रभु रामचन्द्र जी की सेवा कर रहे थे। श्री राम और सीता बहुत से दिखाई दे रहे थे किन्तु उनके रूप और वेषमें समानता थी, इनके वेष अनेक न थे। सम्पूर्ण जगह वही रघुनाथ वही सीता और वही लक्ष्मण को देख कर सती जी अति भयभीत हुईं। हृदय में कंपकंपी हो उठी, चेतना जाती सी रही। आँख मूंद कर वे मार्ग में बैठ गई। आँख खोलने के पश्चात् सती जी को कुछ दिखाई

नहीं पड़ा, तब वे अनेक बार श्री राम के चरणों में शीश नवाकर शिव के पास चलीं।

अर्थ-सो॰- जब सती जी राम की परीक्षा लेने के पश्चात् शिव के समीप पहुँची तो शिव जी ने हँस कर सती से कुशल-प्रश्न कर कहा कि तुमने राम की परीक्षा कैसे ली? सारी बात सत्य-सत्य बताओ।

शब्दार्थ दुराव=छिपाव। मृषा=झूठ। प्रतीति=विश्वास। प्रेरि=प्रेरणा। बिषाद=दुख। सन्तापु=दुख।

व्याख्या सती समझु.............अनीती।

भगवान शिव के यह पूछने पर कि उन्होंने रामचन्द्रजी की परीक्षा किस प्रकार ली? सती जी ने भगवान राम के प्रभाव को समझ कर भय वश शिवजी से छिपाव किया और कहा हे स्वामिन्! मैंने कुछ परीक्षा नहीं ली, आपकी तरह प्रणाम किया। आपने जो कुछ भी कहा था सो सत्य है। मेरे मन में यही विश्वास है। तब शिवजी ने ध्यान धरके देखा तो सती की चरित्र लीला को जान गये, फिर उन्होंने भगवान की लीला को प्रणाम किया जिसने सती जी से झूठ कहलवाया (यह भगवान राम की लीला का ही प्रताप था जिसके द्वारा सती जी भी झूठ बोलीं) परम ज्ञानी शिवजी ने "भगवान की ऐसी ही इच्छा है" अर्थात् भविष्य में यही होना है, ऐसा विचार किया। सती ने सीता का रूप बनाया इससे शिव के हृदय को बहुत दुख हुआ। शिवजी ने सोचा यदि मैं अब सती से प्रीति करता हूँ तो भक्तिमार्ग लुप्त हो जाता है और बड़ा अन्याय होता है।

अर्थ दो॰ सती परम पावन हैं; अतः इन्हें छोड़ते भी नहीं बनता किन्तु प्रेम करने में बड़ा पाप है। (क्योंकि सती जी ने शिव जी के इष्ट राम की पत्नी सीता का रूप धारण किया था) प्रकट रूप से शिवजी ने कुछ नहीं कहा किन्तु उनके हृदय में अत्यन्त दुख हुआ।

शब्दार्थ नावा=नवाया। पन=प्रण। कवन=कौनसी। जड़ अन्ध=मूर्ख और बेसमझ।

व्याख्या—चौ० तब .... त्रिपुर आरती।

शिवजी ने तब प्रभु राम के चरणकमलों में सिर नवाया और अपने इष्ट श्री राम का स्मरण करते ही सती को पत्नि रूप में अस्वीकार करने का सङ्कल्प कर लिया। स्थिर बुद्धि शंकर जी ऐसा विचार कर श्री राम का स्मरण करते हुए अपने घर (कैलाश) को चले। चलते समय सुन्दर आकाश वाणी हुई कि हे महेश! आपकी जय हो; आपने भक्ति की अच्छी दृढ़ता की (भक्ति का सुआदर्श प्रस्तुत किया) और भक्ति का सच्चा स्वरूप प्रगट किया। आपके अतिरिक्त दूसरा ऐसी प्रतिज्ञा कौन कर सकता है? आप श्री राम के अनन्य भक्त हैं; समर्थ हैं; और भगवान हैं। इस आकाश वाणी को सुनकर सती को चिन्ता हुई और उन्होंने सकुचाते हुए शिवजी से पूछा हे कृपालु कहिए; आपने कौन सी प्रतिज्ञा की है? हे प्रभो आप सत्य के घर (धाम) और दीन दयालु है। यद्यपि सती जी ने बहुत प्रकार से पूछा परन्तु त्रिपुरारि शिवजी ने कुछ नहीं बताया।

अर्थ दो० हृदय के अनुमान द्वारा सती जी को अपने प्रभु शिवजी की सर्वज्ञता का बोध हो गया। अपने कपट को पहिचान गई स्त्री स्वभाव से ही मूर्ख और अज्ञान होती है ऐसा सोचने लगी।

अर्थ—सोरठा इसमें तुलसीदास जी ने मानव जीवन के सत्य को सामने रखा है और बताया है कि प्रेम की रीति कैसी होती है? दूध और पानी समान भाव बिकता है देखिए प्रेम की यह रीति कितनी स्वभाविक और सुन्दर है। किन्तु खटाई के पड़ते ही दूध और पानी अलग २ हो जाते हैं और स्वाद नष्ट हो जाता है। यहाँ दूध में मनुष्य द्वारा मिलाये हुए पानी की उपमा नहीं है। किन्तु जो गऊ के थन में स्वतः दूध-पानी का समन्वय होता है वह खटाई के पड़ते ही फट जाता है अतः उस दूध पानी की उपमा है। इसी तरह शिव और सती एक ही दूध स्वरूप थे किन्तु सती के कपट रूपी खटाई द्वारा अलग हो गये। पानी रूपी सती बेकदर हो गई अतः शिवजी ने उनके

पूछने पर अपना संकल्प नहीं बताया।

शब्दार्थ—चौ० अविलोक=देख कर। अघ=पाप। अवाँ इव=कुम्हार के अलाव की भाँति। बिस्वनाथ (शुद्ध—विश्वनाथ)=शिवजी। मरम=रहस्य

व्याख्या—चौ० हृदय .. ... अपारा।

सती के हृदय में अपनी करनी के कारण अपार चिन्ता और क्षोभ हुआ जो वर्णनातीत है। सती ने समझ लिया कि शिवजी कृपा के अथाह सागर हैं कि उन्होंने प्रगट रूप में मेरा अपराध भी नहीं कहा। शंकर जी के मुख को देख कर तथा उनके अपने प्रति त्याग को जानकर सती जी का हृदय व्याकुल हो उठा। सती से, अपना पाप समझकर कुछ कहते नहीं बनता था किन्तु हृदय-भीतर ही भीतर कुम्हार के आँवे की भाँति जल रहा था। शिवजी ने सती को चिन्ताग्रस्त जान कर उनको सुखी करने के हेतु सुन्दर कथाएँ कहीं। इस प्रकार मार्ग में नाना प्रकार की कथाएँ कहते हुए विश्वनाथ कैलाश पहुँचे। वहाँ अपनी प्रतिज्ञा को याद कर शिवजी वट वृक्ष के नीचे पद्मासन लगाकर, अपने स्वभाविक रूप को सम्हालते हुए अखण्ड और अपार समाधि में लीन हो गये।

अर्थ—दो० तब सती कैलाश पर रहने लगीं। उनके हृदय में क्या दुख है इस रहस्य से सब अपरिचित थे। उनका एक २ दिन एक २ युग के समान व्यतीत हो रहा था।

शिव-बारात

शब्दार्थ—चौ० संभुगन=शिवजी के गण। अहि=साँप। केहरि=सिंह। ससि=चन्द्रमा। उपबीत=जनेऊ। गरल=विष। सुरतिय=देवताओं की स्त्रियाँ। सुरब्राता=देवताओं का समूह।

व्याख्या—चौ० सिवहि संभुगन ....अनुरूपा।

प्रस्तुत चौपाइयों में महात्मा तुलसीदास ने शिव जी की बारात का बड़ा ही सुन्दर और अनूठा वर्णन किया है। बारात के समय की तैयारी का वर्णन करते हुए तुलसीदास जी कहते हैं कि :

शिवजी के गण शिवजी का श्रृंगार करने लगे। जटाओं के मुकुट पर सर्पों का मोर विभूषित किया गया। शिवजी ने सर्पों के कुण्डल और कंगन पहने, शरीर पर विभूति रमाई और वस्त्रों के स्थान पर बाघम्बर लपेट लिया। शिवजी के सुन्दर मस्तक पर चन्द्रमा, सिर पर गंगा जी विशाल त्रिनेत्र,सर्पों का जनेऊ, गले में विष तथा वक्षस्थल पर नरमुण्डों की माला शुसोभित है। इस अनूठे और अशुभ वेषधारी होने पर भी वे कल्याणकारी और कृपालु हैं। एक हाथ में त्रिशूल और दूसरे में डमरू शुसोभित है। ध्वनित बाजों के साथ शिवजी बैल पर चढ़कर चले। शिवजी को देखकर देवाङ्गनायें मुस्करा रही हैं और कहती हैं कि इस वर के योग्य दुलहिन विश्व में नहीं है। विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओं का समूह भी अपनी अपनी सवारियों पर चढ़ कर बारात में चला। देव-समाज अनुपम एवं सुन्दर है किन्तु वर योग्य बारात नहीं है। (शिव भगवान दूल्हे के अनुकूल बराती नहीं थे)

अर्थ-दोहा. शिवजी की बारात में विष्णु भगवान सब दिक्पालों को बुलाकर हँसते हुए सबसे अपने अपने दल सहित अलग २ होकर चलने को कहा।

शब्दार्थ भृङ्गी = शिवजी का सेवक। वाहन = सवारी. रिष्ट पुष्ट = हृष्ट पुष्ट। तन खीना = दुर्बल शरीर। पनि = मोह।

वर अनुहारि... ... ...अति तन खीना

व्याख्या—चौ० विष्णु भगवान देवताओं से कहने लगे कि यह बरात वर के योग्य नहीं है क्या पराये नगर जाकर (अपनी) हँसी कराओगे। यह सुनकर देवता मुस्कराये और अपनी सेना सहित विलग हो गये। महादेवजी विष्णु भगवान के व्यंग को सुनकर मुसकराने लगे और मन ही मन कहने लगे कि विष्णु भगवान की व्यंग करने की आदत नहीं छूटती। अतः अपने प्रिय के व्यंग भरे वचनों को सुनकर शिवजी ने भृंगी को भेजकर अपने गणों को बुला लिया। शिवजी की आज्ञा सुनते ही सब चले आये और उन्होंने स्वामी के

चरणों में सिर नवाया। भिन्न २ सवारियाँ और नाना प्रकार के वेष-धारी अपने समाज को देखकर शिवजी से। कोई मुख हीन है तो किसी के बहुत से मुख हैं, कोई अपाहिज है तो कोई बहुत हाथ पैर का है; कोई नेत्र विहीन है तो किसी के बहुत से नेत्र हैं। कोई मोटा तो कोई दुर्बल।

अर्थ छ० तुलसीदासजी शिव भगवान के गणों का वर्णन कर रहे हैं कि कोई बहुत जीर्ण शीर्ण, तो कोई बहुत हृष्ट-पुष्ट, कोई अपवित्र वेश धारण किये हुए है भयंकर गहने पहने, हाथ में कपाल लिए हैं। सब शरीर से ताजा रुधिर लपेटे हुए हैं गधे, कुत्ते, सूअर और सियार के से उनके मुख हैं। गणों के अनगिनित वेषों को कौन गिने? बहुत प्रकार के प्रेत, पिशाच और योगनियों की जमातें हैं जो वर्णन से परे हैं।

अर्थ—सो० भूत प्रेत नाचते और गाते हैं, वे सब बड़े मौजी है देखने में बहुत ही बेढंगे जान पड़ते हैं और बड़े ही विचित्र ढंग से बोलते हैं।

शब्दार्थ चौ० तिस=वैसी ही। मग=पथ, मार्ग। इहाँ=इधर बिताना=मण्डप। सैल=पर्वत। विरंचि=ब्रह्मा। तड़ाग= तालाब बनिता=सुस्त्री।

भा० जस दूलहु... .... निपुनाई

प्रस्तुत चौपाइयों में कविवर तुलसीदास जी ने शिवजी की सुन्दरता का वर्णन किया है वह कहते हैं कि दूल्हे के अनुकूल ही बारात बन गई है। मार्ग में भाँति भाँति के कौतुक हो रहे हैं। इधर हिमाचल ने ऐसा विचित्र मंडप बनाया कि जो वर्णनातीत है। जगत के सम्पूर्ण छोटे बड़े पर्वत जो वर्णन से परे थे तथा वन, समुद्र, नदियाँ और तालाब सब हिमाचल द्वारा निमंत्रित थे। वे सब अपनी इच्छानुसार सुरूप धारण कर अपनी सुन्दर स्त्रियों के समाज के साथ हिमालय के घर गये। सभी स्नेह सहित मंगल गीत गाते थे। हिमालय ने पहले से बहुत से घर सजवा रक्खे थे। यथा योग्य उन स्थानों

मे सब लोग आ गये। नगर की शोभा के सन्मुख ब्रह्मा की रचना कौशल तुच्छ प्रतीत होती थी।

अर्थ छं० नगर की उपर्युक्त शोभा को देखकर सचमुच ब्रह्मा की निपुणता तुच्छ लगती है। वन, बाग कुएँ, तड़ाग, सरितायें सभी सुन्दर है; उनका वर्णन कौन कर सकता है? घर-घर बहुत से मङ्गल सूचक तोरण और ध्वज पताकाएँ सुशोभित हो रही हैं। वहाँ के सुन्दर और चतुर स्त्री-पुरुषों का सौन्दर्य मुनियों के मन को डांवाडोल और मोहित कर रहा है।

अर्थ दो० जिस नगर मे स्वयं जगदम्बा ने अवतार लिया, क्या उसका वर्णन हो सकता है! वहाँ ऋद्धि, सिद्धि' सम्पत्ति और सुख दिनों दिन वृद्धि करते हैं ऐसा प्रतीत होता है सत्य शिव सुन्दरम् का वहाँ बड़ा ही सुन्दर समावेश है।

शब्दार्थ-चौ० बनाव=श्रृंगार। बिडरि=डरकर। बाहन= सवारी। बौराह=पागल। ब्याल= साँप। जनक=पिता।

व्याख्या-चौ- नगर निकट..................बिभूषन छाए

प्रस्तुत चौपाइयों में गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि जब बरात नगर के निकट आयी तो नगर निवासी चहल पहल करने लगे। नगर की चहल पहल से बरात की श्री मे चार चाँद लग गये। अगवानी करने वाले लोग बनाव श्रृंगार करके तथा नाना प्रकार की सवारियों को सजाकर आदर सहित बरात को लेने चले। देवताओं की सेना को देखकर मन मे अत्यन्त प्रसन्न हुए और विष्णु को देखकर अपने मन मे बहुत ही सुखी हुए। किन्तु शिव तथा उनके दल को देखकर उनके सब वाहन (सवारी) भय से भाग चले। अधिक आयु के लोग धैर्यपूर्वक वहां डटे रहे। बालक सब अपने प्राण ले कर भागे। घर पहुँच कर माता पिता के पूछने पर वे काँपते हुए बोले कि क्या कहें, कोई बात नहीं कही जाती। यह बरात है या यमराज की सेना। दूल्हा पागल है और बैल पर सवार है। सर्प, कपाल और भस्म ही उसके भूषण हैं।

अर्थ छं०—दुल्हे के शरीर पर भस्म है, सांप और कपाल उसके अलंकार हैं; वह नग्न जटाधारी तथा भयंकर है। उसके साथ भयानक मुख वाले भूत प्रेत, पिशाच योगनियाँ और राक्षस हैं। बारात के देखने पर भी जो जीवित रहेगा, उसके बड़े पुण्य है तथा वही पार्वती का विवाह देखेगा। इस प्रकार बालकों ने घर २ यही बात कही।

अर्थ दोहा शिव भगवान के समाज को भली- भाँति जानकर सबके माता पिता मुसकराने लगे और बहुत भाँति बालकों को निडर हो जाने के लिए समझाया कि भय की कोई बात नहीं।

शब्दार्थ० मैना=पार्वती की माता। त्रास=भय। सरोज= कमल। बाउर=पागल। जड़=मूर्ख। सुरतरु=कल्पवृक्ष। गिरि- नारि= हिमाचल की स्त्री मैना।

व्याख्या-चौ०—लै अगवान..............कस कीन्हा।

नगर निवासी बारात को ले आये, उन्होंने सब को विश्रामार्थ सुन्दर स्थान (जनवासे) दिये। पारवती की माता मैना ने आरती सजायी तथा अन्य साथ की स्त्रियाँ मंगल सूचक गीत गाने लगीं। सुन्दर हाथों में सुशोभित कंचन का थाल लेकर मैना हर्षोद्वेलित शिव जी का परछन करने चली किन्तु जब महादेव जी का भयानक स्वरूप देखा तो हृदय में भय उत्पन्न हुआ। स्त्रियाँ भयवश घरों में घुस गयीं और शिवजी जनमासे को चल दिये। मैना को बड़ा दुख हुआ उन्होंने पार्वती को अपने पास बुला लिया और अत्यन्त स्नेह से गोद में बैठाकर नयनों में आँसू भर कर बोली जिस विधाता ने तुमको ऐसा सुन्दर रूप दिया; उस मूर्ख ने तुम्हारे दूल्हे को बावला कैसे बना दिया।

अर्थ- छन्द जिस विधाता ने तुमको सुन्दरता प्रदान की, उसने तुम्हारे दूल्हे को बावला कैसे बनाया? जो फल कल्प वृक्षों में लगना चाहिये वह जबर्दस्ती बबूल मे लग रहा है। मै तुम्हे लेकर पहाड़ से गिर पड़ूँगी; आग में जल जाऊँगी; समुद्र मे कूद पड़ूँगी; चाहे घर उजड़ जाय और संसार भर में अपयश फैल जाय पर जीते जी मैं इस

बावले वर से तुम्हारा विवाह नहीं करूँगी।

पृथ्वी-देवतादि की करुण पुकार

यहाँ पर तुलसीदास जी ने उस समय का वर्णन किया है जबकि पृथ्वी पर राक्षसों के अत्याचार बढ़ गये और उनके कुकर्मों से सम्पूर्ण पृथ्वी भयभीत हो गई। जप, योग, वैराग्य तथा यज्ञ का स्थान अत्याचार और हिंसा ने ले लिया। राक्षसों के अत्याचार का बोझ पृथ्वी को असह्य होने लगा। चारों ओर हिंसा और अत्याचार का साम्राज्य दिखाई देने लगा। तब पृथ्वी ने राक्षसों के दमन और अत्याचार से दुखी होकर सब देवताओं के साथ मिलकर भगवान विष्णु से अपने उद्धारार्थ पुकार की।

शब्दार्थ—चौ० परदारा=पराई स्त्री। धरा=पृथ्वी। धरम कै=धर्म की। गरुआ=भारी बोझ। सकल=सम्पूर्ण। धेनु=गाय। संताप=क्लेश, दुख। विरंचि=ब्रह्मा। गोतनुधारी- गो+तनु+धारी=गाय का शरीर धारण किये हुए। जाकरि तैं=जिसकी तू। अविनाशी=नाश न होने वाला,अक्षय; अविनश्वर। धरनि=पृथ्वी।

प्रस्तुत चौपाइयों में महाकवि तुलसीदास जी पृथ्वी पर होनेवाले अत्याचार और हिंसा का दिग्दर्शन करा रहे हैं उस समय पृथ्वी पर अत्याचार और हिंसा का कैसा रूप था उसका बड़ा ही सुन्दर और सजीव चित्रण किया है। वह कहते हैं कि पृथ्वी पर पराये धन और परस्त्री पर मन ढीला करने वाले पुरुष दुष्ट, लंपट चोर और जुआरी अत्यधिक हो गये थे। वे लोग माता पिता तथा देवताओं को मान्यता प्रदान नहीं करते थे, साधुओं से सेवा करवाते थे। (श्री शिवजी कहते हैं कि—) हे भवानी! ऐसे आचरण वाले मनुष्यों को तुम दानव समझना। पृथ्वी अतिशय धर्म की हानि देखकर अत्यन्त सभीत व्याकुल है। पृथ्वी कहती है पर्वतों, समुद्रों और नदियों का का भार मुझे बोझल नहीं जान पड़ता किन्तु जो रावण आदि

राक्षसों के अत्याचार का दुख रूपी बोझ है जो दूसरों को दुख देने के कारण दूसरों का द्रोही है वह बोझ मुझे असह है और मेरे लिये भी परद्रोही सदृश है। पृथ्वी सम्पूर्ण धर्मों को विपरीत देख रही है किन्तु रावण के भय से भयभीत वह कुछ कह सकने में असमर्थ है। अन्त में हृदय से सोच विचार कर गो-रूप धारण कर पृथ्वी सब देवताओं और मुनियों के समीप पहुँची। पृथ्वी ने रोकर अपना दुःख सुनाया पर किसी से उसका प्रयोजन सम्पन्न न हुआ।

अर्थ–छं० भय और दुःख से व्यथित तब देव, मुनि और गन्धर्व गौरूप धारण किये हुए पृथ्वी के साथ ब्रह्मा के लोक को गये ब्रह्मा जी सब जान गए। मन में अनुमान किया कि (रावण से वचन बद्ध होने के कारण) वे असमर्थ हैं। उन्होंने कहा जिसको तू दासी है, वही अविनिश्वर हम दोनों का सहायक है। अर्थात् विष्णु भगवान हमारे रक्षक हैं।

अर्थ–सो० ब्रह्मा जी ने श्री राम के चरणों का स्मरण कर कहा हे अवनी! मन में धैर्य धारण करो। भगवान अपने सेवक की पीड़ा से अनभिज्ञ नहीं हैं (वे अन्तर्यामी हैं) वे तुम्हारे दारुण दुखों का निवारण करेंगे।

शब्दार्थ–चौ॰ पयनिधि–पय + निधि = दूध का समुद्र = क्षीर सागर। अगजगमय = चराचर-मय। जिमि = जिस प्रकार। सुरनायक = देवों के स्वामी। द्विज = ब्राह्मण। असुरारी–असुर + अरी = राक्षसों के शत्रु। सिन्धु सुता = लक्ष्मी जी। अनुग्रह = कृपा। अविगति = अज्ञेय। गोतीत = इन्द्रियों से परे। मुकुन्द = मोक्षदाता विष्णु। निशि वासर = दिन रात। वरूथ = तनुत्राण। सुरयूथ = देवताओं का समूह। शारद = सरस्वती। श्रुति = वेद। शेषा = शेष जी। अशेषा = सम्पूर्ण। भयातुर = भय से आकुल। भव = संसार। वारिधि = समुद्र। मन्दर = मन्थना। पदकंज = चरण कमल।

व्याख्या चौ० बैठे सुर··· ·········ब्रह्म बखाना।

सब देवता बैठकर विचार करने लगे कि प्रभु को कहाँ पावें ताकि

वाले, मुनियों को आनन्द प्रदान करने वाले तथा सङ्कटों को नाश करने वाले हैं, हम सब देवता मन वचन और कर्म से उन भगवान की शरण आये हैं। सारदा, वेद, शेष जी और सम्पूर्ण ऋषि कोई भी जिनको नहीं जानते, जिन्हें दीन प्रिय हैं ऐसा वेद कहते हैं, वे ही भगवान हम पर दया करें। हे संसार रूपी समुद्र के मन्दरा चल रूप, सब प्रकार से सुन्दर, गुणों के आगार और सुखों के समुह भगवान। आपके चरण कमलों में भय से व्याकुल सम्पूर्ण देवता, मुनि और सिद्ध नमस्कार करते हैं।

अर्थ—दो० देवता और मुनि को सभय जान कर तथा उनके स्नेह वचन सुनकर आकाश मे गम्भीर वाणी हुई जो दुख और सन्देह को हरण करने वाली थी।

शब्दार्थ दिनकरवंश=रघुकुल वंश। पुरबु=पहिले। हों=मैं। परम=विशाल, सर्वोच्च। कौशलपुरी=अवधपुरी गरूआई=भार। बानी-शुद्ध=वाणी। अभय=निर्भय। बिरंचि=ब्रह्मा। तनु=शरीर।

व्याख्या—चौ० जनि डरपहु मुनि·········जिपँ आवा।

जिस समय ब्रह्मादि सब देवता मिल कर व्यापक ईश की स्तुति कर रहे थे तो उस समय आकाशवाणी हुई कि हे मुनि, सिद्ध और सुरेश। तुम लोग अभय हो, हम तुम्हारे लिए मनुष्य रूप धारण कर अपने अङ्गों सहित मनुज अवतार सूर्यवंश में लेगे। (आकाशवाणी सुन कर। सब देवताओं को सन्देह हुआ कि ऐसे ब्रह्म परमात्मा मनुष्य अवतार कैसे लेंगे? इस सन्देह के निवारणार्थ पुनः आकाश-वाणी हुई जिसमें भगवान के अवतार लेने के और भी कारण बताये) कश्यप अदिति ने भारी तप किया था और उनको मैं पहिले अवतार लेने का वर दे चुका हूँ। वे दशरथ और कौशिल्या रूप में अवधपुरी में नरपति रूप से हैं। उनके घर में चार भाइयों के साथ अवतार लूँगा। मनुष्य रूप में अवतार लेकर मैं नारद के वचनों (बचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु शाप मम एहा।) को

सत्य करूँगा तथा परम शक्ति सहित अवतार लेकर सम्पूर्ण भूमि को भार उतारूँगा। हे सब देव तुम लोग अभय हो जाओ। आकाश में ब्रह्मवाणी सुनकर सब देवता तुरन्त लौट गये। उनका हृदय शीतल हो गया तब ब्रह्मा ने पृथ्वी को समझाया। वह निर्भय हुई और उसके हृदय में दृढ़ विश्वास और आशा उत्पन्न हुई।

अर्थ–दो० देवताओं को यही सिखाकर कि वानरों का शरीर धर धर कर तुम लोग पृथ्वी पर जाकर भगवान के चरणों की सेवा करो, ब्रह्मा जी अपने लोक को चले गये।

राम जन्म

शब्दार्थ हितकारी=कल्याणकारी। हरषित=प्रसन्न हुई। अद्‌भुत=अनोखा। लोचन=नेत्र। अभिरामा=सुन्दर। आयुध=अस्त्र। खरारी=दुष्टों के शत्रु। अस्तुति=वन्दना। केहि=किस। विधि प्रकार। अनंत=अपार। गुनआगार=गुणों की खानि। अनुरागी=प्रेमी मति=बुद्धि। तात=पुत्र। शिशु=बालक। प्रियशीला=सुखकारी विप्र=ब्राह्मण। धेनु=गाय।

प्रस्तुत छन्द में महाकवि तुलसीदास जी ने भगवान राम के अवतार का बड़ा ही सुन्दर तथा आकर्षक वर्णन किया है। वह कहते हैं कि:

दीन दयालु कौशिल्या जी के हितकारी भगवान प्रगट हुए। मुनियों के मन को हरने वाले भगवान का अद्‌भुत रूप देखकर माता हर्ष से भर गई। मेघाकाश के सदृश्य श्याम शरीर था, चारों भुजाओं में शंख, चक्र गदा पद्‌म लिए हुए थे, आभूषण और वनमाला पहिने थे। उनके बड़े बड़े सुन्दर नेत्र थे। इस प्रकार शोभा के समुद्र तथा खर और दूषन को मारने वाले भगवान प्रगट हुये। दोनों हाथ जोड़ कर माता कहने लगी हे अनन्त! मैं किस प्रकार तुम्हारी स्तुति करूँ! वेद और पुराण तुमको माया, गुण तथा ज्ञान से परे और परिमाण-रहित बतलाते हैं श्रुतियाँ और सन्तजन दया और सुख का समुद्र सब गुणों का धाम कहकर जिनका गान करते हैं, वही भक्तप्रेमी लक्ष्मीपति

भगवान् मेरे कल्याणार्थ प्रगट हुए हैं। वेद कहते हैं कि तुम्हारे प्रत्येक रोम में माया से रचित अनेकों ब्रह्मांड के समूह हैं। ऐसे प्रभु तुम मेरे गर्भ में रहे, ऐसी हँसी की बात सुनने पर धीर पुरुषों की बुद्धि चकरा जाती है कि यह कैसा अद्भुत चरित्र है माता कौशिल्या के इस प्रकार ज्ञान उदय को भगवान देखकर हँसे और विचारने लगे कि अभी तो मुझे तरह-तरह के चरित्र अनेक प्रकार से करने हैं अतः उन्होंने माता कौशल्या को उनके पूर्व जन्म मे उनके तप तथा अपने वरदान की कथा सुनाई और धीरज देकर माता से कहा कि मुझ से पुत्र समान प्यार करो अर्थात् मुझे अपना पुत्र समझो (भगवान के कथा सुनाने पर जब माता कौशिल्या की बुद्धि बदली, तब वह बोली हे तात ! अपना यह रूप (अखण्ड परब्रह्म का) छोड़ दो और अत्यन्त प्रिय एवं मधुर बाल लीला करो जिससे परम अनुपम सुख हो। ऐसे प्रेम भरे माता के वचनों को सुनकर देवों के स्वामी, गुणग्राहक भगवान ने बालक का रूप धारण कर रोना आरम्भ कर दिया। तुलसीदास जी कहते हैं कि जो मनुष्य भगवान के इस चरित्र का पाठ करते हैं वे भगवान के चरणकमल में स्थान पाते हैं और फिर संसार रूपी कूप में नहीं गिरते अर्थात् आवागमन के बंधन से मुक्त हो जाते हैं।

अर्थ-दोहा। ब्राह्मण, गौ, देवता और संतों के लिए अवतार लिया वे माव गुण (सत, रज, तम) तथा इन्द्रियों से परे हैं (अर्थात भगवान अभेद है तथा वह सम्पूर्ण है, उसके विषय में कोई नहीं जानता) उनका दिव्य शरीर अपनी इच्छा से बना है।

परुषराम-लक्ष्मण संवाद

समाचार कहि...... .... सब बीना ॥

शब्दार्थ महिप=राजा। अनंत=दूसरी ओर। निहारे=देखा। चाप=धनुष। महि=पृथ्वी। अतिरिस=बहुत क्रोध में। तव=तुम्हारा। कुटिल=नीच, दुष्ट। त्रास=डर, भय। सेवरी=बनीबनाई

भृगुपति=परशुराम। निमेश=पल, क्षण। कल्प=१४ मन्वतर या ४३२००००००० वर्ष।

प्रसंग: प्रस्तुत चौपाइयाँ 'परशुराम-लक्ष्मण संवाद' से उद्धृत की गई है। सीता-स्वयंवर के लिए राजा जनक द्वारा आमंत्रित दूर के राजा एकत्रित हुए थे। जब शिवजी का धनुष किसी भी योद्धा से नहीं टूटा तो श्री रामचन्द्र जी ने गुरु-आज्ञा पाकर उसके खंडहर कर दिए। इसी में महर्षि परसुरामजी वहाँ आ गए। आते ही उन्होंने राजाओं के आगमन का कारण पूछा:

सरलार्थ उत्तर में राजा जनक ने जिस कारण से राजा गण आये थे वह सम्पूर्ण समाचार महर्षि परशुराम को कह सुनाये। राजा जनक के शब्दों को सुनकर महर्षि ने दूसरी ओर देखा तो उन्हे धनुष के टुकड़े पृथ्वी पर पड़े दिखाई दिए। अत्यंत ही क्रोधित होकर उन्होंने कड़े शब्दों में कहा -रे, जनक बताओ यह धनुष किसने तोड़ा है। हे मूर्ख शीघ्र ही उस व्यक्ति को मुझे दिखाओ नहीं तो तेरा जहाँ तक राज है आज उस सारी पृथ्वी को उलट दूँगा। यह सुनकर राजा जनक अत्यन्त भयभीत हो गये और भय के कारण वह उत्तर भी न दे पाए। यह देखकर दुष्ट राजा अपने मन में बहुत ही प्रसन्न हुये। महर्षि के वचनों को सुनकर देवता, मुनि, नाग और नगर के सभी स्त्री-पुरुष हृदय से भयभीत होकर सोच करने लगे। सीता जी की माता मन ही मन पछता कर कह रहीं थीं कि हाय! विधाता ने बनी बनायी बात विगाड़ दी परुषराम जी के स्वभाव को सुनकर सीता जी को आधा क्षण भी कल्प के समान बीतता हुआ प्रतीत होने लगा।

समय बिलोके... ... ...भृगुकुल केतू

शब्दार्थ भीरु=डरी हुई। भंजनिहारा=तोड़नेवाला। आयसु =आज्ञा। कोही=क्रोधी। अरि=वैरी। रिपु=शत्रु। बिलग=अलग बिहाइ=छोड़कर।

सरलार्थ जब श्री रामचन्द्र जी ने सब लोगो को भयभीत देखा तथा सीता जी को डरी हुई देखा तो वे बोले। बोलते समय उनके

हृदय में न तो सीता विजय के कारण प्रसन्नता ही थी और न भय के कारण किसी प्रकार का दुख ही था।

"हे स्वामी! शिवजी के धनुष को तोड़ने वाला आपका कोई एक दास (सेवक) ही होगा। क्या आज्ञा है, आप मुझसे क्यों नहीं कहते?" यह सुनकर क्रोधी मुनि रिसाकर बोले "सेवक तो वह है है जो सेवा कार्य करे और शत्रु का कार्य करके तो लड़ाई ही करनी चाहिए। हे राम! सुनो, जिसने शिवजी का धनुष तोड़ा है वह सहस्रबाहु के समान मेरा शत्रु है। वह जिसने धनुष तोड़ा है, इस समान (सभा) को छोड़कर अलग हो जाय नहीं तो व्यर्थ में सभी राजा मारे जायेंगे।" मुनि के इन शब्दों को सुनकर लक्ष्मणजी मुस्कराये और परशुरामजी का अपमान करते हुए बोले "हे गोसाईं! लड़कपन में हमने बहुत-सी धनुहियाँ (छोटे-धनुष) तोड़ डालीं, किंतु आपने ऐसा क्रोध कभी नहीं किया। इस धनुष पर इतनी ममता (प्रेम) किस कारण से है?" यह सुनकर भृगुवंश की ध्वजा के समान परशुराम जी क्रोधित होकर कहने लगे

रे नृप बालक......... महिप कुमारा।

शब्दार्थ त्रिपुरारि=शिवजी (त्रिपुर+अरि=त्रिपुर राक्षस के शत्रु)। विदित=प्रसिद्ध। सकल=सम्पूर्ण। छति=हानि (शुद्ध=क्षति)। जीर्ण=पुराना (शुन्जीर्ण)। नया=नवीन। चितइ=देख कर। द्रोही=शत्रु। बिपुलबार=बहुत बार। महि=देवन्ह= ब्राह्मणों को।

सरलार्थ "अरे राजपुत्र! मृत्यु के वशीभूत होने के कारण तू सँभल कर नहीं बोल रहा है। सारे संसार में प्रसिद्ध शिवजी के धनुष के समान क्या अन्य छोटे-धनुष हो जायँगे।"

यह सुनकर लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा। "हे देव! सुनिये हमारे लिए तो सभी धनुष एक ही समान हैं। पुराने धनुष के तोड़ने में क्या हानि-लाभ है? श्री रामचन्द्र जी ने तो नवीन के भ्रम में पड़कर देखा था!

यह तो छूने मात्र से टूट गया। इसमें श्री रामचन्द्र जी का तो तनिक भी दोष नहीं है। हे मुनि ! आप बिना किसी कारण के क्रोध क्यों करते हैं ?" यह सुन, परशुराम जी अपने फर्से की ओर देखकर बोले- "अरे दुष्ट ! ऐसा विदित होता है कि तूने मेरा स्वभाव नहीं सुना है। तुझे बालक समझकर मैं नहीं मारता हूँ। अरे मूर्ख, क्या तू मुझे केवल मुनि ही जानता है। मैं बाल ब्रह्मचारी और अत्यन्त ही क्रोधी हूँ। क्षत्रिय वंश के शत्रु के रूप में तो सारे संसार में प्रसिद्ध हूँ। अपनी भुजाओं के बल से मैंने सारी पृथ्वी को राजाओं से रहित कर दिया और बहुत बार उसे ब्राह्मणों को दे डाला। हे राजकुमार ! सहस्रबाहु की भुजाओं को काटने वाले इस फरसे को देख !

मातु पितहिं जनि······ ······घोर कुठारा।

शब्दार्थ जनि=मत। अर्भक=बच्चा। दलन=नष्ट करने वाला। महाभट=बहुत बड़ा योद्धा। पुनि-पुनि=बार-बार। कुम्हड़ बतिया=छोटा कच्चा फल। तर्जनी=अँगूठे के पास वाली उँगली। बिलोकी=देखकर। महिसुर=ब्राह्मण। कुलिश=वज्र। सुराई=वीरता, सूरता।

सरलार्थ अरे राजा के बालक ! तू अपने माता पिता को क्यों दुखी करना चाहता है ? गर्भों के बच्चों को भी नष्ट करने वाला, यह मेरा फरसा बड़ा भयानक है।"

लक्ष्मण जी हँसकर कोमल वाणी से बोले "हे मुनीश्वर ! आप अपने को बहुत बड़ा योद्धा समझते हैं। आप बार-बार अपना फर्सा दिखाकर मुझे डराना चाहते हैं; पर आपका यह प्रयत्न फूँक से पहाड़ उड़ाने की इच्छा के समान ही है। यह कोई छोटा कच्चा फल नहीं है जो तर्जनी उँगली को देखने से ही मर जाय। आपके कुठार और धनुष-बाण को देखकर ही मैंने कुछ अभिमान सहित कहा था। आपको भृगुवंशी जानकर तथा यज्ञोपवीत देखकर, जो कुछ आप कहें उसमें क्रोध को रोककर सह लेता हूँ; क्योंकि देवता, ब्राह्मण, भगवान के भक्त और गाय, इन सब पर हमारे वंश में वीरता नहीं

दिखाई जाती है। क्योंकि इन्हें मारने से पाप लगता है और इनसे हार जाने पर अपयश होता है। इसलिए आपके मारने पर भी आपके पैरों ही पड़ेंगे। आपका एक-एक शब्द ही करोड़ों वज्रों के समान है। धनुष-बाण और कुठार तो आप व्यर्थ ही धारण किए हुए हैं।

जो बिलोकि········· ······पावहु सोभा।

शब्दार्थ गिरा=वाणी। कौसिक=विश्वामित्र। भानु=सूर्य। राकेस=चन्द्रमा। बिपट=बिल्कुल, पूर्णतः। अबुध=अज्ञानी। असंकू=निडर। कवलु=ग्रास। खोरि=दोष। अछत=होते हुए (शु० अक्षत)। दुसह=कठिन, असह्य। अछोभा=क्षोभ रहित।

सरलार्थ "आपके धनुष-बाण और कुठार को देखकर मैंने जो कुछ अनुचित कहा हो तो उसे धैर्यवान महामुनि! क्षमा कीजिए।" यह सुनकर भृगुवंशमणि परशुराम जी क्रोध सहित गम्भीर वाणी बोले

"हे विश्वामित्र! सुनो, यह बालक बड़ा ही मूर्ख और कुटिल है; काल के वश हो कर यह अपने कुल के लिए घातक बनना चाह रहा है। यह बिल्कुल उद्दण्ड, मूर्ख और निडर बालक, सूर्यवंश रूपी पूर्ण चन्द्र के कलङ्क के समान है। अभी एक क्षण में यह काल का ग्रास बन जायगा। मैं पहले ही पुकार कर कह रहा हूँ, पीछे मुझे कोई दोष नहीं दे। यदि तुम बचाना चाहते हो तो हमारा प्रताप, बल और क्रोध कहकर इसे मना कर दो।" यह सुन लक्ष्मण जी ने कहा "हे मुनि! आपका सुयश, आपके होते हुए दूसरा कौन वर्णन कर सकता है। आपने अपने ही मुख से अनेकों बार बहुत प्रकार से अपनी करनी कह डाली है। इतने से भी सन्तोष नहीं हुआ हो तो फिर कुछ और कह डालिये। क्रोध रोक कर आप असहनीय दुख मत सहिये। आप वीरता का व्रत धारण करने वाले, धैर्यवान और क्षोभ रहित हैं। अतः गाली देते आप शोभा नहीं पाते।

सूर समर··· ················ श्रम थोरें।

शब्दार्थ समर=युद्ध। करनी=शूर वीरता का कार्य। वध जोगू=वध करने योग्य। खर=तेज धार का। अकरुन=दया रहित। उरिन=उऋण।

सरलार्थ जो शूरवीर होते हैं वे तो करनी करते हैं, अपनी वीरता का प्रदर्शन करते हैं, केवल कहकर अपनी वीरता को प्रकट नहीं करते। शत्रु को युद्ध में उपस्थित पाकर कायर ही अपने प्रताप की डींग मारा करते हैं।

ऐसा विदित होता है मानो आप तो बार-बार हाँक लगा कर काल को मेरे लिए बुला रहे हैं। "लक्ष्मण जी के कठोर वचन सुनते ही परशुराम जी अपने भयानक फरसे को सुधार कर हाथ में ले कर बोले" अब लोग मुझे दोष न दें। यह कटु शब्द बोलने वाला बालक मारे जाने ही योग्य है। इसे बालक देख कर मैंने बहुत बचाया पर सचमुच अब यह मरने वाला हो गया है।" विश्वामित्र जी ने कहा "अपराध क्षमा कीजिए। बालकों के दोष और गुण को साधु लोग गिनती में नहीं लाते।" यह सुनकर परशुराम जी ने कहा "तीखी धार का कुठार मेरे पास है और मैं दया रहित तथा क्रोधी हूँ एवं गुरु द्रोही तथा अपराधी मेरे सम्मुख खड़ा उत्तर दे रहा है; इतने पर भी मैं इसे बिना मारे छोड़ रहा हूँ; इसका कारण हे विश्वामित्र! केवल तुम्हारा शील (प्रेम) है। नहीं तो इसे इस कठोर कुठार से काटकर थोड़े से परिश्रम से ही गुरु-ऋण से उऋण हो जाता।

गाधिसूनु कह.......................लखनु निवारे।

शब्दार्थ गाधिसूनु=विश्वामित्र। चिन्ता=दुख। जनु—मानो। व्यवहरिया=हिसाब करने वाले। तुरन्त=शीघ्र, तत्काल। सुभट=वीर, योद्धा। सैन=नेत्र का संकेत। निवारे=रोक दिया।

सरलार्थ विश्वामित्र जी ने हृदय में हँस कर कहा 'मुनि को हरा ही हरा दिखाई दे रहा है अर्थात् सदैव विजय पाने के कारण वह श्री राम और लक्ष्मण को भी साधारण क्षत्रिय समझ रहे हैं (किन्तु यह केवल फौलाद की बनी हुई लौहमयी खाँड़ (खाँड़, खड्ग,

तलवार) है, ऊख (गन्ना) की बनी हुई नहीं है, (जो मुँह में लेते ही गल जाय, शीघ्र नष्ट हो जाय)। व खेद है, मुनि अब भी इनके प्रभाव को नहीं समझ पा रहे हैं) जानकर भी अनजान बैठे हैं।'

लक्ष्मण जी ने परशुराम जी से कहा "हे मुनि ! आपका शील तो सम्पूर्ण संसार भर में प्रसिद्ध है; उसे कौन नहीं जानता ? सभी जानते हैं। आप माता-पिता से तो भली-भांति उऋण हो गए; पर अभी गुरु का ऋण शेष रहा है जिसके कारण आपका मन बहुत ही दुखी रहता है। ऐसा मालूम पड़ता है कि उसे आपने हमारे मत्थे मढ़ दिया है। उस कर्जे को लिए हुए बहुत दिन व्यतीत हो गए हैं, इसलिए स्वभावतः ब्याज भी बहुत बढ़ गया होगा। अब आप किसी कुशल हिसाब करने वाले को बुला लाइये तो मैं तुरन्त थैली खोलकर सम्पूर्ण कर्जा दे दूं।" लक्ष्मण जी के ऐसे कटु शब्दों को सुनकर परशुराम जी ने अपना कुठार सम्हाल लिया। यह देखकर सारी सभा हाय ! हाय ! पुकार उठी। लक्ष्मण जी बोले "हे भृगु-श्रेष्ठ ! आप मुझे फरसा दिखा रहे हैं ? पर हे राजाओं के शत्रु ! मैं ब्राह्मण समझ कर आपको छोड़े दे रहा हूँ, नहीं तो अब तक ऐसे चुप न बैठता। आपको युद्ध में कभी धीरवान सच्चे वीर नहीं मिले हैं। हे ब्राह्मण देवता ! आप घर ही में बड़े हैं।" यह सुनकर सब लोग कह उठे 'यह अनुचित है'। तब श्री रामचन्द्र जी ने संकेत करके लक्ष्मणजी को रोक दिया।

लखन उतर .... देख न मोही।

शब्दार्थ सरिस=समान। कृसानु=अग्नि। छोहू=कृपा, दया। सूध=सीधे, सरल। अयाना=अज्ञान। अवगरि=चपलता। मोद=प्रसन्नता। जुड़ाने=संतुष्ट हुए; शीतल हुए। बहुरि=फिर। पयमुख=दुध मुँहा। अनुहरद=अनुसरण करना। मीचु=काल, मृत्यु।

सरलार्थ लक्ष्मण जी के उत्तर से, जो कि आहुति (हवन सामग्री के समान थे, परशुराम जी की क्रोध रूपी अग्नि को बढ़ते

देखकर, रघुकुल के श्री रामचन्द्र जी जल के समान (शीतल, शांत करने वाले) वचन बोले—"हे नाथ ! बालक पर कृपा कीजिए। सीधे सच्चे दुधमुहे बच्चे पर कोई भी क्रोध नहीं करता। हे प्रभु ! यदि यह आपके प्रभाव को कुछ भी जानता तो क्या यह बेसमझ आपकी बराबरी करता। बालक यदि कुछ चपलता या भूल कर बैठते हैं तो गुरु पिता और माता मनमें आनन्द से भर जाते हैं। अतः इसे छोटा बच्चा और सेवक समझकर कृपा कीजिए। हे मुनि आप तो समदर्शी, सुशील, धीर और ज्ञानी हैं। श्री रामचन्द्र जी के इन शब्दों को सुनकर परशुराम जी कुछ ठन्डे पड़े ही थे कि इसी बीच में लक्ष्मण जी कुछ कह कर फिर हँस दिये। उनको हँसते देख कर परशुराम जी जी के नख से शिखा (चोटी) तक (सारे शरीर में) क्रोध छा गया उन्होंने कहा- हे राम तेरा भाई बड़ा पापी है इसका शरीर तो गोरा है पर हृदय बड़ा काला है। यह दुधमुँहा नहीं विसमुख वाला है। यह स्वभाव का ही टेढ़ा है। इसलिए तेरा अनुसरण नहीं करता अर्थात तुम्हारा जैसा शीलवान नहीं है। यह नीच मुझे काल के समान नहीं समझ पा रहा है।"

लखन कहेउ........................ ....बानी बाम।

शब्दार्थ मूल=जड़, प्रधान कारण। प्रतिकूल=उल्टा। अनुचर=सेवक, दास। परिहरि=छोड़कर। दाया=दया। पिराने=दर्द होना। मष्ट करहु=चुप रहिए। निहोरा=अहसान। कनके=सोना। गवने=चले गये। बानी बाम=टेड़े,कुटिल शब्द।

सरलार्थ लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा "हे मुनि ! सुनिये क्रोध पाप का मूल (मुख्य कारण) है। जिसके वश में होकर मनुष्य अनुचित कार्य कर बैठते हैं और संसार भर के विरुद्ध चलते हैं अर्थात सबका अहित (बुराई) करते हैं।

हे मुनिराज ! मैं आपका दास हूँ। अतः अब आप क्रोध को त्याग कर दया कीजिये। अब टूटा हुआ धनुष क्रोध करने से जुड़ नहीं सकता। खड़े-खड़े आपको बहुत देर हो गई, पैर दुखने लगे होंगे

अब बैठ जाइये। यदि धनुष बहुत ही प्रिय था तो कोई उपाय कीजिये, किसी बड़े गुणवान (कारीगर) को बुलाकर जुड़वा दीजिये" लक्ष्मण जी के बोलने से जनक जी डर जाते हैं और कहते है "बस, चुप रहिये, अनुचित बोलना अच्छा नहीं।" जनकपुर के स्त्री-पुरुष मारे डर के काँपने लगे और मन ही मन कहने लगे कि छोटा कुमार बड़ा ही खोटा है। लक्ष्मण जी की निडर वाणी को सुन सुनकर परशुरामजी का शरीर क्रोध के मारे जलने लगा और शरीर का बल कम होने लगा तब श्री रामचन्द्र जी पर अहसान जताकर परशुरामजी बोले- "तेरा छोटा भाई समझकर मैं इसे बचा रहा हूँ। इसका मन तो मैला है और शरीर बहुत सुन्दर है ऐसा है जैसे सोने के घड़े में विषरस भरा हो।"

यह सुनकर लक्ष्मण जी पुन हंसे तो श्री रामचन्द्र जी ने तिरछी नजर से उनकी ओर देखा, जिससे लक्ष्मण जी सकुचाकर और विपरीत बोलना छोड़कर गुरुजी के पास चले गये।

लक्ष्मण का माता से विदा माँगना

माँगहु विदा ....करब अकाजू

शब्दार्थ मुदित=प्रसन्न। लोचन=नेत्र। मलिन=उदास। दवा= दावाग्नि (अग्नि तीन प्रकार की होती है दावाग्नि जंगल में लगने वाली आग), बड़वाग्नि (समुद्र में लगने वाली आग), जठराग्नि पेट मे लगने वाली आग अर्थात भूख)।

प्रसंग प्रस्तुत चौपाइयाँ गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा प्रणीत 'रामचरितमानस' के 'अयोध्याकांड' से उद्धृत की गई हैं। यह उस समय का वर्णन है जब श्री राम और सीताजी बन जाने के लिए प्रस्तुत हैं। लक्ष्मण जी भी उनके साथ जाने की हठ करते हैं और किसी भी प्रकार समझाने पर नहीं मानते तो श्रीराम उन्हें (लक्ष्मण जी को) उनकी माताजी के पास बिदा माँगने भेजते हैं

"हे साई! जाकर माताजी से विदा माँग आओ और लौटकर जल्दी आकर वन चलो।" रघुकुल में श्रेष्ठ श्री रामचन्द्र जी की वाणी को सुनकर लक्ष्मणजी आनंदित हो गये। बड़ा लाभ हुआ और बड़ी हानि दूर हो गई। वे हर्षित हृदय से माता सुमित्रा जी के पास आये। वे इतने प्रसन्न थे मानों किसी अन्धे को फिर से नेत्र मिल गये हों। उन्होंने माताजी के चरणों में जाकर मस्तक नवाया। पर उनका मन तो रघुकुल को आनंदित करने वाले रामचन्द्र जी और जानकी जी के साथ था। लक्ष्मणजी को उदास देखकर माँ ने पूछा लक्ष्मण जी ने सब कथा विस्तार पूर्वक कह सुनायी। सुमित्रा जी ऐसे कठोर शब्दों को सुनकर उसी प्रकार भयभीत हो गईं जैसे हिरनी चारों ओर वन में आग लगी देखकर सहम जाती है। लक्ष्मण जी यह देखकर सोचने लगे कि आज अनर्थ हुआ। अब यह स्नेहवश काम बिगाड़ देंगी! इसलिए वे विदा माँगते हुए डर के मारे सकुचाते हैं और मन ही मन सोचने लगे कि हे विधाता! माता जी साथ जाने की आज्ञा देंगी अथवा नहीं।

समुझि सुमित्रा ....लाहू।

शब्दार्थ०- कुदाऊ=बुरा घात। भानु=सूर्य। सेइ अहि=सेवा करनी चाहिए। लाहू=लाभ।

सरलार्थ -सुमित्रा जी ने श्री रामचन्द्र जी और सीताजी के रूप सुन्दर शील और स्वभाव को समझकर और उन पर राजा का प्रेम देखकर अपना सिर धुना (पीटा) और कहा कि पापिनी कैकई ने बुरी तरह घात लगाया।

परन्तु कुसमय जानकर सुमित्रा जी ने धैर्य धारण किया और स्वभाव से ही हित चाहने वाली सुमित्राजी कोमल वाणी से बोलीं "हे पुत्र! जानकी जी तुम्हारी माता हैं और सब प्रकार से स्नेह करने वाले श्री रामचन्द्र जी तुम्हारे पिता हैं। जहाँ श्री रामचन्द्र जी का निवास हो वहीं अयोध्या है जैसे कि जहाँ सूर्य का प्रकाश हो वहीं दिन है। यदि निश्चय ही सीता-राम जा रहे हैं तो अयोध्या में तुम्हारा

कुछ भी काम नहीं है। गुरु, पिता, माता, भाई, देवता और स्वामी इन सब की सेवा प्राण के समान करनी चाहिए। फिर श्री रामचन्द्र जी तो प्राणों के भी प्रिय हैं, हृदय के भी जीवन है और सभी के स्वार्थ रहित सखा हैं।

संसार में जहाँ तक पूजनीय और परमप्रिय लोग हैं वे सब राम जी के नाते से ही (पूजनीय और परम प्रिय) मानने योग्य हैं। हे पुत्र हृदय में ऐसा जानकर उनके साथ वन जाओ और जगत में जीने का लाभ उठाओ।

भूरि भाग................ ...... इहइ उपदेसू

शब्दार्थ भाजनु=पात्र। ठाँउ=स्थान। बाँझ=बिना पुत्र वाली। बादि=व्यर्थ। बियानी=बालक को जन्म देना। हेतु=कारण सुकृत=पुण्य। इरिषा=जलन (शु० ईर्ष्या)। बिहाई=छोड़कर। सुपासू=आराम।

सरलार्थ- मैं बलिहारी जाती हूँ, हे पुत्र! मेरे समेत तुम बड़े ही सौभाग्यशाली पुत्र हो, जो तुम्हारे मन में छल छोड़कर श्री राम जी के चरणों में स्थान प्राप्त किया। अर्थात् उनकी भक्ति और प्रेम की इच्छा की।

संसार में वही स्त्री सच्ची पुत्रवती है जिसका पुत्र श्री रामचन्द्रजी का भक्त हो। नहीं तो जो राम की भक्ति से विमुख रहने वाले पुत्र से अपना भला जानती है, वह तो बाँझ ही अच्छी है और उसका पुत्र को जन्म देना व्यर्थ ही है। राग, रोष, ईर्ष्या, मद और मोह, इनके वश में स्वप्न में भी मत होना। सब प्रकार के विकारों को त्याग कर मन वचन और कर्म से श्री राम और सीताजी की सेवा करना। तुम्हारे लिए वन में सब प्रकार का आराम है क्योंकि तुम्हारे साथ वहाँ श्री राम रूपी पिता और सीता रूपी माता हैं। हे पुत्र तुम वैसा ही करना जिससे श्री रामचन्द्र जी को वन में क्लेश न होने पावे। यही मेरा उपदेश है।

उपदेसु यहु.. ....बस।

शब्दार्थ पुर=नगर। सुरति=याद। बिसरावा=भुला देना। आयसु=आज्ञा। आसिष=आशीर्वाद। रति=स्नेह, प्रेम। वागुर=फंदा। विषम=कठिन। मृग=हिरन। भाग बस=भाग्य से।

सरलार्थ हे तात! मेरा यही उपदेश है कि तुम वन में वही कार्य करना जिससे वन में तुम्हारे कारण श्री रामजी और सीता जी सुख पावें और पिता, माता, प्रिय परिवार तथा नगर के सुखों की याद भूल जाँय। तुलसीदास जी कहते हैं कि इस प्रकार सुमित्रा जी ने हमारे प्रभु (श्री लक्ष्मण जी) को शिक्षा देकर, वन जाने की आज्ञा दी और फिर यह आशीर्वाद दिया कि श्री सीताजी और श्री राम जी के चरणों में तुम्हारा निर्मल (निष्काम और अनन्य) एवं प्रगाढ़ प्रेम नित-नित नया हो।

माताजी के चरणों में सिर झुकाकर, हृदय में डरते हुए (फिर कहीं कोई विघ्न न पड़ जाय) लक्ष्मण जी शीघ्र ही इस प्रकार चल दिए जैसे सौभाग्यवश कोई हिरण कठिन फंदे को तोड़कर भाग निकला हो।

जटायु-रावण-युद्ध

हा जग........................ ...जतन कराइ।

शब्दार्थ दाया=दया। आरति हरन=दुख दूर करने वाले। सरोज=कमल। दिन नायक=सूर्य। रोसा=क्रोध। भूरि=बहुत। पुरोडस=यज्ञ का अन्न। रासभ=गदहा। आरत=दुखित। त्रासा=भय। जातुधान=राक्षस। पवि=बज्र। कृतांत=यमराज। जरठ=बूढ़ा। सलभ=पतिंगा। कच=बाल। दंड एक=घड़ीभर के लिए। बिरथ=रथ रहित। जान=रथ (शु० यान)। खल=दुष्ट। पादप=वृक्ष।

प्रसंग- प्रस्तुत चौपाइयाँ महात्मा तुलसीदास द्वारा रचित "रामचरितमानस के 'अरण्ड-काण्ड' से उद्धृत की गई हैं। राम और लक्ष्मण जब हिरन के पीछे चले गये तब सीता जी को अकेला पाकर

रावण उन्हें बल पूर्वक भगाए लिए जा रहा है वह विलाप करती जारही हैं उस विलाप को जटायु सुन लेता है और रावण से युद्ध करता है।

सरलार्थ सीताजी विलाप कर रही है "हे संसार में अद्वितीय वीर श्री रघुनाथ जी! मेरा कौन सा अपराध था जिस कारण आपने दया भुला दी। हे भगवान! आप दुखों के हरने वाले और शरणागत को सुख देने वाले हैं। हे रघुकुल रूपी कमल के सूर्य! आप कहाँ हो? हा लक्ष्मण! तुम्हारा दोश नहीं है मैंने व्यर्थ में क्रोध किया उसका फल भी मुझे मिल गया।" श्री जानकी जी इस भाँति बहुत प्रकार से विलाप कर रही हैं "हाय! प्रभु की कृपा तो मेरे ऊपर बहुत है परन्तु वे स्नेही प्रभु बहुत दूर रह गये हैं। प्रभु को मेरी यह विपत्ति कौन सुना सकेगा? यज्ञ के अन्न को गदहा खाना चाहता है अर्थात् अनधिकारी वस्तु को प्राप्त करना चाहता है।" सीता जी के इस कठिन विलाप और करुण क्रन्दन को सुनकर, जड़-चेतन सभी जीव दुखी हो गये। गृद्धराज जटायु ने सीता जी की दुखभरी वाणी को सुनकर जान लिया कि यह रघुकुल तिलक श्री रामचन्द्र जी की पत्नी हैं। उसने देखा कि नीच राक्षस उनको इस बुरी तरह लिए जा रहा है जैसे कपिला गाय किसी म्लेच्छ के पाले पड़ गई हो करुण क्रंदन को सुन जटायु बोला "हे पुत्री सीता! भय मत कर मैं इस राक्षस का नाश कर दूँगा।" यह कह कर वह पक्षी क्रोधित होकर ऐसे दौड़ा जैसे पर्वत की ओर वज्र छूटता है और फिर वह ललकारा "रे, दुष्ट! खड़ा क्यों नहीं होता। निडर होकर जा रहा है। क्या तू मुझे नहीं जानता है?" उसको यमराज के समान अपनी ओर आता देख रावण घूमकर मन में अनुमान करने लगा 'यह या तो मैनाक पर्वत है, या पक्षियों का स्वामी गरुण है। पर वह (गरुण) तो अपने स्वामी विष्णु सहित मेरे बल को जानता है।' जब जटायु कुछ पास आ गया तो रावण ने उसे पहिचान लिया और बोला "यह तो बूढ़ा जटायु है! यह मेरे हाथ रूपी तीर्थ में

अपना शरीर छोड़ेगा।" यह सुनते ही गिद्ध क्रोध में भरकर बड़े वेग से दौड़ा और बोला "हे रावण! मेरी शिक्षा सुन जानकी जी को छोड़कर कुशलपूर्वक अपने घर चलाजा अन्यथा ऐसा होगा कि श्री राम जी के क्रोध रूपी अत्यन्त भयानक अग्नि मे पतिंगा हो जायगा अर्थात् भस्म हो जाय ।।" योद्धा रावण ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया तो गीध उसकी ओर क्रोध करके दौड़ा। उसने रावण के बाल पकड़ कर उसे रथ के नीचे उतार लिया, रावण पृथ्वी पर गिर पड़ा। गीध सीता जी को एक ओर बैठाकर फिर रावण की ओर लौटा और चोंच से मार मार कर उसके शरीर को विदीर्ण कर डाला। इससे वह एक घड़ी भर के लिए मूर्छित हो गया। फिर रावण खिसियाकर क्रोध में भर गया और अत्यन्त भयानक कटार निकाल कर, जटायु के पंख काट दिए। पक्षी (जटायु) श्री राम जी की अनोखी लीला (कार्य का) स्मरण कर पृथ्वी पर गिर पड़ा। सीता जी को फिर रथ पर चढ़ाकर रावण उतावला होकर, निडर हो आगे बढ़ा। सीता जी आकाश में इस भाँति विलाप करती हुई जा रहीं थी जैसे व्याध (शिकारी) के वश में पड़ी हुई (जाल में फँसी हुई) कोई भयभीत हिरनी हो।

ऊपर से सीता जी ने पहाड़ पर बैठे हुए बन्दरों को देखा तो भगवान राम का नाम लेकर वस्त्र डाल दिया। इस प्रकार वह सीता जी को ले गया और उन्हें अशोक बन में जा रक्खा।

सीता जी को भय और प्रेम दिखाकर जब वह दुष्ट हार गया तो यत्न कराके (सब व्यवस्था ठीक कराकर) उन्हें अशोक के वृक्ष के नीचे रख दिया।

ऋतु-वर्णन

शब्दार्थ निकर=समूह। सैल=पर्वत (शु० शैल) अनूपा=अनोखे। सुभ्र=उज्वल (शु० शुभ्र)। बिबेक=ज्ञान। नभ=आकाश। सुहाए=सुन्दर।

प्रसंग प्रस्तुत चौपाइयाँ गोस्वामी तुलसी दास जी द्वारा रचित

"रामचरितमानस" के 'किष्किंधा काण्ड' से उद्धृत की गई हैं। बालि को मारकर, सुग्रीव को भय मुक्त कर श्री राम और लक्ष्मण जी प्रवर्षण पर्वत पर चले आए। उसी वन का तथा ऋतुओं का वर्णन प्रस्तुत चौपाइयों में किया गया है।

सुन्दर वन फूला हुआ अत्यन्त सुशोभित है। भौंरों के समूह के समूह मधु के लोभ से गुंजार कर रहे हैं। जब से श्री राम जी जीवन में आए हैं तब से वहाँ सुन्दर कन्द, मूल और पत्ते अत्यधिक संख्या में हो गये हैं। मनोहर और अनुपम पर्वत को देखकर देवताओं के सम्राट श्री राम जी छोटे भाई लक्ष्मण जी के साथ वहाँ रह गये। देवता सिद्ध और मुनि भौंरों, पक्षियों और पशुओं के शरीर धारण करके प्रभु की सेवा करने लगे। जबसे रमापति श्री राम जी ने वहाँ निवास किया तब से वन मंगल-स्वरूप (कल्याणकारी) हो गया। सुन्दर स्फटिक मणि की एक अत्यन्त उज्ज्वल शिला पर दोनों भाई सुखपूर्वक विराजमान हैं। श्री राम जी अपने छोटे भाई लक्ष्मण जी से भक्ति, वैराग्य राजनीति और ज्ञान की अनेकों कथायें कहते हैं। वर्षा ऋतु में बादल आकाश में छा गये हैं। जब यह बादल गरजते हैं तो बहुत ही सुन्दर प्रतीत होते हैं।

लछिमन देखु ... .हरि पाई।

शब्दार्थ पेख=देखकर। बारिद=बादल। दामिनि=बिजली। खल=दुष्ट। थिर=स्थिर। जलद=बादल। निअराएँ=पास आकर। बुध=विद्वान। ढाबर=गंदला।

सरलार्थ श्री रामचन्द्र जी अपने छोटे भाई से कह रहे हैं "हे लक्ष्मण! मोरों के झुंड बादलों को देखकर नाच रहे हैं और वे उन्हें देखकर उसी प्रकार प्रसन्न हो रहे हैं जैसे वैराग्य में अनुरक्त गृहस्थ किसी विष्णु भक्त को देखकर हर्षित होते हैं।

आकाश में बादल घुमड़-घुमड़कर घोर गर्जना कर रहे हैं प्रिया (सीताजी) के बिना मेरा मन डर रहा है। बिजली की चमक बादल में स्थिर नहीं रह पाती, क्षण भर चमक कर लुप्त हो जाती है जैसे कि

दुष्ट व्यक्ति का प्रेम स्थिर नहीं रहता है। छोटी नदियाँ पानी से पूरी भरी हुई, किनारों को तोड़ती हुई उसी प्रकार बह रही हैं जैसे दुष्ट व्यक्ति थोड़े से ही धन से इतरा जाते हैं। पृथ्वी पर गिरते ही पानी गंदला हो गया है; जैसे कि शुद्ध जीव से माया लिपट गई हो। चारों ओर एकत्रित होकर पानी तालाबों में भर रहा है जैसे सद्गुण धीरे-धीरे एक-एक करके सज्जन व्यक्ति के पास चले आते हैं। नदी का पानी समुद्र में आकर वैसे ही स्थिर हो जाता है, जैसे जीव श्री हरि को पाकर अचल (आवागमन से मुक्त) हो जाता है।

हरित भूमि..............................उपजें ग्याना ।

शब्दार्थ—संकुल=परिपूर्ण, घनी। दादुर=मेंढ़क। वटु=विद्यार्थी, ब्रह्मचारी (शु० वटु) बिटप=वृक्ष। अर्क मदार। ससि=हरी भरी (शस्य श्यामला)। खद्योत=जुगनू। ऊसर=अनुपजाऊ भूमि।

सरलार्थ पृथ्वी घास से परिपूर्ण होकर हरी हो गई है, जिसके कारण रास्ता समझ में नहीं आता (दिखाई नहीं देता), जिस प्रकार कि पाखण्ड मत के प्रचार से सद्ग्रन्थ (अच्छी-अच्छी पुस्तक) गुप्त (लुप्त)हो जाते हैं।

चारों दिशाओं में मेढ़क की आवाज ऐसी सुहावनी लगती है मानो विद्यार्थियों के समूह मिलकर वेदपाठ कर रहे हों। अनेकों वृक्षों में नये पत्ते आ गये हैं जिसमें वे ऐसे हरे-भरे एवं सुशोभित हो गये हैं जैसे साधक का मन विवेक (ज्ञान) प्राप्त होने पर हो जाता है। मदार और जवासे के पत्ते झड़ गये हैं (वर्षा ऋतु में यह वृक्ष सूख जाते हैं) जैसे श्रेष्ठ राज्य में दुष्टों का उद्यम (बुरे और घृणित कार्य) जाता रहता है। धूल कहीं खोजने पर भी नहीं मिलती जैसे क्रोध धर्म को दूर कर देता है।। अर्थात् क्रोध का आवेश आने पर धर्म का ज्ञान नहीं रह पाता है। अन्न से युक्त शस्य श्यामला भूमि (लहलहाती हुई खेती से हरी-भरी) पृथ्वी कैसी शोभित हो रही है, जैसी उपकारी पुरुष की सम्पत्ति। रात के घने अंधकार में जुगनू ऐसे दिखाई दे रहे हैं मानो दम्भियों का समाज एकत्र हो गया हो। बहुत अधिक वर्षा

होने के कारण क्यारियाँ फूट चली हैं; जैसे कि स्वतन्त्र होने से स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं। चतुर किसान खेतों को निरा रहे हैं (उनमें से घास आदि व्यर्थ के पौधों को निकाल कर फेंक रहे हैं।) जैसे विद्वान लोग मोह, मद और मान का त्याग कर देते हैं। चक्रवाक पक्षी दिखाई नहीं देते हैं; जैसे कलियुग में धर्म भाग जाता है। ऊसर भूमि में वर्षा होती है पर वहाँ घास तक नहीं उग पाती, जैसे कि भगवान के भक्त के हृदय में काम (वासना) नहीं उत्पन्न होता, अनेक भाँति के जीवों से भरी हुई पृथ्वी उसी प्रकार शोभायमान है जैसे स्वराज्य पाकर प्रजा की वृद्धि होती है। जहाँ-तहां अनेक पथिक थक कर ठहरे हुए हैं, जैसे ज्ञान उत्पन्न होने पर इन्द्रियाँ शिथिल होकर विषयों की ओर जाना छोड़ देती हैं।

कबहुँ प्रबल............................मोरी।

शब्दार्थ प्रबल=तेज। मारुत=हवा। बिलाहिं=छिप जाना। नसाहिं=नष्ट होना। निबिड़तम=घना अंधकार। पतंग=सूर्य। बिनसइ=नष्ट होना। बिगत=बीत गई। पंथ=रास्ता। सोषा=सूखना। गत=रहित। सर=तालाब। सुकृतरा=पुण्य। पंक=कीच बिकल=दुखी। मीन=मछली।

सरलार्थ कभी-कभी वायु बड़े जोर से चलने लगती है जिससे बादल इधर-उधर छिप जाते हैं। जैसे कि कुपुत्र के उत्पन्न होने से कुल के उत्तम धर्म (श्रेष्ठ आचरण) नष्ट हो जाते हैं।

कभी बादलों के कारण घना अन्धकार हो जाता है और कभी सूर्य प्रगट हो जाता है। जैसे कुसंग (बुरा साथ) पाकर ज्ञान नष्ट हो जाता है और सुसंग (अच्छी संगत) पाकर उत्पन्न हो जाता है।

हे लक्ष्मण! देखो वर्षा ऋतु बीत गई है और अब बहुत सुन्दर शरद्-ऋतु आगई है फूले हुए कास सारी पृथ्वी पर छा गये हैं। मानों वर्षा ऋतु ने कास रूपी सफेद बालों के रूप में अपना बुढ़ापा प्रगट किया है। (बुढ़ापे में बाल सफेद हो जाते हैं)। अगस्त्य तारा निकल आया है और मार्ग का जल सूख गया है जैसे कि संतोष, लोभ को

को सोख लेता है।। नदियों और तालावों का जल धीरे-धीरे सूख रहा है। जैसे ज्ञानी (विवेकी) पुरुष ममता को छोड़ देते हैं। शरद ऋतु जानकर खंजन पक्षी आ गये हैं; जैसे समय पाकर सुन्दर सुकृत आ जाते हैं (पुण्य प्रगट हो जाते हैं)। कीचड़ और धूल रहित पृथ्वी निर्मल होकर ऐसी शोभा दे रही है जैसे नीति निपुण राजा के अच्छे कार्य। जल कम हो गया है इसलिए मछलियाँ व्याकुल हो रही हैं जैसे मूर्ख (अज्ञान) कुटुम्बी (गृहस्थ) धन के बिना व्याकुल होता है। बादलों रहित निर्मल आकाश इस प्रकार सुशोभित हो रहा है जैसे भगवद्भक्त सब आशाओं को छोड़कर सुशोभित होते हैं। कहीं-कहीं (बिरले ही स्थानों पर) शरद-ऋतु की थोड़ी-थोड़ी वर्षा हो रही है; जसे कोई बिरले ही मेरी भक्ति पाते हैं।

चले हरषि....... . . . .श्रम समुदाई।

शब्दार्थ नीर=पानी। बाधा=आपत्ति। मधुकर=भौंरा। मुखर=बोलना। खग=पक्षी। रव=शब्द। निस=रात्रि। तृषा=प्यास। टरई=दूर होना। इंदु=चन्द्रमा। मसक=मच्छर। हंस=डाँस हिम=बर्फ, जाड़ा। त्रासा=भय, डर। द्विज=ब्राह्मण।

सरलार्थ–शरद-ऋतु पाकर राजा, तपस्वी व्यापारी और भिखारी क्रमशः विजय, तप, व्यापार और भिक्षा के लिये प्रसन्न होकर नगर छोड़ कर चल दिये जैसे श्री हरि की भक्ति पाकर चारों आश्रम वाले (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास) नाना प्रकार के साधन रूपी श्रमों को त्याग देते हैं।

जो मछलियाँ गहरे जल में रह रही हैं वे सुखी हैं। जैसे श्री हरि के चरणों में चले जाने पर एक भी बाधा नहीं रहती। कमलों के फूलने से तालाब कैसी शोभा दे रहा है, जैसे निर्गुण ब्रह्म सगुण होने पर शोभित होता है। भौंरे अनोखे शब्द करते हुए गूँज रहे हैं एवं पक्षियों के नाना प्रकार के सुन्दर शब्द हो रहे हैं। रात्रि देखकर चकवे के मन में वैसे ही दुख हो रहा है जैसे दूसरे की सम्पत्ति देखकर दुष्ट को होता है, पपीहा रट लगाये है उसको बड़ी प्यास लगी है। वह उसी प्रकार तृषित है जिस प्रकार श्री शंकर जी का विरोधी सुख नहीं

पाता (सुख के लिए भीखता रहता है ।) शरद ऋतु के ताप (गर्मी) को रात के समय चन्द्रमा हर लेता है; जैसे कि सतों के दर्शन से पाप दूर हो जाते हैं । चकोरों के समुदाय चन्द्रमा को इस प्रकार टकटकी लगाये देख रहे हैं जैसे भगवद् भक्त भगवान को पाकर उनके निर्निमेष नेत्रों से दर्शन करते हैं। मच्छर और डाँस जाड़े के डर से इस प्रकार नष्ट हो गये हैं जैसे ब्राह्मण के साथ वैर करने से कुल का नाश हो जाता है।

वर्षा ऋतु के कारण पृथ्वी पर जो जीव भर गये थे वे शरद ऋतु को पाकर वैसे ही नष्ट हो गये जैसे सद्गुरु के मिल जाने पर सन्देह और भ्रम के समूह नष्ट हो जाते हैं।

विशेष तुलसी दास जी की उपदेश देने की प्रवृत्ति है। प्रकृति वर्णन करते समय भी वे उपदेश-लोभ को नहीं छोड़ सकते है। इसलिए उनका प्रकृति वर्णन शुद्ध कोटि का नहीं है; वह उपदेश से अछूता नहीं नहीं है। प्रकृति वर्णन में उपमा, रूपक आदि अलंकारों का सुन्दर एवं यथा योग्य समावेश है।

विभीषण का रावण को समझाना

अवसर जानि ... .न कोऊ।

श०शर्थ० निज=अपना। लिलार=ललाट, मुख। भूत=जीव, प्राणी। विष्टइ=ठहर सकना। नागर=चतुर। अलप=थोड़ा। भी (शु० अल्प)

प्रसंग रामचन्द्र जी की सेना लंका में प्रवेश कर गई तो यह सूचना शीघ्र ही रावण को मिल गई। इस सूचना के मिलने पर वह सबसे सलाह लेने लगा। विभीषण से भी उसने सलाह माँगी तो वह कहने लगा:

सरलार्थ उचित तथा अनुकूल अवसर जानकर विभीषण जी आये और उन्होंने बड़े भाई के चरणों में सिर झुकाया। फिर वे

सिर झुकाकर अपने आसन पर बैठ गये और आज्ञा पाकर कहने लगे "हे कृपालु ! जब आपने मुझसे बात (राय) पूछी ही है, तो हे तात ! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार आपके हित की बात कहता हूँ। यदि आप अपना कल्याण, सुन्दर, यश सुबुद्धि, शुभ गति और नाना प्रकार के सुख चाहते हो तो हे स्वामी ! पर-स्त्री के ललाट को चौथ के के चन्द्रमा की तरह त्याग दीजिए, अर्थात् जिस प्रकार चौथ के चन्द्रमा को देखने का निषेध है उसी प्रकार पर स्त्री का मुख देखना भी बुरा तथा आपत्ति दायक है। चौदह भुवनों का एक ही स्वामी हो वह भी जीवों से वैर करके ठहर नहीं सकता अर्थात् नष्ट हो जाता है। जो मनुष्य गुणों का समुद्र और चतुर हो उसे चाहे थोड़ा भी लोभ क्यों न हो तो भी कोई भला नहीं कहता।

काम क्रोध..............................जिय रावन।

शब्दार्थ पंथ=रास्ता। रंजन=प्रसन्न करने वाले। व्राता=समूह। तजि=छोड़कर। प्रनतारति=शरणागत का दुख प्रनत+आरति)। अघ=पाप। त्रय ताप=तीनों प्रकार के कष्ट दैहिक, दैविक, भौतिक।

सरलार्थ हे नाथ ! काम, क्रोध, मद और लोभ ये सब नरक के रास्ते हैं अर्थात सत जीवन के लिए अहितकर हैं। इन सब को छोड़ कर श्री रामचन्द्र जी का स्मरण कीजिए जिन्हें कि संत (सत्पुरुष) भजते हैं।

हे तात ! राम मनुष्यों के ही राजा नहीं हैं वे समस्त लोकों के स्वामी और काल के भी काल हैं वे (सम्पूर्ण ऐश्वर्य, यश, श्री, धर्म, वैराग्य एवं ज्ञान के भंडार) भगवान हैं; वे निरामय (विकार रहित) अजन्मा, व्यापक, अजेय, अनादि और अनन्त ब्रह्म हैं। उन कृपा के समुद्र भगवान ने पृथ्वी, ब्राह्मण, गौ और देवताओं का हित करने के लिए ही मनुष्य शरीर धारण किया है। हे भाई ! सुनिये, वे सेवकों को आनंद देने वाले, दुष्टों के समूह का नाश करने वाले तथा वेद एवं धर्म की रक्षा करने वाले हैं। अतः वैर त्याग कर उन्हें मस्तक

नवाइये। वे श्री रघुनाथ जी शरणागत का दुःख नाश करने वाले हैं। हे नाथ! उन प्रभु (सर्वेश्वर) को जानकी दे दीजिए और बिना ही कारण स्नेह करने वाले श्री राम जी को भजिये। जिसे सम्पूर्ण जगत से द्रोह करने का पाप लगा है शरण जाने पर प्रभु उसका भी त्याग नहीं करते। जिसका नाम तीनों तापों का नाश करने वाला है, वे ही प्रभु (भगवान) मनुष्य रूप से प्रकट हुए हैं। हे रावण! आप हृदय में इस बात को भली भाँति समझ लीजिये।

बारन्बार पद.........................प्रीति घनेरी

शब्दार्थ तुरत=शीघ्र तुरंत। सचिव=मंत्री। उर=हृदय। रिपु=शत्रु, वैरी। उतकरस=बड़ाई, महिमा (शु०-उत्कर्ष)। निगम=वेद। निदाना=परिणाम में। घनेरी= बहुत अधिक।

सरलार्थ हे दशशीश! (रावण) मैं वार-वार आपके चरणों पर गिरता हूँ और विनती करता हूँ कि मान, मोह और मद को कर आप कोशलपति श्री रामचन्द्र जी का भजन कीजिए।

मुनि पुलस्त्य जी ने अपने शिष्य के हाथ यह बात कहला भेजी है। हे तात! सुन्दर अवसर पाकर मैंने तुरंत यह बात प्रभु (आप) से कह दी है।

वहाँ पर माल्यवान् नाम का एक बहुत ही बुद्धिमान मंत्री था उसने उनके (विभीषण) के वचन सुन कर बहुत सुख माना और कहा "हे तात! आपके छोटे भाई नीति विभूषण (नीति को भूषण रूप में धारण करने वाले अर्थात् नीतिमान) हैं। विभीषण जो कुछ कह रहे हैं उसे हृदय में धारण कर लीजिए।" यह सुनकर रावण बोला "यह दोनों मूर्ख शत्रु की महिमा का वर्णन कर रहे हैं। यह कोई है ? इन्हें दूर क्यों नहीं करते!" यह सुनकर माल्यवान् तो घर लौट गया और विभीषण जी हाथ जोड़कर फिर कहने लगे "हे नाथ! पुराण और वेद ऐसा कहते हैं कि सुबुद्धि (अच्छी बुद्धि) कुबुद्धि (खोटी बुद्धि) सबके हृदय में रहती है। जहाँ सुबुद्धि है वहाँ नाना प्रकार की सम्पदाएँ (सुख की स्थिति) रहती हैं और

जहाँ कुबुद्धि है वहाँ परिणाम में विपत्ति (दुःख) रहती है। आपके हृदय में उल्टी बुद्धि आ बसी है। इसी से आप हित को अहित और शत्रु को मित्र मान रहे हैं। जो राक्षस कुल के लिये काल रात्रि के समान हैं। उन सीता पर आपकी बड़ी प्रीत है।

तात चरन गहि.........................जानि जन खोरि।

शब्दार्थ- संमत=अनुमोदित। सठ=मूर्ख। प्रहार=चोट, हमला संद=बुराई। सरिस=समान। सचिव=मंत्री। नभपथ=आकाश मार्ग।

सरलार्थ हे तात! मैं चरण पकड़कर आपसे भीख माँगता हूँ (विनती करता हूँ) कि आप मेरा दुलार रखिये अर्थात् मुझ बालक के आग्रह को स्नेह पूर्वक स्वीकार कीजिए। श्री राम जी को सीता जी को लौटा दीजिए, जिससे कि आपका कोई अहित (बुराई) न हो।

विभीषण ने पण्डितों, पुराणों और वेदों द्वारा सम्मत (अनुमोदित) वाणी से नीति बखान कर कही। पर उसे सुनते ही रावण क्रोधित होकर उठा और बोला कि रे दुष्ट! अब तेरे निकट मृत्यु आ गई है। अरे मूर्ख! तू मेरा जिलाया हुआ तो जीता है अर्थात् मेरे अन्न पर पल रहा है। पर हे मूर्ख! पक्ष तुझे शत्रु का ही अच्छा लगता है अर्थात् शत्रु का पक्ष लेता है अरे दुष्ट! बता न संसार में ऐसा कौन है जिसे मैंने अपनी भुजाओं के बल से न जीता हो। मेरे नगर में रह कर भी तपस्वियों से प्रेम करता है। मूर्ख! उन्हीं से जा मिल और उन्हीं को नीति बता। ऐसा कहकर रावण ने उनके लात मारी। लेकिन छोटे भाई विभीषण ने मारने पर भी बार-बार उसके चरण ही पकड़े। शिवजी कहते हैं- 'हे उमा संतों की यही महिमा (विशेषता) है कि वे बुराई करने पर भी (बुराई करने वाले की) भलाई करते हैं।" विभीषण जी ने रावण से कहा "आप मेरे पिता के समान हैं, मुझे मारा सो तो अच्छा ही किया; परन्तु हे नाथ! आपका भला श्री राम जी को भजने में ही है।" इतना कहकर विभीषण अपने मंत्रियों को साथ लेकर आकाश मार्ग में गये और सबको सुनाकर वे

ऐसा कहने लगे

"श्री राम जी सत्य संकल्प एवं (सर्वसमर्थ) प्रभु हैं और हे रावण! तुम्हारी सभा काल के वश है। अतः मैं अब श्री रघुवीर की शरण जाता हूँ, मुझे दोष मत देना।"

विभीषण का राम की शरण में जाना

कह सुग्रीव..............................बच्छल भगवान।

शब्दार्थ- कामरूप=छली, इच्छानुसार रूप बदलने वाला। नीकि=अच्छी। पन=प्रण। बच्छल=प्रेम, स्नेह करने वाले (शु०- वत्सल)

प्रसंग विभीषण ने रावण को बहुत समझाया कि सीता जी को लौटा दो और श्री राम जी से जाकर क्षमा माँग लो इसीमें तुम्हारा कल्याण है, पर वह किसी भी भाँति नहीं माना तो विभीषण जी स्वयं राम की शरण में चले आए।

सरलार्थ सुग्रीव ने भगवान राम के पास जाकर कहा- हे रघुनाथ जी! सुनिये रावण का भाई आपसे मिलने आया है। प्रभु श्री राम जी ने कहा हे मित्र! तुम क्या समझते हो अर्थात् तुम्हारी क्या राय है?" उत्तर में वानरराज सुग्रीव ने कहा "हे महाराज! सुनिये राक्षसों की माया जानी नहीं जाती। यह इच्छानुसार रूप बदलने वाला छली न जाने किस कारण से आया है। जान पड़ता है यह मूर्ख हमारा भेद लेने आया है। इसलिए मुझे तो यही अच्छा लगता है कि इसे बाँध रक्खा जाय।" यह सुनकर श्री रामचन्द्र जी ने कहा। "हे मित्र! तुमने नीति (उपाय) तो अच्छी सोची है, परन्तु मेरा प्रण तो शरणागत के भय को हर लेने का है।" भगवान राम के इन वचनों को सुनकर हनुमानजी बहुत ही हर्षित हुए और मन ही मन कहने लगे भगवान वास्तव में शरणागत वत्सल हैं अर्थात् शरण में आए हुए पर पिता की भाँति प्रेम करने वाले हैं।

सरनागत कहुँ.... .... प्रान की नाईं।

शब्दार्थ---तजहिं=छोड़ते हैं। पामर=क्षुद्र, नीच। बध=हत्या, मारना। अघ=पाप। हनइ=मार सकते हैं सभीत=डरकर।

सरलार्थ भगवान राम ने आगे कहा "जो मनुष्य अपने अहित (हानि) का अनुमान करके शरण में आये हुए का त्याग कर देते हैं वे क्षुद्र हैं, पापमय हैं उन्हें देखने में भी हानि है और पाप लगता है।

यदि किसी को करोड़ों ब्राह्मणों की हत्या का पाप लगा हो तो शरण में आने पर मैं उसे भी नहीं त्यागता। जीव ज्यों ही मेरे सम्मुख होता है त्यों ही उसके करोड़ों जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं। पापी का यह सहज स्वभाव है कि मेरा भजन उसे कभी अच्छा नहीं लगता यदि वह (विभीषण) निश्चय ही दुष्ट का हृदय होता तो क्या वह मेरे सम्मुख आ सकता था ? जो मनुष्य पवित्र और मन का शुद्ध होता है वही मुझे पाता है। मुझे कपट और छल-छिद्र अच्छे नहीं लगते। यदि उसे रावण ने भेद लेने भेजा है, तब भी हे सुग्रीव ! हमें कुछ भी डर या हानि नहीं है। क्यों कि हे सखे ! संसार में जितने भी राक्षस हैं, लक्ष्मण क्षण भर में उन सब को मार सकते हैं और यदि वह भयभीत होकर मेरी शरण में आया है तो मैं उसे प्राणों भाँति ही रक्खूँगा।

उभय भाँति··· .... तम पर नेहा।

शब्दार्थ उभय=दोनों। समेत=साथ। प्रलंब=लम्बी, विशाल कंजारुन=लाल कमल (कंज+अरुन शु०-अरुण) मोचन=नाश करने वाले। आयत उर=विशाल वक्षस्थल, चौड़ी छाती। आनन=मुख। अमित=बहुत। उलूकहि=उल्लू को। तम=अंधकार।

सरलार्थ कृपा के घर श्री राम जी ने हँसकर कहा "दोनों ही स्थिति में उसे ले आओ।" यह सुन अंगद और हनुमान सहित सुग्रीव जी 'कृपालु श्री राम की जय हो' कहते हुए चले।

विभीषण जी को आदर सहित आगे करके वानर फिर वहाँ चले जहाँ करुणा की खान श्री रघुनाथ जी विराजमान थे। नेत्रों को आनंद देने वाले (अत्यन्त सुखद) दोनों भाइयों को विभीषण जी ने दूर ही

से देखा। फिर शोभा के घर श्री राम जी को देखकर वे पलक मारना रोककर, ठिठक कर स्तब्ध रह गये और एक टक देखते ही रह गये हैं। भगवान की भुजायें विशाल हैं, नेत्र लाल कमल के समान हैं और शरणागत के भय का नाश करने वाला शरीर साँवला है। उनके कंधे सिंह के समान हैं और वक्षःस्थल (छाती) विशाल (चौड़ी) जोकि अत्यन्त शोभा दे रहा है। उनका मुख असंख्य कामदेवों के मन को मोहित करने वाला है। भगवान के इस स्वरूप को देखकर विभीषण के नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया और शरीर अत्यन्त पुलकित हो गया। फिर मन में धैर्य धारण कर उन्होंने कोमल वचन कहे "हे नाथ! मैं दशमुख रावण का भाई हूँ। हे देवताओं के रक्षक! मेरा जन्म राक्षस कुल में हुआ है। मेरा शरीर तामसी है और स्वभाव से ही मुझे पाप प्रिय है उसी प्रकार जिस प्रकार कि उल्लू को अन्धकार पर सहज स्नेह होता है।

श्रवन सुजसु ... .जन दाया।

शब्दार्थ- भव=संसारी। भंजन=नाश करने वाले। त्राहि=रक्षा कीजिए। आरति हरन=दुख दूर करने वाले। गहि=पकड़कर ढिग=पास। कुठाहर=कुठौर, बुरी जगह। खल=दुष्ट। नयनिपुन=नीतिवान, नीति निपुण। जन=भक्त, सेवक। दाया=दया, कृपा।

सरलार्थ मैं कानों से आपका सुयश सुनकर आया हूँ कि प्रभु संसारी दुख का नाश करने वाले हैं। हे दुखियों के दुख दूर करने वाले और शरणागत को सुख देने वाले श्री रघुवीर मेरी रक्षा कीजिये।"

प्रभु ने देखा कि ऐसा कहकर विभीषण दण्डवत कर रहा है तो वे अत्यन्त हर्षित होकर शीघ्र ही उठे। विभीषण जी के दीन वचन प्रभु के मन को बहुत अच्छे लगे। उन्होंने अपनी भुजाओं से पकड़कर विभीषण को हृदय से लगा लिया। छोटे भाई लक्ष्मण जी सहित गले मिलकर और उनको अपने पास बिठाकर श्री राम जी भक्तों के भय को दूर करने वाले वचन बोले "हे लंकेश! परिवार सहित अपनी

कुशलता कहो, तुम्हारा निवास तो बुरी जगह पर है। दिन रात दुष्टों की मंडली में रहते हो। ऐसी दशा में हे सखे! तुम्हारा धर्म किस प्रकार निभता है? मैं तुम्हारी सब रीति (आचार-व्यवहार) जानता हूँ। तुम अत्यन्त नीति निपुण हो, तुम्हें अनीति (नीति विरुद्ध) अच्छी नहीं लगती। हे तात! नरक में रहना अच्छा है, पर विधाता दुष्ट का साथ कभी न दे।" यह सुनकर विभीषण बोला। हे रघुनाथ जी अब आपके चरणों के दर्शन कर कुशलपूर्वक हूँ; क्योंकि आपने अपना सेवक जानकर मुझ पर दया की है।

तब लगि... ....मोहि लावा।

शब्दार्थ मच्छर=डाह, जलन (शु० मत्सर) सायक=बाण। अनुकूला=प्रसन्न। सूला=कष्ट। अधम=नीच। आचरनु=कार्य। भाथा=तरकश, जिसमें बाण रखे जाते हैं।

सरलार्थ तब तक जीव की कुशलता नहीं है और। न स्वप्न में भी उसके मन को शान्ति मिल सकती है जब तक कि वह शोक के घर काम (विषय वासना, कामना, इच्छा) को छोड़कर श्री रामचन्द्र जी का भजन नहीं करता।

लोभ, मोह मत्सर (डाह, जलन), मद और मान आदि अनेकों दुष्ट तभी तक हृदय में बसते हैं जब तक कि धनुष-बाण और कमर में तरकश धारण किए हुए श्री रघुनाथ जी हृदय में निवास नहीं कर पाते हैं। ममता (मेरा तेरा) पूर्ण अंधेरी रात है, जो राग द्वेष रूपी उल्लुओं को सुख देने वाली है। वह ममता रूपी रात्रि जीव में तभी तक बसती है, जब तक कि आपका (प्रभु) का प्रताप रूपी सूर्य उदय नहीं होता। हे श्रीराम जी! आपके चरणारविन्द (चरण कमल) के दर्शन कर अब मैं कुशल से हूं; मेरे भारी भय मिट गए हैं। हे कृपालु! आप जिस पर प्रसन्न होते हैं उसे तीनों प्रकार के भवशूल (आध्यात्मिक, आधि दैविक और आधि भौतिक) नहीं व्यापते अर्थात् हानि नहीं पहुँचाते। मैं अत्यन्त नीच स्वभाव का राक्षस हूँ मैंने कभी भी शुभ आचरण (पवित्र कार्य) नहीं किए हैं। जिन

भगवान का रूप मुनियों के भी ध्यान में नहीं आता, उन्हीं भगवान ने प्रसन्न होकर मुझे हृदय से लगा लिया है।

अहो भाग्य मम......................आन निहोरें।

शब्दार्थ अमित=असीमित, बहुत अधिक। पुंज=समूह। जुगल=दो (शु० युगल)। कंज=कमल। सद्य=शीघ्र ही। दारा=पत्नी। भवन=घर। ताग=धागे। आन=और कोई। निहारें=कृतज्ञतावश।

सरलार्थ हे कृपा और सुख के समूह श्री रामचन्द्र जी मेरा अत्यन्त असीम सौभाग्य है, जो मैंने ब्रह्मा और शिवजी के द्वारा सेवा किये हुये आपके कमलों के समान दोनों चरणों को देखा।"

यह सुनकर श्री रामचन्द्र जी ने कहा "हे सखा! सुनो, मैं तुमसे अपना स्वभाव कहता हूँ, जिसे कागभुशुण्डि, शिवजी और पार्वती भी जानते हैं। कोई मनुष्य सम्पूर्ण जड़ चेतन जगत् का द्रोही हो, यदि वह भी भयभीत होकर मेरी शरण तक आ जाय और मद मोह तथा नाना प्रकार के छल-कपट त्याग दे तो मैं उसे बहुत शीघ्र साधु के समान कर देता हूँ। माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री, शरीर, धन, घर मित्र और परिवार, इन सब के ममत्व रूपी तागों को बटोर कर और उन सबकी एक डोरी बटकर उसके द्वारा जो अपने मन को मेरे चरणों में बाँध देता है अर्थात् सारे सांसारिक सम्बन्धों का केन्द्र मुझे बना लेता है जो सब को एक दृष्टि से देखता है, जिसे कुछ इच्छा नहीं है और जिसके मन में हर्ष, शोक और भय नहीं है। ऐसा सज्जन मेरे हृदय में कैसे बसता है, जैसे लोभी के हृदय में धन बसा करता है। तुम्हारे जैसे सन्त ही मुझे प्रिय हैं। मैं और किसी के निहोरे से (कृतज्ञतावश) शरीर धारण नहीं करता।

सगुन उपासक..................................दीन्ह रघुनाथ।

शब्दार्थ निरत=लगे हुये। नेम=नियम। अतिसय=बहुत, अधिक। बरूथा=समूह। अंबुज=कमल। अंतरजामी=हृदय की बात जानने वाले (शु० अंतर्यामी)। अमोघ=अचूक। सारा=लगा

दिया। सुमन = फूल। अनल = आग।

सरलार्थ जो सगुण भगवान के उपासक हैं, दूसरे के हित में लगे रहते हैं। नीति और नियमों में दृढ़ हैं और जो ब्राह्मणों के चरणों से प्रेम करते हैं वे मनुष्य मेरे प्राणों के समान हैं।

हे लंकापति ! सुनो तुम्हारे अन्दर उपर्युक्त सभी गुण हैं। इसलिए तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो। श्री राम जी के वचनों को सुनकर सब वानरों के समूह कहने लगे "कृपा के समूह श्री राम जी की जय हो।" विभीषण जी प्रभु की वाणी सुनते है और उसे कानों के के लिये अमृत जानकर अघाते नही हैं। वे बार-बार श्री राम जी के चरण कमलों को पकड़ते हैं। बहुत अधिक प्रेम है जो उनके हृदय में समाता नहीं है। विभीषण जी ने कहा- "हे देव ! हे चराचर जगत् के स्वामी ! हे शरणागत के रक्षक ! हे सबके हृदय के भीतर की जानने वाले ! सुनिये, मेरे हृदय में पहले कुछ वासना थी वह आपके चरणों की प्रीति रूपी नदी मे बह गयी। अब तो हे कृपालु। शिवजी के मन को सदैव प्रिय लगने वाली अपनी पवित्र भक्ति मुझे दीजिये।" 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कह कर रणधीर प्रभु श्री राम जी ने तुरंत ही समुद्र का जल माँगा और कहा हे सखा ! यद्यपि तुम्हारी इच्छा नहीं है, पर संसार में मेरा दर्शन अचूक है वह निष्फल नहीं जाता।" ऐसा कहकर श्री राम जी ने उनको राजतिलक कर दिया। आकाश से पुष्पो की अपार वृष्टि हुई।

श्री रामचन्द्र जी ने रावण के क्रोध रूपी अग्नि में, जो विभीषण की श्वास रूपी पवन से तेज हो रही थी, जलते हुए विभीषण को बचा लिया और उसे अखण्ड राज्य दे दिया।

शिवजी ने जो सम्पत्ति रावण को दसों सिरों की बलि देने पर दी थी, वही सम्पत्ति श्री रघुनाथ जी ने विभीषण को बहुत सकुचते हुए दी।

अंगद रावण संवाद

बंदि चरन.................. ....जाइ सुखाई।

शब्दार्थ पैठत = प्रवेश करते ही। रारप = लड़ाई झगड़ा। तरुनाई = यौवनावस्था। भवाँई = घुमाकर। निकर = समूह। भट = योद्धा। मर्म = भेद, असली बात।

प्रसंग भगवान राम की आज्ञा पाकर बालि पुत्र अंगद जी लंका आये। वहाँ रावण की सभा में पहुँच कर रावण से उसका वाद-विवाद हुआ।

सरलार्थ भगवान राम के चरणों की वन्दना करके और भगवान की प्रभुता (बड़प्पन) हृदय में धर कर अंगद जी सबको सिर नवा-कर चल दिये। प्रभु के प्रताप (बल) को हृदय में धारण किए हुए रणबाँकुरे वीर बालिपुत्र स्वाभाविक रूप से ही निडर हैं। लंका में प्रवेश करते ही रावण के पुत्र से भेंट हो गई, जो कि वहाँ खेल रहा था। बातों ही बातों में दोनों में झगड़ा बढ़ गया क्योंकि दोनों ही अतुलनीय बलवान थे और फिर दोनों की युवावस्था भी थी। उसने (रावण के पुत्र ने) अंगद पर लात उठाई। अंगद ने उसका वही पैर पकड़कर, उसे घुमाकर जमीन पर दे पटका। राक्षस के समूह भारी योद्धा देखकर जहाँ तहाँ भाग गये, वे डर के मारे पुकार भी न मचा सके। वे एक दूसरे को सच्ची बात नहीं बतलाते और रावण के पुत्र का वध (मृत्यु) समझकर सब चुपचाप रह गये। रावण पुत्र की मृत्यु का समाचार पाकर, और राक्षसों को भय के मारे भागता देखकर, नगर में कोलाहल मच गया कि जिसने लंका जलाई थी (हनुमान जी) वही वानर फिर आगया अर्थात् भयभीत राक्षसों ने अंगद को हनुमान जी जाना सब लोग अत्यन्त भयभीत होकर विचार करने लगे कि विधाता अब न जाने क्या करेगा? वे बिना पूछे ही अंगद को रावण के दरबार का मार्ग दिखा देते हैं जिसे ही वे देख लेते हैं वह डर के मारे सूख जाता है।

गयउ सभा.................................क्रोध बिसेषी।

शब्दार्थ सुमिर = स्मरण कर। ठवनि = भाँति, शान। चितव = देखता है। पठावा = भेजा। कीसा = बंदर। कपिकुंजरहि = वानरों में

हाथी के समान। गिरि=पहाड़। विटप=वृक्ष। सृंग=पर्वतों की चोटी। सुरा=झिझकना।

सरलार्थ श्री रामचन्द्र जी के चरण कमलों का स्मरण करके अंगद रावण की सभा के द्वार पर गये। और धीरवान, वीर तथा बल के समूह अंगद जी वहाँ सिंह की भाँति शान से इधर-उधर देखने लगे।

तुरंत ही उन्होंने एक राक्षस को अपने आने का समाचार देने भेजा। सुनते ही रावण ने हँसकर कहा "बुला लाओ देखें कहाँ का बंदर है?" आज्ञा पाकर बहुत से दूत दौड़े और बानरों में हाथी के समान अंगद को बुला लाये। अंगद ने रावण को ऐसे बैठे हुये देखा जैसे सजीव (प्राणोंवाला) काजल का पहाड़ हो। उसकी भुजायें वृक्षों के और सिर पर्वतों की चोटी के समान था। शरीर के बाल बहुत सी लताओं के समान थे। मुंह, नाक, नेत्र और कान पर्वत की कंदराओं (गुफाओं) और खोहो के समान थे। अत्यन्त बलवान बाँके वीर बालिपुत्र अंगद सभा में गये, वे मन में जरा भी नहीं झिझके। अंगद को देखते ही सभी सभासद उठ खड़े हुए। यह यह देखकर रावण के हृदय में बहुत क्रोध हुआ।

जथा मत्त ....भय त्यागें।

शब्दार्थ जूथ=समूह। (शु० यूथ) मत्त=मतवाले। पचानन =सिंह। कवन=कौन। जनक=पिता। मिताई=मित्रता। तव= तुम्हारे। किंवा=अथवा। जगदंबा=जगत् माता। दसन=दाँत। परिजन=कुटुम्बी।

सरलार्थ जिस प्रकार मतवाले हाथियों के समूह में सिंह निडर होकर चला जाता है, वैसे ही श्री राम जी के प्रताप का हृदय मे ध्यानकर निर्भय हो सभा में बैठ गये।

रावण ने कहा—"अरे बन्दर तू कौन है?" अंगद ने उत्तर दिया "हे दशग्रीव! मैं श्री रघुवीर का दूत हूँ। मेरे पिता से तुम्हारी मित्रता थी। इसलिए हे भाई! मै तुम्हारी भलाई के लिए ही आया

हूँ। तुम्हारा कुल उत्तम है, पुलस्त्य ऋषि के तुम पौत्र हो। शिवजी और ब्रह्मा जी की तुमने बहुत प्रकार से पूजा की है। उनसे वर पाये हैं और सब कार्य सिद्ध किए हैं। लोकपालों और सब राजाओं को तुमने जीत लिया है। राजमद से अथवा मोह के वश में होकर तुम जगत् माता सीता को चुरा लाये हो। अब अपने भले की बात सुनो ऐसा करने से भगवान राम तुम्हारे सब अपराध क्षमा कर देंगे। दाँतों में तिनका दबाओ, गले में कुल्हाड़ी डालो और कुटुम्बियों सहित अपनी स्त्रियों को साथ लेकर, आदर पूर्वक जानकी जी को आगे करके इस प्रकार सब भय छोड़कर चलो।

प्रनतपाल रघुबंसमनि..................... नहिं जाकें।

शब्दार्थ आरत=दुखित (शु० आर्त)। गिरा=वाणी, पुकार। कपिपोत=बंदर के बच्चे। सुरारी=देवताओं का शत्रु (सुर+अरि) जनक=पिता। अनल=आग।

सरलार्थ भगवान राम के पास पहुँच कर कहना- 'हे शरणागत के पालन करने वाले रघुवंश शिरोमणि श्री रामजी! मेरी रक्षा कीजिये।' तुम्हारी इस दुखभरी पुकार को सुनते ही भगवान तुम्हें निडर कर देंगे।"

यह सुनकर रावण बोला "अरे बन्दर के बच्चे! सभांल कर बोल। रे मूर्ख! देवताओं के शत्रु मुझे तूने जाना नहीं? अरे भाई! अपना और अपने बाप का नाम तो बता, किस नाते से मित्रता मानता है?" अंगद ने उत्तर दिया "मेरा नाम अंगद है और बालि का पुत्र हूँ। उससे क्या कभी तुम्हारी भेंट हुई थी?" अंगद का वचन सुनते ही रावण कुछ सकुचा गया और बोला- "हाँ मुझे याद आ गया बालि नाम का एक बन्दर था। अरे अंगद! तू उसी बालि का पुत्र है? अरे कुलनाशक! तू तो अपने कुल रूपी बाँस के लिए अग्नि रूप ही पैदा हुआ है। गर्भ में ही क्यों नष्ट नहीं हो गया? तू व्यर्थ ही पैदा हुआ जो अपने ही मुँह से तपस्वियों का दूत कहलाया अब बालि की कुशलता तो बता, वह आजकल कहाँ है? अंगद ने

तब हँसकर उत्तर दिया —"दस (कुछ) दिन बीतने पर स्वयं ही बालि के पास जाकर, अपने मित्र को हृदय से लगाकर उसीसे कुशल पूछ लेना। श्री रामजी से विरोध करने पर जैसी कुशलता होती है; वह सब वह तुम्हें सुनावेंगे। हे मूर्ख ! सुन, भेद उसी के मन में पड़ सकता है, जिसके हृदय में श्री रघुवीर का निवास न हो।

हम कुल ....हमहुँ बड़ भागी।

शब्दार्थ बधिर=बहरा। बिहर=फट नहीं जाता। पर=दूसरे की। त्रिय=स्त्री। बड़भागी=भाग्यशाली, बड़े भाग्य वाले।

सरलार्थ सच है, मैं तो कुल का नाश करने वाला हूँ और हे रावण ! तुम कुल के रक्षक हो जैसी बात तुम कह रहे हो ऐसी बात तो अंधे और बहरे भी नहीं कहते, तिस पर तुम्हारे तो बीस नेत्र और बीस कान हैं।

शिव, ब्रह्मा आदि देवताओं और मुनियों के समुदाय जिनके चरणों की सेवा करना चाहते हैं, उन्हीं का दूत बनकर मैंने कुल को डुबो दिया ? अरे, ऐसी बुद्धि होने पर भी तुम्हारा हृदय फट नहीं जाता।" अंगदजी की ऐसी कठोर वाणी सुनकर रावण आँखें तरेर कर (तिरछी करके) बोला "अरे दुष्ट। मैं तेरे ये सब कठोर वचन इसलिए सह रहा हूँ कि मैं नीति और धर्म को जानता हूँ।" यह सुन अंगदजी ने कहा "तुम्हारी धर्मशीलता मैंने भी सुनी है कि तुमने परायी स्त्री की चोरी की है। और दूत की रक्षा की बात तो अपनी आँखों से देखली। ऐसे धर्म के व्रत को धारण करने वाले तुम डूबकर मर नहीं जाते। नाक, कान से रहित बहिन को देखकर तुमने धर्म विचार कर ही तो क्षमा कर दिया था। तुम्हारी धर्मशीलता जग-जाहिर है। मैं भी बड़ा भाग्यवान् हूं, जो मैंने तुम्हारे दर्शन किये।

जनि जल्पसि............................हम सोई।

शब्दार्थ विपुल=बहुत। ससि=चन्द्रमा। ग्रसन=खाने के लिये। सर=तालाब। निकर=समूह। मराल=हंस। इव=समान। कटक=सेना। मोसन=मुझसे। बद=कह। कूल द्रुम=नदी के

किनारे के वृक्ष, जो जल्दी ही गिर पड़ते हैं। अनुज=छोटा भाई। भीरु=डरपोक। समरारूढ़=लड़ाई पर चढ़ना या लड़ना (समर+आरूढ़)। पुर=नगर। दाह=जलाना। अल्प=छोटा सा।

सरलार्थ रावण ने कहा "अरे जड़ जन्तु वानर! व्यर्थ बक-बक न कर; अरे मूर्ख! मेरी भुजायें तो देख। ये सब लोकपालों के विशाल बलरूपी चन्द्रमा को ग्रसने के लिए राहु के समान हैं।

फिर तूने सुना ही होगा कि आकाश रूपी तालाब में मेरी भुजाओं रूपी कमलों पर बसकर शिवजी सहित कैलाश हंस के समान शोभा को प्राप्त हुआ था।

अरे अंगद! सुन; तेरी सेना में बता, ऐसा कौन योद्धा है जो मुझसे युद्ध कर सके? तेरा मालिक तो स्त्री के वियोग में बल हीन हो रहा है और उसका छोटा भाई उसी के (श्री रामजी के) दुख से, दुखी और उदास है। तुम और सुग्रीव दोनों नदी के किनारे के वृक्षों के समान शीघ्र ही हार जाने वाले हो। और मेरा छोटा भाई विभीषण रहा सो वह भी बड़ा डरपोक है मन्त्री जामवान् बहुत बूढ़ा है। वह अब लड़ाई क्या लड़ सकता है? नल-नील तो केवल शिल्प कर्म ही (पत्थर की मूर्ति आदि बनाना) जानते हैं, वे बेचारे लड़ना क्या जाने? हाँ एक वानर अवश्य महा बलशाली है। जो पहले आया था और जिसने कि लंका जलाई थी।" यह वचन सुनते ही अंगद ने कहा 'हे राक्षसराज! सच्ची बात कहो, क्या उस वानर ने सच-मुच तुम्हारा नगर जला दिया? रावण जैसे जगद्विजयी योद्धा के नगर को एक छोटा सा वानर जलादे, इन वचनों को सुनकर कौन विश्वास कर लेगा? हे रावण जिस हनुमान की, एक बहुत बड़ा योद्धा बताकर तुमने प्रशंसा की है वह तो सुग्रीव का एक छोटा सा दौड़कर चलने वाला हरकारा (दूत) है। वह चलता बहुत है, वीर नहीं है। उसको तो हमने केवल खबर लेने भेजा था।

सत्य नगर........ ....उपाय अनेक।

शब्दार्थ - आयसु=आज्ञा। लुकाइ=छिप रहना। कोह=क्रोध।

कटक=सेना। सोह=शोभा पाये। मृगपति=सिंह।

सरलार्थ क्या सचमुच ही उस वानर ने भगवान राम की आज्ञा पाये बिना ही तुम्हारा नगर जला डाला? मालूम होता है इसी डर से वह लौटकर सुग्रीव के पास नहीं गया और कहीं छिपा रह गया।

हे रावण! तुम सब बात सत्य ही कहते हो, मुझे सुनकर कुछ भी क्रोध नहीं है। सचमुच हमारी सेना में कोई भी ऐसा नहीं है जो तुमसे लड़ने में शोभा पाए।

प्रेम और वैर बराबरी वालों से ही करना चाहिए, नीति ऐसी ही है। सिंह यदि मेढकों को मारे तो क्या उसे कोई भला कहेगा?

यद्यपि तुम्हें मारने में श्री राम जी का छोटापन है और बड़ा दोष भी है तथापि हे रावण! सुनो, क्षत्रिय जाति का क्रोध बड़ा कठिन होता है।',

वक्रोक्ति रूपी धनुष से वचन रूपी बाण मार कर अंगद ने शत्रु का हृदय जला दिया। वीर रावण उन बाणों को मानो प्रत्युत्तर रूपी सड़सियों से निकाल रहा है।

तब रावण हँसकर बोला "बंदर में यह एक बड़ा गुण है कि जो उसे पालता है, उसका वह अनेकों उपायों से भला करने का प्रयत्न करता है।

धन्य कीस .... जाइ छोड़ावा।

शब्दार्थ परिहरि=छोड़कर। पति=स्वामी। निपुनाई=चतुरता। परम=बहुत। सुजाना=चतुर। पवनसुत=हनुमान। अपकारी=अहित, हानि। प्रकृत=स्वभाव। ढिठाई=धृष्टता। माखा=चिढ़। बिमल=पवित्र। भाजन=पात्र, कारण। हयसाला=घुड़साल।

सरलार्थ बंदर को धन्य है जो अपने मालिक के लिए नाच-कूद कर, लोगों को रिझाकर (प्रसन्न कर) मालिक की भलाई करता है। यह उसके धर्म की चतुराई है।

हे अंगद! तुम्हारी जाति स्वामिभक्त है। फिर भला तू अपने स्वामी के गुणों का इस प्रकार वर्णन क्यों न करेगा? अर्थात् अवश्य

करेगा। मैं गुण ग्राहक (गुणों का आदर करने वाला) और बहुत समझदार हूं, इसी से तेरी जली जली-कटी बक-बक पर ध्यान नहीं देता।" यह सुनकर अङ्गद बोला- "तुम्हारी सच्ची गुण ग्राहकता तो मुझे हनुमान् ने सुनाई थी। उसने अशोक वन को नष्ट-भ्रष्ट करके, तुम्हारे पुत्र को मार कर नगर को जला दिया था। तो भी तुमने अपनी गुण ग्राहकता के कारण यही समझा कि उसने तुम्हारी कुछ भी हानि नहीं की। तुम्हारा वही सुन्दर स्वभाव विचार कर, हे दश ग्रीव ! मैंने कुछ धृष्टता की है। हनुमान् ने जो कुछ कहा था उसे मैंने आकर प्रत्यक्ष देख लिया कि तुम्हे न लज्जा है न क्रोध है और न चिढ़ही है।" रावण बोला "अरे बानर ! जब तेरी ऐसी ही बुद्धि है तभी तो तू अपने बाप को खा गया।" ऐसा बचन कहकर रावण हँसा। यह सुनकर अङ्गद जी बोले "पिता को खा कर फिर तुमको भी खा डालता परन्तु अभी तुरन्त कुछ और ही बात मेरी समझ मे आ गई। अरे नीच अभिमानी ! बालि के पवित्र यश का पात्र (कारण) जानकर तुम्हें मैं नहीं मारता। रावण ! जरा यह तो बता कि संसार मे रावण कितने हैं ? मैंने जितने रावण अपने कानो से सुन रक्खे है, उन्हें सुन 'एक रावण तो बलि को जीतने पाताल लोक में गया था तब उसे घुडसाल मे बाँध रक्खा था। बलि को दया आ गई तो उन्होंने उसे छुड़ा दिया। फिर एक रावण को सहस्र बाहु ने देखा, और उसने दौड़कर उसको एक विशेष प्रकार का (विचित्र) जन्तु जानकर पकड़ लिया। तमाशे के लिये वह उसे घर ले आया। तब पुलस्त्य मुनि ने जाकर उसे छुड़ाया।

एक कहत.......... ......अलीक प्रलापी।

शब्दार्थ बदहि=कहो। मारव=खीझ। हरगिरि=शिवजी का पर्वत, कैलाश। सुराई=शूरता, बीरता। सुमन=फूल। सरोज=कमल। अमित=बहुत। बिक्रम=पराक्रम। साला=दुख दायी। भिरउँ=लडाहूँ। बरिआई=जबरदस्ती। कराल=भयङ्कर, कठिन। दसन=दाँत। भूलक=भूला। इव=समान, तरह। तरनी=नाव।

अलकि प्रलापी=झूठी बकवाद करने वाला।

सरलार्थ एक रावण की बात कहने में तो मुझे बड़ा संकोच हो रहा है वह बहुत दिनों तक बालि की काँख में रहा था।' इनमें से तुम कौन से रावण हो? खीझना छोड़कर सच-सच बताओ।

रावण ने उत्तर दिया अरे मूर्ख सुन। मैं वही बलवान् रावण हूँ जिसकी भुजाओं की लीला (करामात) कैलाश पर्वत जानता है। जिसकी वीरता महादेव जी जानते हैं, जिन्हें अपने सिर रूपी पुष्प चढ़ा-चढ़ा कर मैंने पूजा था। सिर रूपी कमलों को अपने हाथों से उतार-उतार कर मैंने अगणित बार त्रिपुरारि शिवजी की पूजा की है। अरे मूर्ख! मेरी भुजाओं का पराक्रम दिक्पाल (दिशाओं के स्वामी) जानते हैं, जिनके हृदय में आज भी दुःख है। दिग्गज (दिशाओं के हाथी) मेरी छाती की कठोरता को जानते हैं, जिनके भयानक दाँत, जब-जब जाकर जबरदस्ती मैं उनसे लड़ा, मेरी छाती में कभी नहीं फूटे (अपना चिन्ह भी नहीं बना सके), बल्कि मेरी छाती से लगते ही मूली की भांति टूट गये। जिसके चलते समय पृथ्वी इस प्रकार हिलती है जैसे मतवाले हाथी के चढ़ते समय छोटी नाव डगमगा जाती है। मैं वही जगत प्रसिद्ध प्रतापी रावण हूं। अरे झूठी बकवाद करने वाले! क्या तूने मुझको कानों से कभी नहीं सुना?

तेहि रावण........ .. .. मगति अकुंठा।

शब्दार्थ बखान=बड़ाई। बर्बर=दुष्ट। खर्व=असभ्य। खल=तुच्छ, दुष्ट। अधमि=नीच। गहन=घना, दुर्भेद्य। खर=तीव्र। बंगा=टेढ़ा। धन्वी=धनुर्धारी। सुरधेनु=काम धेनु। पीयूषा=अमृत। बैनतेय=गरुण जी। अहि=सर्प। खग=पक्षी। उपल=पत्थर।

सरलार्थ उस महान् प्रतापी और जगत् प्रसिद्ध रावण को (मुझे) तू छोटा कहता है और मनुष्य की बड़ाई करता है? अरे दुष्ट, असभ्य, तुच्छ बंदर! अब मैंने तेरा ज्ञान जान लिया।"

रावण के ये वचन सुनकर अंगद जी क्रोध सहित बोले "अरे नीच अभिमानी! संभलकर (सोच-समझकर) बोल! जिनका फरसा सहस्रबाहु की भुजाओं रूपी अपार वन को जलाने के लिये अग्नि के समान था। जिनके फरसा रूपी समुद्र की तीव्र धारा में अनगिनत राजा अनेकों बार डूब गये, उन परशुरामजी का गर्व जिन्हे देखते ही भाग गया, अरे अभागे दश शीश! वे मनुष्य क्योंकर है? क्यों रे मूर्ख उद्दण्ड! श्री रामचन्द्र जी मनुष्य हैं। कामदेव भी क्या धनुर्धारी है? और गङ्गाजी क्या नदी है? कामधेनु क्या पशु है? और कल्प वृक्ष क्या पेड़ है? अन्न भी क्या दान है? और अमृत क्या रस है? गरुण जी क्या पक्षी हैं? शेषजी क्या सर्प हैं? अरे रावण! चिन्तामणि भी क्या पत्थर है? अरे ओ मूर्ख! सुन, वकुण्ठ भी क्या लोक है? और श्री रघुनाथ जी की अखण्ड भक्ति का क्या और लाभों जैसा ही लाभ है?

सेना सहित .... धृत परा।

शब्दार्थ कस=कैसे। धरनि=पृथ्वी। सर=बाण। कंदुक=गेंद। चौगाना=गेंद-बल्ले का खेल। कराल=डरावने। सायक=बाण।

सरलार्थ सेना सहित तेरे अभिमान को मथकर (समाप्त कर), अशोकवन को उजाड़कर, नगर को जलाकर और तेरे पुत्र को मारकर जो लौट गये, तू उनका कुछ भी न बिगाड़ सका; क्यों रे दुष्ट! वे हनुमान जी क्या वानर हैं?

अरे रावण! चतुराई (छल-कपट) को छोड़कर सुन; कृपा के समुद्र श्री रघुनाथ जी का भजन क्यों नहीं करता? अरे दुष्ट! यदि तू श्री रामजी का वैरी हुआ तो तुझे ब्रह्मा और रुद्र भी नहीं बचा सकेंगे। हे मूर्ख! व्यर्थ गाल न मार अर्थात् डींग न मार। श्री राम जी से वैर करने पर ऐसा हाल होगा कि तेरे सिर-समूह श्री रामजी के बाण लगते ही वानरों के आगे पृथ्वी पर गिर पड़ेंगे। फिर रीछ-वानर तेरे उन गेंद के समान अनेकों सिरों से चौगाना (गेंद-बल्ला)

खेलेंगे। जब श्री रामजी युद्ध में क्रोध करेंगे और इनके अत्यन्त तीक्ष्ण बहुत से बाण छूटेंगे तब क्या तेरा मुँह ऐसा चलेगा ? ऐसा विचार कर उदार (कृपालु) श्री रामजी को याद कर।" अंगद की इन बातों को सुनकर रावण बहुत अधिक जल उठा, मानों जलती हुई प्रचण्ड अग्नि में घी पड़ गया हो।

कुम्भकरन अस .... प्रभुहि सराहू।

शब्दार्थ मम=मेरा। सक्रारि= मेघनाद (सक्र+अरि)। क्रारि =सत्रु। साखामृग =वानर। बारीसा=समुद्र (शु०=वारीश)। पयोध=समुद्र। नीर=पानी। बसठि=समाचार ले जाने वाला दूत। पठवत=भेजना। निरखु=देख।

सरलार्थ रावण बोला "अरे मूर्ख कुम्भकर्ण जैसा मेरा भाई है और इन्द्र का शत्रु सुप्रसिद्ध मेघनाद मेरा पुत्र है ! और मेरा पराक्रम तो तूने सुना ही नहीं कि मैंने सम्पूर्ण जड़ चेतन जगत् को जीत लिया है।

रे मूढ़ ! वानरों को इकट्ठा कर उनकी सहायता से राम ने समुद्र बाँध लिया है; बस यही उसकी प्रभुता है ! समुद्र को तो अनेकों पक्षी भी लाँघ जाते हैं; पर इसी से वे सभी शूरवीर नहीं हो जाते। अरे मूर्ख बंदर ! सुन, मेरी एक-एक भुजा रूपी समुद्र बलरूपी जल से पूर्ण है, जिसमे बहुत से शूरवीर देवता और मनुष्य डूब चुके हैं। बता, कौन ऐसा शूरवीर है जो मेरे इन अथाह और अपार बीस समुद्रों का पार पा सकेगा ? अरे दुष्ट मैंने दिगपालों (दिशाओं के स्वामी) से पानी भरवाया है। और तू एक राजा का सुयश मुझे सुनाता है। जिसको गुण गाथा तू बार-बार कह रहा है, यदि तेरा मालिक संग्राम में लड़ने वाला योद्धा है, तो फिर वह दूत किस लिये भेजता है ? शत्रु से प्रीति (सन्धि) करते उसे लाज नहीं आती ? पहले कैलाश का मंथन करने वाली मेरी भुजाओं को देख। फिर अरे मूर्ख वानर अपने मालिक की सराहना (प्रशंसा) करना।

सूर कवन ....देखु मति मंद।

शब्दार्थ—सिरस=समान। स्वकर=अपने हाथ से। साखि=साक्षी। असाँची=झूठी। त्रास=डर। जरठ=बूढ़ा। आन=दूसरे। सैल=पर्वत (शु०-शैल) वृन्द=समूह। खर=गदेह।

सरलार्थ रावण के समान शूरवीर कौन है? जिसने अपने ही हाथों से सिर काट-काटकर अत्यन्त हर्ष के साथ बहुत बार उन्हें अग्नि में होम दिया। स्वयं गौरी पति शिवजी इस बात के साक्षी हैं।

मस्तकों के जलते समय जब मैंने अपने ललाटों पर लिखे हुए विधाता के अक्षर देखे तब मनुष्य के हाथ से अपनी मृत्यु पढ़कर, विधाता की वाणी (लेख) को असत्य जानकर मैं हँसा। उस बात को समझकर (स्मरण करके) भी मेरे मनमे डर नहीं हैं। क्योंकि मैं समझता हूँ कि बूढ़े ब्रह्मा ने बुद्धिभ्रम से ऐसा लिख दिया है अरे मूर्ख! तू लज्जा और मर्यादा छोड़कर मेरे आगे बार-बार दूसरे वीर का बल कहता है।" यह सुन अंगद ने कहा "अरे रावण! तेरे समान लज्जावान् संसार मे कोई नही है। लज्जाशीलता तो तेरा सहज स्वभाव ही है। तू अपने मुँह से अपने गुण कभी नहीं कहता। सिर काटने और कैलास उठाने की कथा चित्त मे चढ़ी हुई थी, इससे तूने उसे बीसों बार कहा। भुजाओं के उस बल को तूने हृदय मे ही छिपा रखा है, जिससे तूने सहस्रबाहु, बलि और बालि को जीता था। अरे मन्दबुद्धि! सुन, अब बस कर। सिर काटने से भी क्या कोई शूरवीर हो जाता है? इन्द्रजाल रचने वाले को वीर नही कहा जाता, यद्यपि वह अपने ही हाथों अपना सारा शरीर काट डालता है।

अरे मन्दबुद्धि! समझकर देख। पतंगे मोहवश आग में जल मरते है। गदहों के झुण्ड बोझ लादकर चलते हैं; पर इस कारण वे शूरवीर नहीं कहलाते।

राम-विलाप

यहाँ राम : .... वीर रस

शब्दार्थ मृदुल=कोमल। विपिन=वन। हिम=बर्फ, जाड़ा। आतप=गर्मी। बाता=हवा। अनुराग=प्रेम। वित=धन। करिबर =श्रेष्ठ हाथी। कर=हाथ, सूड़। नारि=स्त्री। छति=हीन (शु०-क्षति) अपलोक=अपयश। पानी=हाथ (शु०-पाणि)। विमोचन= नष्ट करने वाला। स्रवत=बहता है। सलिल=पानी=आँसू। रजिव-दल=कमल की पंखुड़ी। लोचल=नेत्र। निकर=समूह।

प्रसंग—मेघनाद-लक्ष्मण युद्ध मे लक्ष्मण जी वीरघातिनी शक्ति लग जाने से घायल हो गये। घायल होने पर हनुमान जी को औषधि (संजीवन बूटी) लेने भेजा! अब प्रातः काल होने वाला है पर हनुमान जी अभी तक नहीं आये तो भगवान् राम लक्ष्मण जी के विछोह से साधारण मनुष्यों की भाँति विलाप कर रहे हैं।

सरलार्थ वहाँ (समर भूमि में) लक्ष्मण जी को देखकर श्री राम जी साधारण मनुष्यों के समान वचन बोले "आधी रात बीत चुकी पर हनुमान अभी तक नहीं आये।" यह कहकर श्री राम जी ने छोटे भाई लक्ष्मण जी को उठाकर हृदय से लगा लिया। फिर बोले "हे भाई तुम मुझे कभी भी दुखी नहीं देख सकते थे। तुम्हारा स्वभाव सदा से ही कोमल था। मेरे हित के लिए तुमने माता-पिता को भी छोड़ दिया और वन में जाड़ा, गरमी हवा सब सहन किया। हे भाई! वह प्रेम अब कहाँ है? मेरे दुखी शब्दो को सुनकर उठते क्यों नहीं? यदि मैं जानता कि वन में भाई का विछोह होगा तो मैं पिता का वचन जिसका कि मानना मेरे लिये परम कर्तव्य था, उसे भी न मानता। पुत्र, धन, स्त्री, घर और परिवार ये संसार में बार-बार मिल जाते हैं और चले जाते हैं; परन्तु जगत् में सहोदर भाई बार-बार नहीं मिलता। हृदय मे ऐसा विचार कर हे भाई! जागो जिस प्रकार पंख बिना पक्षी, मणि बिना सर्प और सूँड़ बिना श्रेष्ठ हाथी अत्यन्त दीन हो जाते हैं, हे भाई! यदि कहीं जड़ दैव मुझे जीवित रखे तो तुम्हारे बिना मेरा जीवन भी ऐसा ही हो होगा। स्त्री के लिये प्यारे भाई को खो कर, मैं कौन-सा मुँह लेकर अवध जाऊँगा? मैं संसार

में बदनामी भले ही सह लेता कि राम में कुछ भी वीरता नहीं है जो स्त्री को खो बैठे। इस हानि की तुलना में स्त्री की हानि से कोई विशेष क्षति नहीं थी। अब तो हे पुत्र मेरा निष्ठुर और कठोर हृदय यह अपयश और शोक दोनों ही सहन करेगा। हे तात! तुम अपनी माता के एक ही पुत्र और उसके प्राण धार हो सब प्रकार से सुख देने वाला और परम हितकारी जानकर उन्होंने हाथ पकड़ कर मुझे सोंपा था। मैं अब जाकर उन्हे क्या उत्तर दूँगा? हे भाई! तुम उठकर मुझे सिखाते (समझाते क्यों नहीं)?" सोच से छुड़ाने वाले श्री राम जी बहुत प्रकार से सोच कर रहे हैं। उनके कमल की पंखुड़ी के समान नेत्रों से दुख (विषाद) के आँसुओं का जल बह रहा है। शिवजी कहते हैं "हे उमा! श्री रघुनाथ जी एक (अद्वितीय) और अखण्ड (वियोग रहित) हैं। भक्तों पर पर कृपा करने वाले भगवान ने लीला करके मनुष्य की दशा दिखलाई है।

प्रभु के विलाप (रुदन) को कानों से सुनकर वानरों के समूह व्याकुल हो गये। इतने मे ही हनुमान् जी आ गये। जैसे करुण रस के प्रसंग में वीर रस का प्रसंग आ गया हो।

रामराज्य

दैहिक दैविक .... कपट सयानी

शब्दार्थ तापा = कष्ट। निरत = लगे रहना। अघ = पाप। परम गति = मोक्ष। अल्पमृत्यु = छोटी अवस्था में मृत्यु। पीरा = कष्ट। विरुज = रोग रहित। निर्दंभ = घमण्ड रहित। धर्मरत = धर्म में लगे हुये। पुनी = पुण्यात्मा।

प्रसंग श्री रामचन्द्रजी १४ वर्ष की अवधि के पश्चात् अयोध्या में पुनः लौट आये और राज्य पर प्रतिष्ठित हो गये हैं। इसी समय उनके राज्य की सुख-शान्ति, और धर्म नीति का वर्णन करते हुए कहा है

सरलार्थ 'राम-राज्य' में दैहिक (शारीरिक), दैविक (आकस्मिक), और भौतिक (साँसारिक) कष्ट किसी को नहीं है। सब मनुष्य परस्पर प्रेम करते हैं और वेदों में बताई हुई नीति-नियमों (मर्यादा) में लगकर अपने अपने धर्म का पालन करते है। धर्म अपने चारों चरणों (सत्य, शौच, दया और दान) से जगत् मे परिपूर्ण हो रहा है; स्वप्न में भी कहीं पाप नहीं है। पुरुष और स्त्री सभी रामभक्ति में लगे हुये हैं और सभी को मोक्ष मिलती है। छोटी अवस्था में मृत्यु नहीं होती, न किसी को किसी प्रकार का शारीरिक कष्ट ही होता है। सभी का शरीर सुन्दर और रोग रहित है। न कोई निर्धन है न दुखी है और न दीन ही है। सभी घमण्ड रहित हैं, धर्म परायण हैं और पुण्यात्मा हैं। पुरुष और स्त्री सभी चतुर और गुणवान है। सभी गुणों का आदर करने वाले और पण्डित हैं तथा सभी ज्ञानी है। सभी कृतज्ञ (दूसरे के किये हुए उपकार को मानने वाले) हैं, कपट-चतुराई (धूर्तता) किसी में नहीं है।

राम राज.............................पति हितकारी।

शब्दार्थ नभगेस=पक्षिराज गरुण। मेखला=करधनी। घनेरी=बहुत अधिक। रति=प्रेम। फनीस=शेषनाग। सारदा=सरस्वती।

सरलार्थ- काकभुशुण्डिजी कहते हैं "हे पक्षिराज गरुणजी! सुनिये श्री राम के राज्य में जड़, चेतन सारे जगत् मे काल, कर्म, स्वभाव और गुणों से उत्पन्न हुए दुःख किसी को भी नही होते अर्थात् इनके बन्धन में कोई नहीं है।

अयोध्या में श्री रघुनाथ जी सात समुद्रों की मेखला (करधनी) वाली पृथ्वी के एक मात्र राजा है। जिनके एक-एक रोम में अनेकों ब्रह्मांड है उनके लिये सात द्वीपों की यह प्रभुता कुछ अधिक नहीं है। बल्कि प्रभु की उस महिमा को समझ लेने पर तो यह कहने में कि वे सात समुद्रों से घिरी हुई सप्तद्वीप मयी पृथ्वी के एकच्छत्र सम्राट हैं,

उनकी बड़ी हीनता होती है। परन्तु हे गरुण जी! जिन्होंने वह महिमा जान भी ली है वे फिर इस लीला में बड़ा प्रेम मानते हैं। क्योंकि उस महिमा को भी जानने का फल यह लीला (इस लीला का अनुभव) ही है; इन्द्रियों का दमन करने वाले श्रेष्ठ महामुनि ऐसा कहते हैं। रामराज्य की सुख-सम्पत्ति का वर्णन शेषजी और सरस्वती जी भी नहीं कर सकते। सभी स्त्री-पुरुष उदार हैं, सभी परोपकारी है और सभी ब्राह्मणों के चरणों के सेवक हैं। सभी पुरुष मात्र एक पत्नी-व्रती हैं। इसी प्रकार स्त्रियाँ भी मन, वचन और कर्म से पति का हित करने वाली हैं।

दंड जातिन्ह ·· ··········· ····के राज।

शब्दार्थ गज=हाथी। पंचानन=शेर। खग=पक्षी। मृग=पशु। वृन्दा=समूह। सुरभि=सुगन्धित। अलि=भौंरे। बिटप=वृक्ष। चवहीं=टपका देते हैं। धेनु=गाय। पय=दूध अमल=निर्मल। तटन्हि=किनारो पर। सरसिज=कमल। संकुल=परिपूर्ण। तड़ागा=तालाब। मयूखन्हि=किरणों से। बिधु=चन्द्रमा। महि=पृथ्वी। तप=गम। काज=आवश्यकता। बारिद=बादल।

सरलार्थ श्री रामचन्द्र जी के राज्य में दण्ड केवल सन्यासियों के हाथों में और भेद नाचने वालों के नृत्य समाज में है और 'जीतो' शब्द केवल मन के जीतने के लिये ही सुनाई पड़ता है। अर्थात् राजनीति मे शत्रुओं को जीतने तथा चोर डाकुओ आदि को दमन करने के लिये साम, दाम, दण्ड और भेद ये चार उपाय किये जाते हैं। राम राज्य में कोई शत्रु है ही नही। इसलिये 'जीतो' शब्द केवल मन के जीतने के लिये ही कहा जाता है। कोइ अपराध करता हो नहीं, इसलिये दण्ड किसी को नहीं होता; 'दण्ड' शब्द केवल सन्यासियों के हाथ में रहनेवाले दण्ड के लिये ही रह गया है। तथा सभी अनुकूल होने के कारण भेद नीति की आवश्यकता ही नहा रह गई; भेद शब्द केवल सुरताल के भेद के लिये ही कामों में आता है। (नोट यह दोहे श्लिष्ट है। श्लिष्ट के कारण एक ही शब्द के भिन्न

अर्थ हो जाते हैं)।

वन में वृक्ष सदा फूलते और फलते हैं। हाथी और सिंह अपना वैर भूलकर एक साथ रहते हैं। पक्षी और पशु सभी ने स्वाभाविक वैर भुला कर आपस में प्रेम बढ़ा लिया है। पक्षी कूजते हैं- मीठी-मीठी बोली बोलते हैं, भांति-भांति के पशुओं के समूह वन में निडर हो विचरते हैं, और आनन्द करते हैं। शीतल, मन्द, सुगन्धित पवन (हवा) चलता रहता है। भौंरे पुष्पों का रस लेकर चलते हुए गुंजार करते जाते हैं। बेलें और वृक्ष माँगने से ही मधु (मकरन्द) टपका देते हैं। गौएँ मन चाहा दूध देती हैं धरती सदा खेती से भरी रहती है। त्रेता में सत्युग की करनी (स्थिति) हो गई है। सम्पूर्ण संसार के आत्मा भगवान को जगत् का राजा जान कर पर्वतों ने अनेक प्रकार की मणियों का खानें प्रकट कर दीं। सब नदियाँ श्रेष्ठ, शीतल, निर्मल और सुखप्रद स्वादिष्ट जल बहाने लगी हैं। समुद्र अपनी मर्यादा में रहते हैं। वे लहरों के द्वारा किनारों पर रत्न डाल देते हैं, जिन्हें मनुष्य पा जाते हैं। सब तालाब कमलों से परिपूर्ण हैं। दसों दिशाओं के विभाग अर्थात् सभी प्रदेश अत्यन्त प्रसन्न हैं।

श्री रामचन्द्र जी के राज्य में चन्द्रमा अपनी अमृतमयी किरणों से पृथ्वी को पूर्ण कर देते हैं। सूर्य उतना ही तपते हैं जितने की कि आवश्यकता होती है। और बादल माँगने से जब, जहाँ, जितना चाहिए उतना ही पानी देते हैं।

कवितावली

बाल रूप की झाँकी

अवधेस के द्वारे ....जातक से।

शब्दार्थ सकारे=प्रातःकाल। गोद कैलै=गोद में लेकर। हौं=मैं। सोच-विमोचन=शोक से छुड़ाने वाले, भगवान राम। ठगि सी रही=चकित हो गई। खंजन-जातक=खंजन पक्षी का बच्चा। समसील=समानता वाले, समान।

प्रसंग प्रस्तुत पद कवि-कुल-गुरु गोस्वामी तुलसीदास द्वारा प्रणीत कवितावली के 'बालकाण्ड' से उद्धृत किये गये हैं। यहाँ पर भगवान राम के बाल रूप का वर्णन करते हुए कविवर कहते हैं

सरलार्थ एक सखी दूसरी सखी से कहती है हे सखी ! मैं आज प्रातःकाल राजा दसरथ के महल के द्वार पर गई। उसी समय राजा दशरथ अपने पुत्र रामचन्द्र जी को गोद में लेकर घर से बाहर निकले। मैं शोक को दूर करने वाले भगवान राम की सुन्दरता को देखकर चकित हो गई। भगवान के ऐसे रूप को देखकर जो चकित न हों उन्हें धिक्कार है। हे सखी ! मन को प्रसन्न करने वाली, काजल लगी हुई, खंजन के बच्चे के समान उनके नेत्र थे। वे आँखे ऐसी लगती थीं मानों चन्द्रमा मे (रामचन्द्र जी का मुख) दो नवीन और एक जैसे नीले कमल खिले हुए है।

पगनूपुर औ .... कौन जिये।

शब्दार्थ—नूपुर=घुँघरू। कलेवर=शरीर। मंजु=सुन्दर। झँगा=झिगुली, वस्त्र। अरविंद=कमल। सो=समान। मरंद=मकरंद। भृंग=भौंरे।

सरलार्थ भगवान राम के पैरों में घुँघरू हैं, और कमल जैसे हाथो में पहुँचियाँ है तथा गले में मणियों की माला सुशोभित है। नवीन नए कमल के समान साँवला शरीर [illegible] गुली में शोभा पा रहा है। ऐसे भगवान राम को गोद में [illegible] दशरथ

से पुलकित हो रहे हैं। उनके नेत्र रूपी भौंरे रामचन्द्र जी के मुख रूपी कमल से रूप (सौन्दर्य) रूपी मकरंद का आनंद से पान कर रहे हैं। अर्थात् राजा दशरथ भगवान राम को देखकर बहुत अधिक प्रसन्न हो रहे हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि यदि मन में ऐसे बाल रूप भगवान का ध्यान नहीं आया तो संसार में जीवित रहने का क्या फल है अर्थात् कुछ भी नहीं।

तन की दुति.............................में बिहरैं।

शब्दार्थ दुति=शोभा, कांति (शुद्ध-द्युति) सरोरुह तथा कंज =कमल। मंजुलताई=सुन्दरता। भूरि=बहुत। अनंग=कामदेव। दमिनि=बिजली। कल=सुन्दर, सुखदाई।

सरलार्थ- भगवान राम का शरीर नील कमल के समान सुशोभित है। नेत्रों की सुन्दरता के सामने कमलों की सुन्दरता फीकी पड़ जाती है। उनका धूल भरा शरीर बहुत सुन्दर लगता है। उनकी शोभा के सम्मुख अत्यन्त शोभा शाली कामदेव की शोभा भी फीकी पड़ जाती है। छोटे-छोटे उज्वल दाँत बिजली के समान चमकते हैं। बालकों के खेल खेलते हुए सुन्दर किलकारी भरते है। राजा दशरथ के ऐसे सुन्दर चारो बालक तुलसीदास जी के मन रूपी मन्दिर में विचरण करते हैं।

बाल लीला

कबहुं ससि.............................मंदिर में बिहरैं।

शब्दार्थ ससि=चन्द्रमा। आर करें=हठ करते हैं। प्रतिबिंब=अपनी परछाईं। निहरि=देखकर। मोद=प्रसन्नता। रिसिआई=क्रोध करके। अरै=मचलते हैं।

सरलार्थ कभी खेलने के लिये चन्द्रमा माँगने को हठ करते हैं। कभी अपनी ही परछाईं को देखकर डरते हैं। कभी ताली बजाते हुए नाचते हैं। उनकी बाल लीला देखकर सब मातायें अपने मन में आनंदित होती हैं। तभी क्रोध करके हठ करके कुछ कहते हैं और

फिर जिस वस्तु के लिये मचल जाते है उसे लेकर छोड़ते हैं। राजा दसरथ के ऐसे सुन्दर चारों बालक तुलसीदास जी के मनरूपी मंदिर में विचरण करें।

वरदंत की .... डोलन की।

शब्दार्थ- कुन्दकली = सफेद फूल। अधराधर = ऊपर नीचे के दोनों होठ। पल्लव = नवीन पत्ते। चपला = बिजली। लटैं = बाल। लोल = चंचल। कपोल = गाल। लला = रामचन्द्र जी।

सरलार्थ- कुन्द के फूल के समान श्वेत श्रेष्ठदंत पंक्ति पर बलि जाऊँ। हँसते समय नवीन पत्तों की तरह कोमल होठों के खोलने पर बलि जाऊँ। अनमोल मोतियों की माला, जोकि ऐसी चमकती है जैसे बदलों में बिजली चमकती है, की शोभा पर बलि जाऊं तथा मुख पर लटकती हुए घूँघर वाले बालों, कपोलो पर हिलते हुए कुन्डलों पर और रामचन्द्र जी की तोतली बोली पर बलि जाऊं। तुलसीदास इन सब पर अपने प्राण न्यौछावर करते हैं।

गर्भ के अर्भक .... है काको।

शब्दार्थ- अर्भक = गर्भका बच्चा। पटुधार = तेजधार। दल्यौ = तोड़ा है। लघुआनन = छोटा मुँह। साकौ = अनोखा, वीरता का काम करना। ढोटो = बालक।

प्रसंग धनुष टूटने के पश्चात जनक के राजदरबार में परशुराम और लक्ष्मणजी में वादविवाद हो रहा था। लक्ष्मणजी के अधिक बात करने पर-परशुरामजी कहते हैं :

सरलार्थ जिसके पास गर्भ के बच्चों को काट गिराने वाला तेज धारवाला भयंकर कुल्हाड़ा है वही मैं (परशुराम) राज सभा से पूँछता हूँ कि धनुष किसने तोड़ा है ? अब मैं उसका बल चूर करूँगा। फिर विश्वामित्र जी से कहते हैं हे कौशिक। यह छोटे मुँह बड़ी बात करने वाला बालक मुझसे लड़कर मर जायगा। या मुझे जीतकर कीर्ति प्राप्त करेगा। अतः हे विश्वामित्र ! बतलाओ तो यह गौरवपूर्ण घमंड से भरा हुआ छोटा बालक किसका है ?

दूलह श्री रघुनाथ ·· ·· ·· ·· ······ ··टारति नाहीं।

शब्दार्थ जुआजुरे=जुआ खेलते समय। विप्र=ब्राह्मण।

प्रसंग श्रीराम और सीता विवाह के पश्चात् प्रचलित लौकिक रीति रिवाज के अनुसार जुआ खेल रहे हैं

सब सुन्दरी सौभाग्यवती स्त्रियाँ एकत्र होकर मङ्गलाचार गाती हुई दूलह श्री रामचन्द्र जी तथा दुलहिन श्री सीताजी को सजाकर सुन्दर मन्दिर में ले गईं। लहकौर खिलाने के बाद जुआ (द्यूत क्रीड़ा) आरम्भ हुआ। उसी समय ब्राह्मण वेद ध्वनि करने लगे। उस समय सीता जी के कङ्कण के नग में श्री रामचन्द्र जी की परछाहीं देखने लगीं। इससे पासा फेंकने की सुध भूल गईं! हाथ हटाते ही कङ्कण के नग में पड़ती हुई रामचन्द्र जी के रूप की परछाँही को नहीं देख सकूँगी, इस भय से हाथ टेके रह गईं। और क्षण भर भी हाथ को नहीं हटाया। अपलक उसी प्रतिबिंब को देखती रहीं।

केवट का पद-प्रक्षालन

नाम अजामिल से... ....है ठाढ़े।

शब्दार्थ खल कोटि=करोड़ों पापी। भव=संसारी। बूड़त=डूबते हुए। काढ़े=निकाले। सुमिरे=स्मरण करने पर। अजाखुर=बकरी का पैर। बारिध=समुद्र। तटिनी=नदी (गंगा) दरै=दूर करती है। अघगाढ़े=बड़े पाप। स्वै= उसी। करारे=किनारे।

प्रसंग प्रस्तुत पद गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'कवितावली' के 'अयोध्याकाण्ड' से उद्धृत किया गया है। वन के मार्ग में गंगा जी पड़ी तो वह केवट से पार उतरने के लिए नाव माँग रहे हैं।

सरलार्थ जिन भगवान के नाम ने अजामिल के समान करोड़ों पापियों को संसार रूपी नदी में डूबने से निकाल लिया अर्थात् जन्म-मरण के बन्धन से छुड़ा दिया। जिन राम के स्मरण से सुमेरु पर्वत भी पत्थर के कण के समान और बड़ा समुद्र भी बकरी के खुर के समान छोटा हो जाता है, जिसके चरण कमलों से गंगा नदी

निकली हैं, जो बड़े-बड़े पापों को दूर कर देती हैं, वही भगवान राम उन्हीं गंगाजी को पार करने के लिए गंगा के किनारे पर खड़े होकर केवट से नाव माँगते हैं कितना आश्चर्य है।

एहि घाट तें............................ चढ़ाइओं जू।

शब्दार्थ थोरिक=थोड़ी दूर। अहै=है। लौं=तक। परसे=छूने से (शु० स्पर्श)। तरनी=नाव (शु० तरणी)। घरनी=पत्नी (शु० गृहिणी) क्यों=कैसे। अवलंब=सहारा, आधार। लरिका=बाल-बच्चे। बरु=भले ही, चाहे।

सरलार्थ नाव माँगने पर केवट रामचन्द्रजी से कहता है इस घाट से कुछ दूर पर गंगाजी उथली (कम गहरी) है अतः वहाँ जल कमर तक है। मैं आपको उसकी गहराई दिखला देता हूं, आप स्वयं पार हो जाइये। आपके पैरों की धूल के छूने से मेरी नाव भी तर जायगी अर्थात् अहल्या के समान स्त्री होकर उड़ जायगी। जब मेरी पत्नी पूछेगी कि नाव कहाँ गई तो मैं उसे क्या कहकर समझाऊँगा? दूसरे मेरी जीविका का कुछ और भी सहारा नही है। मैं अपने बाल-बच्चों को किस प्रकार पालूँगा? आप भलेही मार दीजिए, पर मैं बिना पैर धोये हुए अपनी नाव पर नहीं चढ़ाऊँगा।

रावरे दोष .... और हहा है।

शब्दार्थ रावरे=आपके। भूरि=बहुत। बन-बाहन=नाव। जल खाइ रहा है=जल में भीगने से और भी कोमल हो गई है। पावन=पवित्र। पवारि के=धोकर (प्रक्षालन करके)। बैन=वचन। हँसे हहा है=ठठाकर हँस पड़े।

सरलार्थ केवट कहता है कि हे रामचन्द्र जी यह आपके पैरों का दोष नहीं है, जो उनके स्पर्श से पत्थर भी स्त्री हो जाती है, पर आपके पैरों की धूल का बड़ा भारी प्रभाव है। जब पत्थर भी आपकी पद धूल के स्पर्श से तर गया तब पत्थर से तो काठ की नाव कोमल है, तिस पर जल में भीगने से और भी कोमल हो गई है। इसलिए आपके पवित्र पैरों को धोकर नाव पर चढ़ाऊँगा। इसमें आपकी क्या आज्ञा

है ? केवट के चतुराई से पूर्ण वचनो को सुनकर रामचन्द्र जी सीता जी की ओर देखकर ठठाकर हँसने लगे।

पात भरी सहरी.................. .... न चढ़ाइहों।

शब्दार्थ पात=पत्तल। सहरी=मछली की एक जात। सकल=सब। बारे-बारे=छोटे छोटे। बित्तहीन=निर्धन। सौं शपथ।

सरलार्थ पत्तल भरकर मछली प्रति दिन पकड़ता हूं। यही मेरी जिविका है। मेरे सभी पुत्र छोटे हैं अर्थात् वे जीविका पैदा करने योग्य नहीं है मै केवट, नीच जाति का हूँ। अतः मैं उनको वेद भी नहीं पढ़ा सकता हे राजन् ! मेरा तो सारा परिवार नाव पर ही निर्भर है। मै दीन तथा निर्धन हूं, इससे दूसरी नाव भी नहीं बना सकता। मैं नीच निषाद हूं अतः आपसे व्यर्थ में तकरार नहीं करूँगा। हे राम चन्द्र जी ! मुझे आपकी शपथ है, मैं सच कहता हूं कि बिना आपके पैर धोगे आपको नाव पर नही चढ़ाऊँगा, नहीं तो मेरी नाव भी गौतम का पत्नी अहल्या की भाँति आपकी पदधूलि से उड़ जायगी।

वन-मार्ग में

पुरतें निकसी.........   जल च्वै।

शब्दार्थ- निकसी=निकली। मग=रास्ता। मरिमाल=सारे ललाट पर। कनी जल की=पसीने की बूदें। वै=दोनो। आतुरता=घबराहट, व्याकुलता। चारु=सुन्दर। च्वै=बहना।

सरलार्थ सीताजी पहले पहल ही नगर से बाहर इस प्रकार पैदल निकली थीं। श्री राम चन्द्र जी जैसे वीर पुरुष की पत्नी होने के गर्व से कुछ दूर तक धैर्य धारण करके चलीं। इतने ही परिश्रम से उनके सम्पूर्ण ललाट पर पसीने की बूदें झलकने लगीं और अति कोमल दोनों अधर पुट सूख गए। अतः पूछने लगीं कि अब कितनी दूर और चलना है ? पर्णकुटी कहाँ पर बनाओगे ? सीता जी की ऐसी व्याकुलता को देखकर श्री रामचन्द्र जी की अत्यन्त सुन्दर आँखों से आँसू टपकने लगे।

जल को गए ....विलोचन बाढ़े।

शब्दार्थ परिखौ=बाट देखो। घरीक=एक घड़ी, कुछ देर तक। पसेउ=पसीना। बयारि करौं=हवा करूँ, पंखा झलूँ। पखारिहौं=धू डालूँगी। भूभुरि=गरम धूल। डाढे=जले हुए, दग्ध। बिलंबलों=देर तक। नाह=पति। नेह=प्रेम।

सरलार्थ सीताजी रामचन्द्र जी से कहती हैं कि लक्ष्मण जल लेने को गए हैं। अभी वे बालक ही हैं। अतः हे प्रियतम थोड़ी देर इस छाया में खड़े होकर उनकी बाट देख लीजिये। आप भी थक गए हैं। इसलिए मैं आपके पसीने को पोंछ कर आपको पंखा झल दूँ और गर्म धूल से जले हुए आपके पैरों को धो डालूँ। तुलसीदास जी कहते हैं कि रामचन्द्र जी इन बचनों से सीताजी को थकी हुई जानकर देर तक बैठकर काँटे निकालते रहे। सीताजी अपने ऊपर पति (रामचन्द्र जी) का स्नेह जानकर प्रेम से पुलकायमान हो गई। और आँखों से प्रेमाश्रु वह चले।

ठाढ़े हैं नव ....तारक मैं।

शब्दार्थ नवद्रुम=नवीन पेड़। डार गहे=डाल पकड़े। सायक=बाण विकटी=टेढ़ी। भ्रकुटी=भौंहें। बड़री=बड़ी। स्रम-सीकर=पसीने की बूँदें (शु० स्रम शीकर)। रासि=ढेर (शु० राशि)। तारक मैं=तारकमय, तारों से युक्त और पूर्ण।

सरलार्थ श्री रामचन्द्र जी नए वृक्ष की शाखा पकड़े आराम के लिये खड़े हैं। उनके कंधे पर धनुष है और हाथ में बाण हैं। उनकी भौंहें टेढ़ी और नेत्र बड़े-बड़े हैं। और कपोलों की शोभा तो अमूल्य है। साँवले शरीर पर पसीने की बूँदें इस प्रकार सुन्दर लगती हैं, जिस प्रकार बड़ी भारी घनी अंधेरी (भाद्रपद की अमावस्या की) रात्रि तारों से परिपूर्ण होने के कारण सुन्दर लगती है। तुलसीदास जी स्वयं अपने से कहते हैं कि रे मूर्ख! रामचन्द्र जी की ऐसी मूर्ति को हृदय में धारण करके अपने प्राणों को नोछावर कर दें।

वनिता बनी ....बालक द्वै।

शब्दार्थ- वनिता=स्त्री। वनी=सुशोभित है। बिलोकहु=देखो। मग=मार्ग। जोग=योग्य। बिथकीं=छक गई, तृप्त हो गई। तन=शरीर। मोहन=मोहित करने वाले। अनूप=अनोखे।

सरलार्थ एक ग्रामीण स्त्री अन्य स्त्रियों से कहती है कि हे सखी! मेरी तरह चित्त लगाकर ध्यान से देखो, साँवले (राम) और गोरे (लक्ष्मण) के बीच में स्त्री (सीता) कैसी सुन्दर लग रही हैं ये कठोर मार्ग मे चलने योग्य नहीं हैं, ये कोमल हैं इनसे कैसे चला जायगा? इनके कोमल चरण कमलों के स्पर्श से पृथ्वी भी अपनी कठोरता स्मरण कर सकुचाती है। तुलसीदास कहते हैं कि उसके वचन सुनकर सब ग्राम बधुएँ स्तब्ध हो गईं। शरीर में प्रेमवश रोमाञ्च हो उठा और आँखों से प्रेम के आँसू बह चले। सब प्रेमवश कहने लगीं कि राजा के दोनों बालक सब प्रकार से सुन्दर हैं। इनका रूप मन को मोहित करने वाला है। इनकी समानता का कोई दूसरा नहीं है।

साँवरे गोरे ....हियो है

शब्दार्थ मैन=कामदेव (शु० मदन)। निषंग=तरकष बिधुबैनी=चन्द्रमुखी (शु०-बिधु बदनी)। रीति=कामदेव की स्त्री। रंजक=थोड़ा सा। पनही=जूता,पदत्राण। पयादेहि=पैदल क्यों=किस प्रकार। हियो=हृदय।

सरलार्थ--साँवले (राम) गोरे (लक्ष्मण) दोनों राजकुमार स्वमता के सुन्दर हैं। उन्होने शारीरिक सौन्दर्य में तो कामदेव को भी जीत लिया। हाथों में धनुषबाण और कमर में तरकस बाँधे हुए हैं। साथ में अति सुन्दरी चन्द्रमा के से मुख वाली स्त्री है, जिसने अपने रूप में से थोड़ा सा रूप रति (काम देव की पत्नी) को दिया है, अर्थात् सुन्दर कमवधु उनके (सीताजी) सौन्दर्य के सम्मुख कुछ भी नहीं है। मेरा हृदय सकुचाता है कि इनके पैरों में तो जूते भी नहीं हैं ये पैदल किस प्रकार चलेंगे।

रानी मैं जानी .... दियो है।

शब्दार्थ अजानी=अज्ञान। महा=बहुत। पवि=वज्र। पाहन=पत्थर। काज अकाज न जान्यौ=बुरे भले का विचार नहीं किया। तय=स्त्री। कह्यो कान कियो है=कहना मान लिया। किमि कै=कैसे, किस कारण से।

सरलार्थ हे सखी! मैं समझती हूँ कि रानी बिलकुल मूर्ख है उसका हृदय वज्र और पत्थर से भी कठोर है जो ऐसे सुकमारों को वन भेजने में भी नहीं पिघला। राजा ने भी भले-बुरे का कुछ विचार नहीं किया जो स्त्री का कहना मान लिया। इनके समान मन को हरने वाली मूर्तियों से बिछुड़ने पर भी इनके प्रिय (मित्र-सम्बन्धी) कैसे जीते रहे? हे सखि! ये तो आंखों में रखने योग्य हैं, अर्थात् ये तो सदा आंखों के सम्मुख रहें तभी अच्छा है। इन्हे वनवास किस कारण से दिया गया है।

सीस जटा .... कंजकली।

शब्दार्थ तून=तरकस। सुठि=सुन्दर (शु०-सुष्ठु) सुभाय=अच्छे भाव से, पवित्र दृष्टि से। त्यों=तन, और।

सरलार्थ ग्रामवधू सीताजी से पूछती हैं कि हे सखि! जिनके सिरपर जटाएँ हैं, छाती चौड़ी है, भुजाएँ लम्बी हैं, आंखें लाल हैं, भौंहें टेढ़ी हैं और जो कमर में तरकस, हाथों में धनुष बाण धारण किए हुए वन के मार्ग में अति सुन्दर शोभा देते हैं, और जो बड़े आदर सहित बार-बार पवित्र दृष्टि से तुम्हारी ओर देखकर हमारे मन को मोहित करते हैं, वे सांवले से आपके कौन हैं?

सुनि सुन्दर........... ....कंज कली।

शब्दार्थ बैन=शब्द (शु०-वचन)। सुधारस-साने=अमृत जैसे, मीठे। सयानी=चतुर। भली=अच्छी तरह। नैन=नेत्र। सैन=संकेत। औसर=समय (शु० अवसर)। लाहु=लाभ अली=सखी। उदै=उदय, निकलना। बिगसी=खिली।

सरलार्थ ग्राम बन्धुओं के प्रेम पूर्ण सुन्दर वचन सुन कर सीता जी ने अच्छी तरह जान लिया कि ये चतुर हैं। अत रामचन्द्र जी

की ओर तिरछी आँखों से देखकर उन्हें (ग्राम वधुओं को) संकेत से समझाकर कुछ मुसकरा गई। तुलसीदास जी कहते हैं कि उस समय सब सखियाँ लोचनों के लाभ रूपी राम लक्ष्मण को देखती हैं। वे ऐसी शोभित होती हैं मानो प्रेम रूपी तालाब में (राम रूपी) सूर्य के उदय होने से सुन्दर कमल की कलियाँ (स्त्रियों की आँखें) खिल गई हैं। यहाँ राम-प्रेम तालाब है, राम सूर्य हैं, स्त्रियों की आँखें कमल कलियाँ हैं।

विन्ध्या के बसी.. ....पगु धारे।

शब्दार्थ उदासी=सुखदुख में समान भाव वाले। महा तपो व्रत धारी=बड़े ब्रह्मचारी। भे=हुए। ह्वै=हो जाएँगी। सिला=पत्थर। परसे=स्पर्श करने से। पद-मंजुल-कंज=सुन्दर कमल के समान चरण। कन्हीं भली=अच्छा किया।

सरलार्थ यह तुलसीदास जी का हास्य रस का प्रसिद्ध है। यहाँ हास्य रस में रामचन्द्र जी के चरण कमलों की धूलि का महात्म्य वर्णन किया गया है।

विध्याचल के बड़े-बड़े ब्रह्मचारी और संसार से उदासीन जो सब अब तक बिना स्त्रियों के दुखी थे, तुलसीदास जी कहते कि रामचंद्र जी की चरण रज से गौतम की पत्नी अहल्या पत्थर से स्त्री हो गई यह कथा सुनकर वे सब बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे कि हे रामचंद्र जी! आपने अच्छा किया जो हम लोगों पर दया करके वन को आए क्योंकि आपके सुन्दर चरण-कमलों के स्पर्श से सब शिलाएँ चन्द्रमुखी स्त्रियाँ हो जायेंगी। और हम लोगों को एक-एक स्त्री मिल जायगी।

लंका-दहन

लाइ लाइ आगि...................रिस लाल भों।

शब्दार्थ बाल जाल=बालकों के समूह। निवुकि=बंधन से।

फिसल जाना, । गिरिमेरू=सुमेरू पर्वत । बिसाल=बड़ा (शु० विशाल) । भो=हुआ । कनक कँगूरे=सोने के कँगूरे पर । ब्योम=आकाश । पसारि=फैलाकर । हहरात=भयभीत होते हैं । निधान=खजाना । कृसानु=अग्नि (शु० कृशानु) ।

सरलार्थ लंका में आग लगने का वर्णन करते हुए तुलसीदास जी कहते हैं बालकों का झुंड पूंछ में आग लगा-लगा कर इधर-उधर भाग गया । हनुमान जी छोटा रूप धारण कर (ब्रह्म पाश के बंधन से) खिसक आए; फिर सुमेरू पर्वत से भी बड़े हो गए । कौतुकी हनुमान जी कूद कर सोने के कँगूरे पर चढ़ गए । वहाँ से उसी समय रावण के महल में जा खड़े हुए । तुलसीदास जी कहते हैं कि अपनी बड़ी भारी पूँछ को फैलाकर, हनुमान जी आकाश में विराजमान हुए । उस समय वे काल से भी भयंकर प्रतीत हुए और उनको देखकर योद्धा भी भयभीत हो गए । उनके नख बड़े भीषण थे और क्रोध से मुख लाल हो गया था । उस समय हनुमान जी का प्रताप ऐसा फैल गया मानो करोड़ों अग्नि और सूर्य एक साथ प्रकट हुए हों ।

बालधी बिसाल .... नगर प्रजारी है ।

शब्दार्थ ज्वाल=ज्वाल=आग की लपटों का समूह । लीलिवे=निगलने को । रसना=जिह्वा । कैधों=अथवा । ब्योम=आकाश । वीथिका=गली । ब्योम-वीथिका=आकाश गंगा, छाया पथ । भूरि=बहुत । धूमकेतु=पुच्छलतारा । सुरेस चाप=इन्द्र धनुष कलप=समूह । मेरू=सुमेरू पर्वत । सरि=नदी । जातुधान=राक्षस (शु०"यातुधान) प्रजारी है=प्रकट रूप से अर्थात् अच्छी तरह से जला देगा ।

सरलार्थ हनुमान जी की बड़ी भारी पूँछ जो भयंकर आग की लपटों का समूह है, ऐसी है मानो काल ने लंका को निगलने के लिए जीभ फैलाई है, अथवा आकाश-गंगा में बहुत से धूम्रकेतु तारे भरे हों, अथवा पराक्रमी वीर रस ने तलवार म्यान से बाहर निकाल

रखी हो, अथवा इन्द्र धनुष उदय हुआ हो, अथवा बिजलियों का समूह हो, अथवा समेरु पर्वत से बड़ी भारी आग की नदी बह चली हो। तुलसीदास जी कहते हैं कि यह देखकर सब राक्षस-राक्षसी घबड़ा कर कहते हैं कि पहले इस बानर ने वाटिका उजाड़ी थी, अब नगर को भस्म कर देगा।

सियराम रूप .... को फलु है।

शब्दार्थ अगाध=गंभीर, गहरा। अनूप=अनुपम। स्रुति=कान। थलु=स्थान। गति=पहुँच। रति=प्रेम। मते=संमति, विचार से।

सरलार्थ सीताराम का अद्वितीय सौन्दर्य आँख रूपी मछलियों के लिये अगाध जल हो, अर्थात् आँखों से सीताराम की सुन्दरता देखें। भाव यह है कि जैसे मछलियाँ जल में ही मग्न रहती हैं और उसके विना प्राण छोड़ देती हैं, ऐसे ही जब तक शरीर में प्राण रहें तब तक सदा रामचन्द्र जी का ध्यान रहे। कानों से रामचन्द्र जी की ही कथा सुनें, मुख से राम राम उच्चारण करें, मन में भी सदा राम का स्मरण करें, बुद्धि से भी राम की महिमा जानें और पहुँच केवल राम तक हो; सब की सम्मति तो नहीं कहते पर तुलसीदास के विचार से संसार में जीने का फल यही है।

गीतावली

बालकाण्ड (१) सुखनीद कहित .... मिलि गाइहौं।

शब्दार्थ- अनखनि=खिन्न होना, झुँझलाना। अनरसनि=मचलना। डिठि=नजर। मुठि=टोना। नसाइहौं=नष्ट करदूँगी। बलाइहौं=दुखतथा आपत्तियों को। परिजन=कुटुम्ब। मोदमय=आनन्दमय। निरखि=देखकर।

प्रसंग माँ के ये कहने पर भी कि हे पुत्र अब नींद का समय हो गया है सो जाओ, राम अपने साथियों सहित सोते नहीं हैं तो निद्रादेवी कहती है

सरलार्थ – हे सखी ! मैं आऊँगी और राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न चारों बालकों को प्रसन्न करके सुलाऊँगी। मैं रोने-धोने, झुँझलाने, मचलने और कठोर नजर तथा टोने को नष्ट करदूँगी। और हँसने, खेलने, किलकने तथा आनन्दित होने की क्रिया को महाराज के महल में बसाऊँगी। राम की प्रसन्न-चित्त और सुखदायी मूर्ति को गोद में लेकर प्रसन्न मन से हिलाऊँगी और बालक राम पर अपने शरीर को तिल-तिल न्योछावर कर उनके सम्पूर्ण रोग और दुख अपने ऊपर ले लूंगी। राजा और रानी को अपने पुत्र तथा कुटुम्बियों के सहित देखकर मैं अपने नेत्रों का फल पाऊंगी। तुलसीदासजी कहते हैं। कि निद्रादेवी कह रहीं सबके साथ मिलकर रघुवंश-तिलक भगवान राम के पवित्र चरित्र गाऊंगी।

अयोध्याकाण्ड—(२) जबहिं रघुपति ········ दलकि दली।

शब्दार्थ– तिय=नारी, स्त्री। मनिगन=मणियों के समूह। लगि=लिये। बिषम=टेढ़ा। कुलिस=वज्र। दलकि=तड़क कर। दली=नष्ट हो गई।

प्रसंग– जब राम और सीता वन को जा रहे हैं उस समय नगर-निवासियों की मनोदशा का चित्रण करते हुए तुलसीदासजी कहते हैं :

सरलार्थ– जिस समय भगवान् राम के साथ सीताजी भी चलीं, उस समय नगर के स्त्री-पुरुष वियोग-व्यथा से दुखी होकर कहने लगे "अरे सखी ! यह तो बड़ा अन्याय हो रहा है।" कोई कहने लगे "राजा यह अच्छा नहीं कर रहे हैं क्योंकि काँच के लिए वे मणियों को छोड़ रहे हैं।" कोई बोले "कैकेयी कुल के लिये बुरी बेल के समान है जो इस समय विष के समान दुखदाई फलों से फली है।" किसी ने कहा "विधाता भी बड़ा ही टेढ़ा और बलवान् है, भला क्या जानकी वन के योग्य है ?" तुलसीदास जी कहते हैं कि उस दिन तो वज्र की कठोरता भी तड़क कर नष्ट हो गई।

(३) मोको बिधु बदन ········ ········ हिम पाई।

शब्दार्थ विधु-बदन=चन्द्रमुख ! यहै=यहाँ की, अंतिम। अंक=गोद। अवनि=पृथ्वी। बिदरत=फट जाती है। मिस=बहाने। गवन कियो=चल दिये। हिम=बर्फ। नलिन=कमल। मलिन=मुर्झाना। सर=तालाब।

सरलार्थ भगवान राम को वन जाते सुन महाराज दशरथ कहने लगे "हे राम-लक्ष्मण मुझे अपना मुख चन्द्र देख लेने दो। अब मेरी तो यह यहाँ की अंतिम भेंट है। मैं बलिहारी जाता हूँ। जहाँ भी जाओ मुझसे मिलकर जाना।" पिता के ये शब्द सुनकर भगवान राम ने उनके चरण पकड़ लिये। तब राजा ने उन्हे अपनी गोद में भर लिया। उस समय की याद आने पर तो पृथ्वी आज भी दरार के बहाने फट जाती है। फिर भगवान राम सिर झुका-कर वन के लिये चल पड़े। उस समय महाराज दशरथ मूर्छित हो गये और उन्हें फिर चेतना न आई, मानो कर्म रूपी चोर, राजा रूपी पथिक को मारकर, उसके राम रूपी रत्न को लेकर भाग गया। तुलसीदास जी कहते हैं कि इसके पश्चात् सूर्य-वंशी सूर्य भगवान राम रथ पर चढ़कर अत्यन्त सुहावनी दक्षिण दिशा को चल दिये। उस समय प्रभु की विरह रूपी कठिन वर्फ पाकर अयोध्या रूपी तालाव के, नगर-निवासी स्त्री-पुरुष रूपी कमल मुरझा गये।

(४) नीके कै मै.................आनि देखाए।

शब्दार्थ जुग=दो (शु० युग) वधु=स्त्री। सिधाए=गए। सरोज=कमल। बयस=उम्र। मनोज=कामदेव। चितवत=देखने पर। लालसा=इच्छा। पुरबै=पूरी करेगा।

सरलार्थ एक स्त्री दूसरी से कह रही है हे सखि। इस रास्ते से जो सुन्दर पथिक एक चन्द्रमुखी स्त्री को साथ लेकर गये हैं, उन्हें मैं तो भलीभाँति देख भी नहीं पाई। उसके नेत्र कमल के समान थे, सुन्दर किशोर (१६ वर्ष से ऊपर) अवस्था थी, सिर पर जटाओं से रचकर मुकट वनाये हुए थे, कमर में मुनियों के से वस्त्र और तरकस तथा हाथों मे धनुष-बाण धारण किये थे। वे श्याम तथा गौर वर्ण

के थे और उनका स्वभाव बहुत सुन्दर था। उनका मुख सुन्दर था, वक्ष स्थल तथा भुजायें विशाल थीं और उनके शरीर की शोभा के सम्मुख करोड़ों कामदेव लज्जित हो जाते थे। उन्हें देखकर मेरी आँखें तो चौंधिया सी गई। अतः मैं तो यह भी नहीं जान पाई कि वे कौन थे और कहाँ से आये थे। मेरा मन तो उन्हीं के साथ चला गया, नेत्र भी दुखी होकर आँसू बहा रहे हैं। "तुलसीदास जी कहते हैं कि सखा कह रही है--"मैंने अपने मन को बहुत कुछ समझाया है लेकिन तब भी उनके दर्शन की इच्छा बनी हुई है। अब तो इसे वही पूर्ण करेगा जिसने उन्हें एक बार यहाँ लाकर दिखा दिया था।"

(५) विनती भरत ....न पैहों।

शब्दार्थ- भोरे=भूल में। छमिए=क्षमा कीजिए। अघ=पाप औगुन=अवगुण। पन=प्रण। परिजनहि=सेवक को।

सरलार्थ- भगवान राम के वन जाते समय भरतजी हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं: 'हे दीनबन्धो! इस समय दीन की दीनता (गरीब का दुख) कभी भूल मे न पड़ जाय। हे नाथ! आप जैसे स्वामी, मेरे लिये तो आप ही हैं परन्तु मेरे समान, आपके लिये तो अनेकों सेवक हैं। इस बात को जानकर और मेरे सच्चे प्रेम को पहचान कर आप मेरे अपराध और बुराई क्षमा करें।" यह कह कर भरतजी ने राम और सीताजी के चरणों में गिरकर लक्ष्मण जी को हृदय से लगा लिया। और फिर पुलकित शरीर हो, नेत्रों मे जल भर कर, प्रेम की प्रतिज्ञा करके कहने लगे। "तुलसीदास जी कहते हैं कि भरत जी ने प्रतिज्ञा की कि हे रघुनाथ जी वनवास की अवधि समाप्त होने पर यदि आप पहले दिन ही अयोध्या में न आये तो प्रभु के चरण-कमलों की शपथ खाकर कहता हूँ कि आप अपने दास (मुझ) को फिर यहाँ जीवित न पा सकेंगे।

लंकाकाण्ड(६) मेरो सब..................जानि पचारे।

शब्दार्थ विपति=कष्ट। समर=युद्ध। शाखामृग=वानर। संघाति=साथी। छाती=हृदय। औसर=अवसर। पचारे=उत्ते-

जित किया।

सरलार्थ भक्त-वत्सल भगवान राम विभीषण के भविष्य की चिन्ता करते हुए सुग्रीव से कह रहे हैं "अब मेरा सारा पुरुषार्थ थक गया। अपनी आपत्ति और संकटों को बचाने वाले भाई रूपी भुजा के बिना अब मैं किसका भरोसा करूं? हे सुग्रीव! सुनो, विधाता ने सचमुच मेरी ओर से मुँह फेर रखा है, तभी तो ऐसे समय जब युद्ध-संकट उपस्थित है मुझे लक्ष्मण जी से भाई ने त्याग दिया। युद्ध के पश्चात् वानर तो पर्वत और वनों में चले जायेंगे, और मैं भाई लक्ष्मण के साथ चला जाऊंगा, परन्तु मेरे हृदय में यही चिन्ता है कि भविष्य में विभीषण की क्या गति होगी?" तुलसीदास जी कहते हैं भगवान के इन शब्दों को सुनकर सब रीछ-वानर हृदय में व्याकुल हो कर थकित हो गये। तब जाम्बवान् ने हनुमानजी को बुलाकर उत्तेजित किया।

(७) जो हौं अब.................मन भावों।

शब्दार्थ अनुसासन=आज्ञा। चैल=वस्त्र। सुधा=अमृत। दलौं=मारदूँ। काला वलि=सर्पों का समूह (व्याल+अवलि)। मह्नि=पृथ्वी। विबुधवैद=अश्विनी कुमार (देवताओं के वैद्य)। मचि=मृत्यु। मूषक=चूहा।

सरलार्थ जाम्बवान् के उत्तेजनापूर्ण शब्दों को सुनकर हनुमान जी कहने लगे="हे प्रभो! यदि इस समय मुझे आज्ञा मिले तो मैं चन्द्रमा को वस्त्र के समान निचोड़ कर, उससे अमृत ही आपको सिर नवाऊं अथवा पाताल में अमृत की रक्षा करने वाले सर्पों को मारकर अमृत कुण्ड को पृथ्वी पर उठा लाऊं। यदि उससे भी काम न चले तो भुवन कोश को फोड़कर सूर्य को बाहर निकाल दूँ, जिससे फिर सूर्य न निकल सके और प्रातःकाल न हो। यही नहीं यदि मैं देवताओं के वैद्य अश्विनी कुमार को ले आऊं तभी मैं भगवान का सच्चा भक्त कहलाऊं। नीच मृत्यु को चूहे के समान पटक दूं और इस प्रकार सभी का पाप काट दूं, मरने का भय दूर करदूं।

प्रभो ! आपकी कृपा और आप ही के प्रताप से मैं इन कार्यों में तनिक भी देरी नहीं करूँगा । अतः हे तुलसीदास के स्वामी ! जिसके करने से आपको प्रिय लगूँ, वही आज्ञा दीजिये ।

(८) बैठी सगुन .... जल पायो ।

शब्दार्थ सगुन=शकुन (शु०) फुरि=सच्ची । अवधि= समय । समीप=पास । गनक=ज्योतिषी । मीन=मछली ।

सरलार्थ माता बैठी-बैठी शकुन मना रही है अरे काक ! सच-सच बता, मेरे बालक कुशल पूर्वक घर कब आजायँगे ? जिस समय मैं नेत्र भर कर सीता के सहित राम और लक्ष्मण को देखकर हृदय से लगाऊँगी उस समय मैं तुझे दूध भात का दोना दूँगी और तेरी चोंच सोने से मढ़वा दूँगी। पर वनवास के समय की सीमा को पास ही जानकर, माता अत्यन्त उतावली होकर, हृदय में दुखित हो जाती है । किसी ज्योतिषी को बुलाकर, उसके पैरों पड़ कर प्रेम में मग्न होकर मधुर वाणी में पूछती हैं । इसी समय भरत जी के पास से कोई रघुनाथ जी के आने का समाचार लेकर आया । तुलसीदास जी कहते हैं कि उसके मुख से भगवान का आगमन सुनते ही कौशल्या जी को ऐसी शान्ति मिली मानो मरती हुई मछली को जल मिल गया हो ।

दोहावली

दोहा (१)- राम बाम .... तुलसी तीर

प्रसंग प्रस्तुत दोहे भगवान राम का महत्व प्रदर्शित करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित 'दोहावली' से उद्धृत किये गए हैं ।

सरलार्थ- भगवान श्री राम की बायीं ओर श्री जानकी जी हैं और दाहिनीओरश्रीलक्ष्मणजी भए हैं, भगवान का इस रूप में ध्यान करना पूर्णरूप से से कल्याणकारी है । हे तुलसी ! तेरे लिये तो यह मनमानी फल देने वाला कल्पवृक्ष है ।

(२) तुलसीदास जी कहते हैं कि यदि तू भीतर और बाहर दोनो ओर प्रकाश (लौकिक एवं परमार्थिक ज्ञान) चाहता है तो मुख रूपी दरवाजे की जीभ रूपी देहली पर राम नाम रूपी कभी न बुझने वाला मणि दीप रख दे।

(३) तुलसीदास जी कहते हैं कि श्री राम का स्मरण करके जो हृदय पिघल नहीं जाते वे हृदय फट जायँ, जिन आँखो से प्रेम के आँसू नहीं बहते वे आँखें फूट जायँ और जिस शरीर में रोमान्च नहीं होता वह जल जाय अर्थात् ऐसे अंग व्यर्थ हैं।

(४) या तो तुझे राम प्रिय लगने लगें या प्रभू श्री राम का तू प्रिय बन जा। दोनो में से जो तुझे सरल जान पड़े और अच्छा लगे, तुलसीदास जी कहते हैं कि तुझे वही करना चाहिये।

(५) जल के मथने से चाहे घी उत्पन्न हो जाय अथवा चाहे बालू के पेरने से तेल निकल आवे; परन्तु श्री हरि के भजन बिना सागर से पार नहीं हुआ जा सकता, यह सिद्धान्त अटल है।

(६) हे रघुवीर ! मेरे समान तो कोई दीन नहीं है और आपके समान दीनों का भला करने वाला अन्य कोई नहीं है। ऐसा विचार कर हे रघुवंश मणि ! जन्म-मरण के महान भय को दूर कीजिए।

सोरठा (७)--वेद-पुराण कहते हैं कि क्या गुरू के बिना ज्ञान हो सकता है अथवा क्या वैराग्य के बिना ज्ञान प्राप्त हो सकता है और श्री हरि की भक्ति बिना क्या कभी सच्चा सुख प्राप्त हो सकता है।

दोहा (८)- भला आदमी अपनी भलाई से और नीच व्यक्ति अपनी नीचता से शोभा पाता है। अमृत की प्रसंसा इसलिये की जाती है वह अमरत्व प्रदान करता है और विष की इसलिये सराहना की जाती है कि वह सहज में ही मृत्यु कर देता है।

(९) स्वयं अपने लिये तो सभी भले हैं अर्थात् सभी अपनी भलाई करना चाहते हैं। अपने मित्र-बांधवों की भलाई करने वाले भी कोई-कोई होते है। तुलसीदास जी कहते हैं जो सबकी भलाई करने

वाला है, साधुजनों के द्वारा उसकी सराहना होती है।

(१०) तुलसीदास जी कहते हैं कि जो व्यक्ति दूसरों की कीर्ति को मिटाकर अपनी कीर्ति चाहते हैं, उनके मुख पर ऐसी कालिख लगेगी जोकि, चाहे वे धो-धोकर मर जाँय कभी नहीं छूटेगी।

(११) तुलसीदास जी कहते है कि नीच आदमियों को अच्छी तरह जान-सुनकर गुड्डी के समान समझना चाहिये। जैसे गुड्डी ढील देने से पृथ्वी पर गिर पड़ती है और खींचने से आकाश में चढ़ जाती है। इसी प्रकार दुरदुरादेने से नीच आदमी सीधे हो जाते हैं पर अपनाने से उल्टे सिर चढ़ते हैं।

(१२) तुलसीदास जी कहते हैं कि जैसी होनहार होती हैं वैसी ही सहायता मिल जाती है। या तो वह स्वयं उसके पास चली जाती है अथवा उसे वहाँ ले जाती हैं।

(१३) तुलसीदास जी कहते हैं कि जो व्यक्ति सब बात सुन-समझकर भी, जान बूझकर अनीति में लगा रहता है और जागते हुए भी सोता रहता है, उसको उपदेश देना या जगाना उचित नहीं है। अर्थात् व्यर्थ है।

सोरठा (१४) यद्यपि बादल अमृत सा जल बरसाते हैं तो भी बेत फूलता-फलता नहीं। इसी प्रकार यदि ब्रह्मा के समान ज्ञानी गुरु भी मिल जाय तो भी मूर्ख के हृदय में ज्ञान नहीं होता।

नोट 'सिव' के स्थान पर 'सम' शब्द होना चाहिये।

(१५) स्वामी की अपेक्षा स्वामी के परिचारक वर्ग विशेष दुखदायी होते हैं, इस बात को विचार कर राजा को चाहिये कि वह स्वयं अपनी प्रजा की देख-भाल करे। क्योंकि हाथ की चोट की अपेक्षा हाथों में पकड़ी हुई तलवार की चोट बहुत ही कठिन और भयङ्कर होती है।

(१६) तुलसीदास जी कहते हैं कि सूर्य जब जल को खींचता है तब किस को भी पता नहीं लगता, परन्तु जब बरसता है सब लोग प्रसन्न हो जाते हैं। इसी प्रजार प्रजा को

कष्ट पहुँचाये बिना, कर उगाने में कष्ट दिये बिना समय पर उसी धन से व्यवस्थित रूप से प्रजा का हित करने वाला सूर्य के समान कोइ राजा प्रजा के सौभाग्य से ही होता है।

(१७) तुलसीदास जी कहते हैं कि सेवक हाथ, पैर और नेत्रों के समान होने चाहिये और मालिक मुख के समान होना चाहिये। सेवक-स्वामी की प्रीति को सुनकर सुकवि उसकी सहायता करते हैं। अर्थात् जैसे हाथ, पैर और आँख आदि खद्य सामग्रियों के संग्रह में और विपत्ति पड़ने पर रक्षा करने में सहायता करते हैं, उसी प्रकार सेवक को मालिक की सहायता करनी चाहिये। और जैसे मुख सब पदार्थों को खाता है, परन्तु खा कर सब अङ्गों को यथा योग्य रस पहुँचाता है और उन्हें पुष्ट करता है उसी प्रकार मालिक को सब का पेट भर कर उन्हें शक्तिमान बनाना चाहिये।

(१८) तुलसीदास जी कहते हैं जिसदिन अपने ही लोग अपना साथ छोड़ देते हैं, उस दिन कोई भी हित करने वाला नहीं रह जाता। यद्यपि सूर्य कमल का मित्र है, परन्तु जब जल कमल का साथ छोड़ देता है तब वही सूर्य कमल का वैरि बनकर उसे जला डालता है।

(१९) तुलसीदास जी कहते हैं कि वर्षा ऋतु में कोयल यह समझ कर मौन धारण कर लेती है कि अब तो मेंढक बोलेंगे, हमें कौन पूछेगा ? अर्थात् प्रतिकूल समय आने पर दुर्जनों की ही चलती है, उस समय सज्जन चुप रहते हैं।

(२०) तुलसीदास जी कहते हैं कि बस इतना जान लेना चाहिये कि भगवाम गरीब निवाज दीन बन्धु हैं। इसी से उन्होंने मणि माणिक्य आदि, जिनके बिना भी हमारा काम आनन्द से चल सकता है, मेंहगे किये हैं और तृण, जल तथा अन्न जिनके बिना प्राणि मात्र जीवित नहीं रह सकते, आदि वस्तुओं को सस्ता कर दिया है।

सोरठा (२१) काशी की प्रशंसा करते हुए तथा तुलसीदास

जी उसके महत्त्व का प्रदर्शन करते हुए कहते हैं जहाँ भगवान् श्री शिवजी और माता पार्वती जी रहते हैं, उस काशी को पापों को नष्ट करने वाली, ज्ञान की खान और मुक्ति को जन्म देने वाला स्थान समझ कर उसका सेवन क्यों न किया जाय। अर्थात् अवश्य करना चाहिये।

(२२) शङ्कर जी की महिमा का वर्णन करते हुये तुलसीदास जी कहते है जिस भयंकर विष की ज्वाला से सम्पूर्ण देवतागण जल रहे थे, उसको जिन्होंने स्वयं पान कर लिया। रे मूर्ख ! तू उन श्री शिवजी को क्यों नहीं भजता ? उनके समान कृपालु और कौन है ? अर्थात् कोई नहीं।

चातक-प्रेम

प्रसंग प्रस्तुत दोहो में गोस्वामी तुलसीदास जी अपनी भक्ति का आदर्श स्पष्ट करते हुए भगवान राम के प्रति अपनी भक्ति की अनन्यता सिद्ध करते हैं। अपने कथन की पुष्टि के लिये एवं भक्ति की समता के लिये उन्होंने चातक आदर्श माना है जिस प्रकार चातक का बादलों के प्रति सच्चा प्रेम है वैसा ही तुलसीदास जी का भगवान के प्रति सच्चा प्रेम, निष्ठा, सहन शक्ति, आदेश हैं।

दोहा (२३) एक ही भरोसा है, एक ही बल है, एक ही आशा है और एक ही विश्वास है। एक राम रूपी श्याम घन (बादल) के लिये ही तुलसीदास चातक बना हुआ है।

(२४) तुलसीदास जी कहते हैं कि हे रामरूपी मेघ ! चाहे तुम ठीक समय पर बरसौ, पर (कृपा की दृष्टि करो) चाहे जन्मभर उदासीन रहो कभी न बरसो, पर इस चित्तरूपी चातक को तो तुम्हारी ही आशा है।

(२५) हे चातक ! तुलसीदास के मत से तो तू स्वाति नक्षत्र में बरसा हुआ जल भी न पीना। क्योंकि प्रेम की प्यास का बढ़ते रहना ही अच्छा है घटने से तो प्रेम की प्रतिष्ठा ही घट जायगी।

२६) अपने प्रियतम मेघ का नाम रटते-रटते चातक की जीभ लट गई (दुबली हो गई) और प्यास के मारे सब अंग सूख गये, तुलसीदास जी कहते हैं कि तो भी चातक के प्रेम का रंग तो नित्य नया और सुन्दर ही होता है।

(२७) चातक के चित्त में अपने प्रियतम मेघ का दोष कभी आता ही नहीं। तुलसीदास जी कहते हैं कि इसलिए प्रेम के अथाह समुद्र की कोई माप तौल नहीं हो सकती, उसकी थाह नहीं ली जा जा सकती।

(२८) मेघ कड़क-कड़क कर गरजता हुआ ओले बरसाता है और कठोर बिजली भी गिरा देता है। इतने पर भी प्रेमी पपीहा मेघ को छोड़कर क्या कभी दूसरी ओर देखता है अर्थात् घोर कष्ट सहन कर भी प्रियतम का ही ध्यान करता है।

(२९) तुलसीदास जी कहते हैं कि आत्म सम्मान की रक्षा करना, माँगना और फिर भी प्रियतम से प्रेम का नित्य नवीन होना (बढ़ते जाना ये तीनों बातें तभी शोभा देती हैं जब चातक के मत (सिद्धान्त, नियम) का अनुसरण (पालन) किया जाय।

(३०) तुलसीदास जी कहते हैं कि चातक एक ही (अद्वितीय) माँगने वाला है और बादल भी एक ही दानी है। बादल इतना देता है कि पृथ्वी के सब बरतन (झील, तालाब आदि) भर जाते हैं परन्तु चातक केवल एक घूंट ही पानी लेता है।

(३१) पपीहा और मेघ के प्रेम का परिचय प्रत्यक्ष ही नये ही ढंग का है याचक (मंगता) तो संसार भर का अहसानमंद होता है, पर इस प्रेमी पपीहे ने दानी मेघ को अपना ऋणी बना डाला है।

(३२) पपीहा न तो मुँह से माँगता है, न जल का संग्रह करता है और न सिर झुकाकर लेता है (ऊँचा सर किए ही 'पिउ' 'पिउ' की टेर लगाता है) ऐसे अभिमानी माँगने वाले चातक को मेघ के अतिरिक्त और कौन दे सकता है ? अर्थात् कोई नहीं।

(३३) कोयल, मोर और चकोर मुँह के तो मीठे होते हैं, परन्तु

मन के बड़े मैले होते हैं (बोली तो बड़ी मीठी बोलते हैं पर कीट सर्पादि जीवों को खाते हैं)। परन्तु हे नवल चातक विश्वभर में निर्मल यश तो तेरा ही छाया हुआ है।

(३४) किसी बहेलिए ने चातक को मार दिया, वह पुण्य सलिला गंगा जी में गिर पड़ा, परन्तु गिरते ही उस अनन्य प्रेमी चातक ने चोंच को उलट कर ऊपर उठा लिया। तुलसीदास जी कहते हैं कि चातक के प्रेम रूपी वस्त्र पर मरते समय तक कोई खोंच (कलंक) नहीं लगा।

(३५) तुलसीदास जी कहते हैं कि चातक अपने पुत्र को बारम्बार यही शिक्षा देता है कि पुत्र ! मेरे मरने के पश्चात् प्यारे मेघकी धारा को छोड़ कर अन्य किसी जल से मेरा तर्पण मत करना।

(३६) गर्मियों के दिन थे, चातक शरीर से खिन्न था (थका हुआ था), रास्ता चल रहा था, उसका शरीर बहुत गरम हो रहा था। कुछ पेड़ देखकर उसकी छाया में वह विश्राम करने गया परन्तु अनन्य प्रेमी चातक को मन की यह बात अच्छी नहीं लगी क्योंकि वे वृक्ष स्वाति नक्षत्र के जल से सींचे हुए न होकर अन्य ही जल से सींचे हुए थे।

(३७) जीते जी तो चातक ने प्रियतम मेघ को छोड़ कर दूसरे के सम्मुख गर्दन नहीं झुकाई (याचना नहीं की) और मरते समय भी गंगा जल में अर्ध जली तक न मांगी (मुक्ति का भी निरादर कर दिया)।

विनय-पत्रिका

(१) गाइए गनपति.................मानस मोरे।

शब्दार्थ- नन्दन=प्रसन्न करने वाले। सदन=घर। गजबन्दन= हाथी के मुख वाले। मोदक=लड्डू। मुद=प्रसन्न। वारिधि= समुद्र। मानस=मनरूपी मानसरोवर। सिद्धि के आठ भेद हैं: अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व।

प्रसंग प्रस्तुत पद गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'विनय-पत्रिका' से उद्धृत किया गया है। आरम्भ में गणेशजी की स्तुति करते हुए तुलसीदास जी कहते हैं -

सरलार्थ -समस्त संसार के वन्दनीय, शिव के गणों के स्वामी श्री गणेशजी का गुणगान करो। वह कल्याणकारी शिव और पार्वती के पुत्र हैं। वह सदा अपने माता पिता को प्रसन्न रखते हैं। बड़ी-बड़ी सिद्धियों के वह घर हैं। उनका मुख हाथी के समान है। वह विघ्न-बाधाओं को नष्ट करने वाले है। वह कृपा के समुद्र, सुन्दर तथा सर्व गुण सम्पन्न हैं। उन्हे लड्डू बहुत प्रिय है वह आनन्द और कल्याण के देने वाले हैं और विद्या के समुद्र तथा बुद्धि को चाहे जैसा बना सकते हैं। ऐसे महामंगलकारी श्रीगणेश जी से मैं तुलसीदास. हाथ जोड़कर केवल यही वर माँगता हूं कि श्री सीताराम जी सदा मेरे मनो मन्दिर में निवास करें।

(२) बावरो रावरो·· ··········· मातु मुसुकानी।

शब्दार्थ -बावरो=पागल। रावरो=आपका। नाह=पति। भवानी=पार्वती जी। भानी=टूटना। सिहानी=ललचाती है। नाक =स्वर्ग, इन्द्र। संवारत=सेवा करता है। आयों नकवानी=नाको दम आ गया।

प्रसंग शिवजी की असीम उदारता को देखकर ब्रह्माजी भविष्य के लिये चिंतित होकर पार्वती जी को समझाते हैं :

सरलार्थ हे भवानी! आपका पति पागल है। जब देखो तब वह दान देते ही रहते हैं। वह ऐसों को भी दान दे देते है, जिन्होंने कभी, किसी जन्म में, किसी को एक कौड़ी भी नहीं दी। ऐसा करने से वेद की मर्यादा टूटती जा रही है, क्योंकि वेदानुसार वही दान पाने का अधिकारी है जिसने कभी, किसी को, कुछ दिया हो। आप तो बड़ी चतुर हैं तनिक अपने घर का भला तो देखो! शिव की दई सम्पत्ति देख-देख कर मन ही मन प्रसन्न होती है कि शीघ्र ही ये धन रहित हो जावेगे। जिनके भाग्य में मैंने सुख का भाग्य भी नहीं

लिखा था वे आज शिवजी के अनुग्रह से इतनी अधिक संख्या में स्वर्ग में आ रहे हैं कि उनके लिये वहाँ स्थान सजाते सँवारते मेरी नाक में दम आ गया है। दुखियों के दुख और दीनता भी दुखी हो रही है। याचकता व्याकुल हो तड़प रही है, क्योंकि अब इन बेचारों को रहने को कहीं स्थान नहीं रहा। यह खजाने का अधिकार आप किसी दूसरे के सुपुर्द कर दीजिये, मुझे नहीं चाहिये। इससे तो मुझे भीख अच्छी लगती है। प्रेम, प्रशंसा और व्यंग-भरा ब्रह्मा जी की सुन्दर स्तुति सुनकर महादेव जी मन ही मन प्रसन्न हुए और जग जननी पार्वती जी भी मुसकराने लगीं।

(२) सुनु मन मूढ़........ ....कर चेरो।

शब्दार्थ सूढ़=मूर्ख। लह्यो=प्राप्त किया। बिछुरे=अलग होने पर। स्रमित=थके हुए। रिपु बड़ेरो=बड़ा शत्रु। पुनीत= पवित्र। सुरसरिता=गंगा जी। तिहुँपु=तीनों लोक। घनेरो=बहुत। तजे=छोड़ना। अजहूँ=अब भी। केरो=का। विपति=कष्ट। स्रुति=वेद। (शु०- श्रुति) निवेरो=निवारण किया।

सरलार्थ तुलसीदास जी अपने मन को समझाते हुए कहते हैं हे मूर्ख मन! मेरी शिक्षा सुन, भगवान के चरणों से विमुख होकर किसी को सुख नहीं मिला। हे दुष्ट! अभी सवेरा ही है, समय है, इस बात को खूब समझले अर्थात् अभी कुछ बिगड़ा नहीं है अब भी भगवान की शरण में चला जा। जबसे चन्द्रमा भगवन के मन से तथा सूर्य उनके नेत्रों से अलग हुए, तब से वे कठिन दुख भोग रहे है। रात-दिन आकाश में थके हुए चक्कर लगाते हैं, वहाँ भी उनका शत्रु राहु पीछा किये रहता है। यद्यपि गंगा जी देवताओं की नदी कही जाती है। बड़ी ही पवित्र है और उनकी कीर्ति तीनों लोकों मे छा रही है तथापि भगवान के चरणों से अलग होने पर आज तक उनका बहना बंद नहीं हुआ। वेदों ने यह संदेह दूर कर दिया है कि बिना राम-भजन किये विपत्तियों का नाश नहीं हो सकता। तुलसी दास जी कहते हैं कि हे मन! इसलिए अब भी सब आशा छोड़कर

श्री राम का अनन्य सेवक होजा।

(४) अबलों नसानी .... कमल बसै हों।

शब्दार्थ लौं=तक। नसानी=बीत गई, करनी बिगड़ गई। भव=संसार। निसासिरी=रात बीत गई। डसै हों=बिछौने न बिछाऊँगा, विषयों में न पड़ूंगा। चारु=सुन्दर। उरकरते=हृदय रूपी हाथ से। खसै हों=गिराऊँगा सुचि=पवित्र=(शु० शुचि)। पन=प्रण।

सरलार्थ अब तक (इस आयु तक) तो मेरी करनी बिगड़ चुकी पर अब से न बिगाड़ूंगा। रघुनाथ जी की कृपा से संसार रूपी रात्रि बीत चुकी है अर्थात् मोह माया दूर हो गई है, अब जागने पर (विरक्ति उत्पन्न होने पर) फिर कभी बिछौने न बिछाऊँगा (मोह-भ्रम में न फसूँगा) मुझे अनायास ही राम-नाम रूपी सुन्दर चिन्तामणि प्राप्त हो गई है, उसे अब हृदय रूपी हाथ से कभी नहीं गिराऊँगा। रघुनाथ जी का जो श्याम सुन्दर पवित्र रूप है, उसकी कसौटी बनाकर उस पर अपने चित्त रूपी सोने को कसूँगा। अर्थात् यह देखूँगा कि भगवान के ध्यान पर मेरा मन कहाँ-कहाँ ठीक उतरता है। खरा है या खोटा है। जब तक मन का दास रहा तब तक इन इन्द्रियों ने मेरा खूब उपहास किया, पर अब मन तथा इन्द्रियों को अपने वश में करके अपनी दिल्लगी न कराऊँगा। मैं तुलसीदास अपने मन को रघुनाथ जी के चरणों में इस प्रकार लगा दूँगा जैसे भौंरा इधर-उधर दूसरे फूलों पर न जाकर प्रण पूर्वक अपने को कमल कोश में बसा लेता है। भाव यह है कि इस मन को सब ओर से मोड़ कर केवल श्री रघुनाथ जी के ही चरणों का सेवक बनाऊँगा।

जाके प्रिय......... ....मतो हमारो।

शब्दार्थ गुरु=शुक्राचार्य। कन्त=पति। व्रज-बनितनि=व्रज की स्त्रियों ने, गोपियो ने। मतो=मत,सिद्धान्त।

सरलार्थ जिसे श्री राम-जानकी प्यारे नहीं, उसे करोड़ों शत्रुओं के समान छोड़ देना चाहिए, चाहे वह अपना अत्यन्त ही प्रिय

क्यों न हो। उदाहरण के लिये प्रह्लाद ने अपने पिता (हिरण्य कश्यप) को, विभीषण ने अपने भाई (रावण) को, भरत जी ने अपनी माता (कैकेयी) को, राजा बलि ने अपने गुरु (शुक्राचार्य) को और व्रज गोपियो ने अपने-अपने पति को (उन्हे भगवत् प्राप्ति में बाधक समझकर) त्याग दिया और ये सब (स्वजन-त्यागी भी बुरे नहीं वरन्) आनंद और कल्याण के करने वाले माने जाते हैं। जहाँ तक मित्र और भली-भाँति माननीय जन हों उन सबको श्री रघुनाथ जी के ही सम्बन्ध और प्रेम से मानना ठीक है। भाव यह है कि यदि वे सब भगवत् दर्शन और हरि प्रेम में सहायक हैं तो उन्हें मानना और पूजना चाहिये नहीं तो नहीं। जिस काजल के लगाने से आँख ही फूट जाय, वह काजल ही किस काम का। बस अब अधिक और क्या कहूं। तुलसीदास जी कहते हैं कि जिसके कारण श्री रामचन्द्र जी के चरणों से प्रेम हो, वही सब प्रकार से परम-हितकारी, पूजनीय, और प्राणों से भी अधिक प्यारा है। बस यही हमारा सिद्धान्त है।

(६) मन पछिहैतै ·· ·· ··· · ···बहुधीते।

शब्दार्थ हीते=हृदय से। रीते=खाली हाथ। स्वारथ रत= स्वार्थ में लगे हुए। तजेंगे=छोड़ेंगे। पामर=नीच। दुरासा= बुरी आशा। बहु=अधिक।

सरलार्थ अरे मन! समय बीत जाने पर तू पछतायेगा। इस लिये कठिनता से प्राप्त होने वाले शरीर को पाकर भगवान के चरण-कमलों का कर्म, वचन, और हृदय से भजन कर। सहस्रबाहु और रावण-जैसे महाप्रतापी राजा भी काल (मृत्यु) से नहीं बच पाये। जिन्होंने 'हमारा-हमारा' कहके धन और धाम (घर) माल-संभाल कर रखे थे वे भी मरते समय यहाँ से खाली हाथ चले गये। पुत्र, स्त्री आदि को मतलब का साथी समझकर, इन सबसे प्रेम मत बढ़ा। अरे नीच जब ये सब अन्त समय तुम्हें छोड़ ही देंगे तो तू इन्हें अभी से क्यों नहीं छोड़ देता। अरे मूर्ख! अज्ञान रूपी नींद से जाग, अपने स्वामी (श्री रघुनाथ जी) से प्रेम कर और हृदय से सांसारिक

आशाएँ त्याग दे, विषय-वासनाओं को तिलांजलि दे दे। तुलसीदास जी कहते हैं क्योंकि काम रूपी अग्नि बहुत-सा विषय रूपी घी डालने से कहीं बुझती है अर्थात् ऐसा करने से तो वह और भी बढ़ेगी।

श्रीधर पाठक

जीवन-परिचय पण्डित श्रीधर पाठक का जन्म माघ कृष्ण चतुर्दशी सं० १६१६ ता० ११ जनवरी सन् १८६० को आगरा प्रान्त के जोधरी नामक ग्राम में हुआ था। जाति के आप सारस्वत ब्राह्मण थे। पाठक जी की शिक्षा संस्कृत से आरम्भ हुई थी और पीछे अंग्रेजी का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। पाठक जी अत्यन्त सरल, निष्कपट, न्यायप्रिय एवं अध्यवसायी व्यक्ति थे। आपका स्वर्गवास सं० १६८६ में हुआ।

भाषा-शैली पाठक जी ने ब्रज एवं खड़ी बोली दोनों में सफलता पूर्वक रचना की है। पहले आप केवल ब्रज भाषा में ही काव्य-रचना करते थे। परन्तु खड़ी बोली का प्रचार बढ़ जाने पर आपने उसमें भी सरस एवं सुन्दर रचनाये करना आरम्भ कर दिया। यही कारण है कि आप खड़ी बोली के प्रथम कवि माने जाते हैं। वह भाषा को मधुर एवं ललित भावों से पूर्ण बनाना चाहते थे। इसी कारण खड़ी बोली में उन्होंने ब्रज-भाषा का भी प्रयोग किया है। अंग्रेजी एवं संस्कृत का उनका गहन अध्ययन था। इसलिये शब्दों के प्रयोग करने में आप बहुत सावधानी रखते थे। शब्दों के अनुचित प्रयोग को देख कर उन्हें बहुत कष्ट होता था। उन्होंने कहा था —"शब्दों की भी आत्मा होती है। जो यह नहीं जानता वह उनका दुष्ट प्रयोग करके उन्हे कलंकित कर देता है।" उनकी भाषा मधुर एवं उसमें भावों की मार्मिक व्यंजना शक्ति थी। उनकी ब्रजभाषा की कविताओं में कोमल कान्त पदावली और भाषा सौष्ठव दोनों का अत्यन्त सुन्दर सामंजस्य है।

पाठक जी प्रकृति के बड़े प्रेमी थे। अपने समकालीन कवियों में प्रकृति-वर्णन पाठक जी ने सबसे अधिक किया है। इसीसे हिन्दी

प्रेमियो में वे प्रकृति के उपासक कहे जाते थे। परन्तु प्रकृति के वे वहीं तक उपासक थे जहाँ तक वह मानव समाज को सुखदायक एवं आनंद प्रद थी अथवा जो भव्य एवं सुन्दर थी। आपने प्रकृति का वर्णन आलम्बन एवं उद्दीपन दोनो ही रूपों में किया है। 'उनके प्राकृतिक वर्णनो में तन्मयता और विशेष आकर्षण है। उन्हे पढ़ने से पाठक की आत्मा को एक विशेष प्रकार के उल्लास का अनुभव होता है।

उनकी अपनी निजी शैली और उस पर उनका पूर्ण अधिकार था। उन्होंने नवीन-नवीन छन्दों की रचना भी की है तथा प्राचीन छन्दो में भी सुन्दर एवं मधुर काव्य-रचना की है जैसे रोला, बरवै लावनी, छप्पय तथा सवैया आदि। अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग है। वे समाज सुधार के आकांक्षी थे विधवा, शिक्षा आदि पर भी उन्होंने कवितायें लिखी। इसके साथ ही साथ देश प्रेम से ओत-प्रोत कवितायें भी आपने लिखी है। उनकी शली सरल्य एवं सरस है।

रचनाएँ पाठक जी की रचनाओं को दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है (१) मौलिक (२) अनूदित।

मौलिक-ग्रन्थ -आराध्य शोकाञ्जलि, श्री गोखले प्रशस्ति, श्री गोखले गुणाष्टक, काश्मीर-सुषमा, मनो-विनोद, देहरादून, गोपिका-गीत, भारत-गीत जगत सचाई सार और तिलस्माती मुन्दरी।

अनूदित-काव्य-ग्रन्थ- कालिदास के ऋतु संहार का अनुवाद ब्रजभाषा मे तीन भागो में; गोल्डस्मिथ के 'हर्मिट' 'ट्रेवलर' और 'डेजर्टेविलेज' काव्यों का क्रमशः 'एकान्तवासी योगी,' 'श्रांत पथिक' और ऊजड़ ग्राम' नाम से हिन्दी-अनुवाद किया है 'ऊजड़ ग्राम' ब्रज भाषा मे है और शेष दो खडी बोली में है। आपके अनुवादों मे मौलिकता का सा आनंद आता है। अनुवाद बहुत ही सफल है।

काश्मीर-सुषमा

प्रकृति यहाँ...................मन वारति।

शब्दार्थ सँवारति=सजाती है। पलटति=बदलती है। विमल=पवित्र। अंबु=पानी। सर=तालाब। मुकुरनि=दर्पणों, शीशा। बिम्ब=परछाईं। निहारति=देखती है। वारति=न्यौछावर करती है

प्रसंग प्रस्तुत पद्यांश खड़ी बोली हिन्दी के प्रथम कवि, एवं प्रकृति उपासक पं० श्रीधर पाठक के प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथ 'काश्मीर-सुषमा' से उद्धृत किया गया है। काश्मीर के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है

सरलार्थ यहां (काश्मीर की सुरम्यस्थली में) अकेले में बैठकर प्रकृति अपने रूप का साज-सँवार करती है थोड़ी-थोड़ी देर बाद अपने रूप को बदल देती है। क्षण भर में ही भिन्न-भिन्न प्रकार की शोभा धारण कर लेती है। पवित्र तथा स्वच्छ जल से भरे हुए तालाब रूपी दर्पणों में अपने मुख की परछाईं को देखती है। और अपने असीमित सौन्दर्य पर अपने आप ही मोहित होकर अपने तन और मन को न्यौछावर कर देती है।

सजति, सजावति······ ············बनि ठनि

शब्दार्थ सरसति=शोभा पाती है। सराहति=प्रशंसा करती है। सुठि=सुन्दर (सुष्ठु)। चित्तरसारी=चित्रशाला। बिहरति=घूमती है, विहार करती है। ललकति=ललचाना। थिरकति=नाचना। विलास=क्रीड़ा, खेल।। बनिठनि=सजकर।

सरलार्थ स्वयं सजती है तथा अपनी शोभा से उस प्रान्त को सजाती है, इस रूप में वह बहुत ही सुन्दर प्रतीत होती है। वह प्रसन्न-चित्त होती है और बहुत ही प्रिय (आकर्षक) दिखाई देती है। और फिर बहुत सुन्दर चित्रशाला (जहाँ सुन्दर-सुन्दर चित्र बनते हैं) के सदृश् पार्वत्य-प्रदेश को पाकर, अपने भाग्य की बहुत अधिक प्रशंसा करती है। यौवन के मद से पूर्ण अनेक प्रकार की क्रीड़ा करती हुई विहार (भ्रमण) करती है। और सुन्दर रूप में सजकर, बनाव श्रृङ्गार करके भिन्न-भिन्न प्रकार की लालसा (इच्छा) करती है। किलकारी भरती है, रोमाँचित होती है तथा नाच-नाच कर

अपनी शोभा को देखती है।

मधुर मंजु………………तरुवर, तृन

शब्दार्थ मंजु=सुन्दर। पुंज=समूह। छटा=शोभा। डसति =काटखाना, वश में कर लेना। गिर=पर्वत। सिखर=चोटी (शिखर)। गगन=आकाश। गह्वर=पहाड़ की गुफा। तरुवर= वृक्ष। तृन=तिनका।

सरलार्थ वन और लतागृहों में मोहक तथा सुन्दर प्राकृतिक शोभा का समूह छिटका पड़ा है। अर्थात् वन और लता बहुत सुन्दर एवं मोहक हैं। यह अपनी बाँकी चितवन से दर्शक के मन को रिझा (खींच) लेती है। अपनी हँसी से उसे खा जाती है अर्थात् वश में कर लेती है और मंद-मंद मुस्कान से पाठक के मन को चुरा लेती है। तालाब, नदी, पहाड़, चोटी, आकाश, गुफायें, वृक्ष तथा बेलें आदि अनेक प्रकार के रूप धारण कर यहीं की शोभा एवं सौन्दर्य को बढ़ाते हैं।

पूरन करिबे…………………चन्द्रहार जनु।

शब्दार्थ कामना=इच्छा। किंकरता=दासता सेवा। मौलि= किरीट, मुकुट। अवलि=पंक्ति। मानों। स्रवत=बहना। सित= श्वेत, सफेद। चन्द्रहार=एक प्रकार की माला या हार। जनु= जानो मानो।

सरलार्थ अपने मन की इच्छा को पूर्ण करने के लिये यह प्रदेश प्रकृति के कमल रूपी चरणों की सेवा कर रहा है। चारों दिशाओं में जो पर्वतों की चोटियाँ हैं वह मानो हीरे और मणियों के बने हुए मुकटों की पंक्तियां हैं और नदी की जो श्वेत (उज्वल) पानी की धारा बह रही है वह मानो चन्द्रहार पिघल कर बह रहा है।

फल-फूलन…………………यों फबि

शब्दार्थ उदित भई=निकली। अवनि-उदर=पृथ्वी के पेट से; खानों से। निधि=खजाना। तुहिन=बर्फ। विपिन=जंगल। छयी= छागई। मंडलाकार=गोलाकार। फबि=सुशोभित होना।

सरलार्थ यहाँ पर वन और वाटिकाओं मे फल और फूलों की मधुर शोभा जो छाई हुई है वह ऐसी प्रतीत होती है कि मानो पृथ्वी के अन्दर से रत्नों का कोई अभूतपूर्व खजाना निकल आया है। बर्फ से ढकी हुई चोटियाँ, नदी, तालाब और बनों की शोभा मिलाकर छाई हुई है और वह इस प्रकार सुशोभित हो रही है।

मानहुँ मनिमय...... ....खौरि लगायी।

शब्दार्थ अलबेली=अनोखी। सेली=योगियों की माला। सैनि=श्रेणी। धौरि=श्वेत। गौरि-गुरू=हिमालय।

सरलार्थ बर्फ से ढकी चोटी ऐसी विदित होती है मानो मणियो से युक्त मुकुटों को अनोखे रूप मे सजाकर ब्रह्मा ने यह बहुमूल्य गोल पगड़ी भारत के सिर पर बाँधी है। आधे चन्द्रमा के समान पर्वतों की चोटियाँ कहीं पर ऐसी सुन्दर लगती हैं मानो हिमालय पर्वत पर सफेद चंदन की एक खौरि (टेढ़ी रेखाओं में लगाया हुआ चदन, जो कि दूज के चन्द्रमा की सी आकृति का होता है) लगा दी हो।

पुनि तिन.........................सुख पूरी।

शब्दार्थ बितस्त=नदी का नाम। राजति=शोभित होती है। भ्राजति=शोभायमान। रूरो=सुन्दर, बहुत बड़ा।

सरलार्थ इन पर्वतो के बीच में बितस्ता नदी एक क्षीण रेखा के समान सुशोभित होती है। ऐसा विदित होता है कि यह नदी नहीं है अपितु रामानंदी तिलक है जो पर्वत के मस्तक पर शोभित है अथवा शैव मतावलम्बियों के चित्र की भाँति यह नदी शोभित है। सजल एवं लहलहाती हरी भरी भूमि पर्वत श्रेणियों से घिरी हुई है। यह स्थल संसार भर मे अद्वितीय एवं सुख से पूर्ण है। इसकी आकृति द्रोणाचल पर्वत के समान सुन्दर है।

बहु बिधि.... ....संदूक बनाई।

शब्दार्थ रच्छन बिधि=रक्षा के हेतु, लिये। नैसर्ग=प्राकृतिक। बिमल=पवित्र, स्वच्छ। बटोरि=इकट्ठा कर। निखिल=

सब, पूरी । निकाई=सुन्दरता ।

यह स्थल भांति-भांति के दिखाई देने वाले और दिखाई न देने वाले (ईश्वरीय) सौन्दर्य एवं निपुणता से भरा पड़ा है । ऐसे अलौकिक सौन्दर्य की रक्षा के हेतु मानो ब्रह्मा ने यह पर्वतों रूपी किलों का निर्माण कर दिया है । अथवा संसार भर की सम्पूर्ण सुन्दरता एवं स्वच्छता को एकत्र कर उसे छिपाने के हेतु यह पर्वतों रूपी मजबूत संदूक ब्रह्मा ने बनाई है ।

कै यह........ . ...सिंगार पिटारी

शब्दार्थ अथवा संसार के बनाने वाले उस बाज़ीगर (ईश्वर) की यह जादू से भरी (अद्भुत एवं आश्चर्य जनक) थैली है; जिसकी खेलते-खेलते उससे गांठ खुल गई है और सम्पूर्ण सुन्दरता इस पर्वत के ऊपर फैल गई । अथवा यह स्थली प्रकृति रूपी महारानी के सुन्दर महलों की अद्भुत फुलवाड़ी है । अथवा श्रृंगारिक वस्तुओं से भरा हुआ यह उस महारानी का खुला रखा हुआ श्रृंगारदान है ।

शरद-वर्णन

शब्दार्थ कांसन=एक प्रकार की लम्बी और श्वेत घास । निसा=रात (निशा) । कुलवानसों=कुटुम्ब से, समूह । बिखान= वृक्ष, पेड़ ।

प्रसंग शरद ऋतु में प्रकृति का अंग-अंग श्वेत वर्ण का हो जाता है तथा फूल और फलों से लद जाता है । प्रकृति में एक अद्भुत सौन्दर्य तथा सम्मोहन दृष्टिगोचर होता है । उसी का यहां बहुत ही सुन्दर वर्णन है ।

सरलार्थ- पृथ्वी का धरातल काँस के समूह से श्वेत दिखाई पड़ता है, रात्रि में अब पावस के से बादल आकाश में नहीं छाये हैं अपितु अब शरद् ऋतु की रात्रि नये, स्वच्छ एवं पूर्ण चन्द्रमा की कलाओं से श्वेत दृष्टिगोचर होती है, वन-वाटिकाओं के किनारे फूलों तथा छ तिवन के वृक्षों से श्वेत वर्ण के दृष्टिगोचर होते हैं और बाग, चमेली की कलियों से श्वेत दिखाई पड़ते है । इस प्रकार हम देखते

हैं कि इस शरद् ऋतु के प्रभाव से सब प्रकृति श्वेतवर्णी हो गई है।

चांदी के पत्रन.........................चौरहे ढौरे।

शब्दार्थ वेग = तेज। बदरा = बादल। छितराने = छितरे, फैले, फटे। अनन्त = आकाश। अम्बु = बादल। तितरै-वितरै = इधर उधर घूमते हैं। चौर = सरगाय की पूँछ के बालों का गुच्छा जो डंडी में बांधकर राजाओं या देव मूर्तियों के ऊपर डुलाया जाता है, झालर (चँवर)।

सरलार्थ चाँदी के पतले पत्र के समान स्वच्छ एवं श्वेत तथा शङ्ख और मृणाल के समान श्वेत एवं सुन्दर हल्के बादल हवा के तेज से फैले हुये आकाश में इधर से उधर चलते फिरते हैं। पानी के घटने के कारण बादल बहुत हल्के हो गये हैं। इसलिये वे एक स्थान पर स्थिर नहीं रहते हैं अपितु वे इधर-उधर बिखर गये हैं। ऐसा विदित होता है मानो आकाश रूपी सुन्दर राजा का यह चवर है जो हिल रहा है।

बतकें निज आनन.........................उपजावति हैं।

शब्दार्थ आनन = चोंच, मुख। तरंगन = लहरें। अवलीन = पंक्तियाँ। कल = सुन्दर। तीर = किनारा। निकाई = सुन्दरता। मरालन = हँसों। तरंगिनि = नदी।

सरलार्थ- बतकें पानी में अपनी चोंच डुबा कर लहरों की पंक्तियाँ हिलाती हैं सुन्दर हस एवं सारस की सुन्दर पंक्तियाँ नदी के पानी के किनारे पर भीड़ मचा रही है अर्थात् बहुत संख्या में एकत्र हैं। लाल कमलों पर छाई हुई धूल उसकी सुन्दरता में चार चाँद लगा देती है और ऐसे वातावरण में हंस की बोली नदी के हृदय में प्रेम उत्पन्न करती है।

काली घटा का ....कैसे भले।

शब्दार्थ तारका = तारे। वृन्द = समूह। धरातल = पृथ्वी। निखरे = साफ। सुथरे = उज्वल। चन्द्रकला = चाँदनी। लसैं = सुशोभित होते हैं। समलङ्कृत = समान रूप से सुशोभित।

सरलार्थ- वर्षा ऋतु में जो काली घटा अपना अभिमान दिखाया करती थी अब उसका घमंड घट गया है और आकाश में अब तारा गण खिल रहे हैं। रात्रि अब उजाली है अर्थात् शुक्ल पक्ष है जिसके कारण सम्पूर्ण दिशायें बहुत ही शोभावाली प्रतीत होती है। पृथ्वी पर फूल और फलों से लदे वृक्ष बहुत ही सुन्दर प्रतीत होते हैं। वन के मार्ग अब तक जो वर्षा के अधिकार के कारण पानी से अथवा घास आदि से पूरित थे अब वे साफ एवं सुन्दर हो गये हैं। पेड़ों के पत्ते स्वच्छ एवं सुन्दर है ऐसा विदित होता है मानो उन्हे चाँदनी से धो डाला हैं। वन का शरद ऋतु है जो कि चाँदनी की चादर ओढ़े हुए है उसके समान सुन्दर और कोई भला कैसे लग सकता है? अर्थात् कोई नही।

भारत देश

शब्दार्थ—स्वर्गिक=अलौकिक। लोकत्रयी=तीनो लोक। सुललित=सुन्दर। राकेश=पूर्णिमा को चन्द्रमा। निरत=लगी हुई। अमियरस=अमृत। वितान- तम्बू। सुकृत=पुण्य।

प्रसंग - भारतवर्ष महान है। यहाँ की भूमि, नदी, पर्वत, प्रकृति एवं मानव सभी पवित्र एवं महान हैं। यहाँ का आदर्श महान हैं विचार उच्च हैं। वह गौरवमय है। उसी भारत की प्रशंसा करते हुए कवि का हृदय गा उठा है

सरलार्थ (१)- इस महान एवं सुन्दर तथा सर्वप्रिय भारत की सदा जय हो। हमारा देश भारत वर्ष संसार से अनोखा तथा सम्पूर्ण देश शोभायमान है उसकी जय हो। हमारा देश संसार सिरोमणि तथा ईश्वर का प्यारा है। हमारा देश सौभाग्यशाली एवं अच्छा देश है ऐसे सुन्दर एवं सर्वप्रिय भारत की सदैव ही जय हो।

(२) इस संसार का भारतवर्ष अलौकिक शीशफूल के सदृश है और तीनों लोकों के प्रेम की जड़ (कारण) है। अर्थात् सबको समान भाव से प्रेम करता है और सबका हित चाहता है। सुन्दर एवं सर्वप्रिय भारत की जय हो।

(३) पवित्र एवं श्वेत हिमालय की चोटी की जय हो। उस चोटी पर कलोल करने वाली गंगा सदैव ही कल-कल ध्वनि करने में लगी रहती है। तेज के समूह एवं तपस्वी के वेश वाली पहाड़ की इस चोटी को सूर्य की रोशनी चमकाया करती है। ऐसे सुन्दर एवं सर्व प्रिय भारत की जय हो।

४) हमारा भारतवर्ष संसार मे करोड़ों युगों तक जीवित रहे। जीवन में सरलता से प्राप्त अमृत रस का पान करे अर्थात् अमृत जैसे सुन्दर रस के लिये भी युद्ध आदि न करे अपितु शान्ति से जो प्राप्त हो उसका पान करे। पुष्पो.का सुखदाई तम्बू सींकर तैयार करे जिससे आपत्ति काल में अपनी रक्षा कर सके और यह देश सदैव ही स्वतन्त्र रहे। ऐसे सुन्दर एवं सर्व प्रिय भारत की सदैव ही जय हो।

धन-विनय

शब्दार्थ विनय=प्रार्थना। महँ=में। परम सुहावन=बहुत सुन्दर। सलूनों=राखी (रक्षाबन्धन) का त्यौहार। निपट= पूर्ण। उपास=उपवास। सरित=नदी। रजमय=धूल भरा। मलीन=मैला। अवनि=पृथ्वी। उसम=गर्मी। (ऊष्मा) प्रचंड= तेज। दहिरह्यो=जला रहा है। उत्कट=तेज। अतिवी=अतबि, बहुत अधिक।

प्रसंग यहाँ पर कवि वर्षा के अभाव का वर्णन कर रहा है। उसने वर्षा के अभाव में होने वाले परिणामों का बहुत ही प्रभाव-पूर्ण एवं सच्चा वर्णन किया है।

भावार्थ हे बादल! भारतवर्ष को छोड़कर कौन से देशों में छाये हुये हो? यहाँ तो सम्पूर्ण वर्षा ऋतु बीत गई पर अभी तक आपके दर्शन नहीं हुये हैं। आप कहाँ भूले हुए घूम रहे हैं? यह आपका कौन-सा नया नियम है? श्रावण का महीना बहुत ही सुन्दर होता है तथा उसकी शोभा बहुत ही पवित्र दिखाई देती है। वह भी तुम्हारे न आने के कारण भयानक प्रतीत होता है। रक्षाबन्धन

भी सूना चला गया कोई राग-रंग एवं उल्लास नहीं था तुम्हारे बिना बिलकुल उपवास रखना पड़ रहा है। भूखों मरना पड़ रहा है दिन-प्रतिदिन दुख बढ़ता ही जा रहा है और चारों दिशाओं में भय ही भय दिखाई देता है।

तालाब एवं नदी सबका पानी सूख गया है। आकाश धूल भरा रहने के कारण मैला रहता है। गर्मी से ऊब कर पृथ्वी व्याकुल हो गई है। पानी के अभाव में पशु एवं पक्षी सभी प्यासे मर रहे हैं। हे बादल! तुमने सब राग-रंग कहाँ सजा रखे हैं और घोर गर्जना कहाँ कर रहे हो? हे बादल! अपनी उस सेना सहित कहाँ छाये हुये हो, जिसे देखकर मोर नाचने लगते हैं। बहुत ही भयङ्कर गर्मी पड़ रही है और तेज ऊष्मा पड़ रही है। बहुत ही प्रचंड एवं तेज सूर्य दसों दिशाओं को बहुत अधिक जला रहा है।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

जीवन-परिचय महाकवि पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का जन्म कृष्ण ३ सं० १६२२ को निजामाबाद, जिला आजमगढ़ में हुआ था। उनके पूर्वज बदाऊँ निवासी सनाढ्य ब्राह्मण थे। आपका प्रारम्भिक जीवन आर्थिक सङ्कटों में बीता था। आपका जीवन भारतीय जीवन का आदर्श था। उनके भाई गुरुसेवकसिंह ने इङ्गलैण्ड जाकर पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव में सिक्ख-धर्म का बाना त्याग दिया, पर आपने अपना पण्डिताऊ रहन-सहन नहीं छोड़ा। वह बड़े अध्ययनशील व्यक्ति थे। सरकारी कार्यों से अवकाश मिलने पर वह साहित्य साधना में व्यस्त रहते थे। हिन्दी, उर्दू, संस्कृत और फारसी साहित्य का उन्हें अच्छा ज्ञान था। इन भाषाओं के अतिरिक्त वह अँगरेजी, बंगला और गुरुमुखी के भी ज्ञाता थे। संस्कृत साहित्य का मन्थन जैसा उन्होंने किया था। वैसा उनके समकालीन कवियों में नहीं देखा जाता। आपका स्वर्गवास २००४ में हुआ।

भाषा-शैली --जैसाकि हमने अभी कहा 'हरिऔध' जी कई भाषाओं के ज्ञाता थे। वास्तव में उनका भाषा पर बड़ा अधिकार था; वह भाषा के धनी थे। भाषा उनकी भावानुगामिनी है। 'हरिऔधजी' सरल से सरल भाषा लिख सकते थे और कठिन से कठिन। तत्सम शब्दों का भी प्रयोग बड़े अधिकार पूर्वक कर सकते थे, वह ग्रामीण भाषा भी लिख सकते थे और शुद्ध साहित्यिक हिन्दी भी। उनकी भाषा को चार रूपों में बाँट सकते हैं (१) उर्दू शैली से प्रभावित हिन्दी (२) ब्रज भाषा (३) सरल साहित्यिक हिन्दी और (४) तत्सम शब्द प्रधान हिन्दी। संस्कृत-गर्भित भाषा के वह बहुत बड़े पक्षपाती थे। उनकी इस प्रवृत्ति के दर्शन हमें 'प्रियप्रवास' में पूर्ण रूप से दिखाई देते हैं। एक उदाहरण देखिये:

रूपोद्यान प्रफुल्ल प्राय-कलिका राकेन्दु बिम्बानना।
तन्वंगी कल हासिनी, सुरसिका क्रीड़ा-कला पुत्तली।

'हरिऔध' जी की शैली सबसे भिन्न अपनी निजी शैली थी। आपने गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों मे साहित्य सृजन किया है। गद्य की शैली कुछ पंडिताऊपन लिए हुए अलंकृत शैली है। "अनुप्रास की छटा, लम्बे-लम्बे समासयुक्त शब्द, मुहावरों की भरमार, संस्कृत तत्सम शब्दों का बाहुल्य, कहीं-कहीं लम्बे वाक्य उनकी गद्य शैली में अधिक पाये जाते हैं। उनकी रचनाओं में प्रसाद, माधुर्य और ओज सभी गुण मिलते हैं। उनकी शैली मे प्रवाह और चमत्कार भी है।"

हरिऔध जी की शैली रीतिकाल की ओर झुकी है तो दूसरी ओर वह आधुनिकतम् रूप में हमारे सम्मुख आते हैं। एक ओर उनकी शैली में मुहावरों की भरमार है तो दूसरी ओर संस्कृत काव्य पद्धति का सुन्दर रूप उनके काव्य मे दिखाई देता है। 'प्रियप्रवास' में संस्कृत काव्य की शैली मे अतुकान्त छन्दों का सफल प्रयोग है। 'प्रियप्रवास' आपका प्रसिद्ध महाकाव्य है। इस करुण रस प्रधान महाकाव्य में कृष्ण को विलासी रूप में चित्रित न करके (जैसाकि उनके पूर्व के कवियों ने किया था।) एक सच्चे देश सेवी, एवं लोकनायक के रूप

मे चित्रित किया है।

रचनाएँ हरिऔधजी ने जहाँ मौलिक रचनायेंकी हैं वहाँ अनुवाद भी किये हैं। उन्होंने गद्य और पद्य दोनों में अनुवाद किये हैं। वेनिस का बाँका, रिपनत्रिकल तथा नीति निबन्ध गद्यानुवाद हैं। 'उपदेश कुसुम' तथा 'विनोद वाटिका' पद्यानुवाद है। आपकी मौलिक रचनायें चार प्रकार की हैं :

(१) महाकाव्य : प्रिय प्रवास और वैदेही-वनवास।

(२) स्फुट काव्य-संग्रह : चोखे चौपदे, चुभते चौपदे, बोलचाल रस कलस पद्य प्रसून, कल्पलता, पारिजात, ऋतु-मुकुर-काव्यो द्यवन, प्रेम पुष्पोहार, प्रेम-प्रपंच, प्रेमाम्बु-प्रस्रवण, प्रेमाम्बु-प्रवाह और प्रेमाम्बु वारिध।

(३) उपन्यास :—ठेठहिन्दी का ठाठ और अधखिला फूल।

(४) आलोचना : हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, कबीर वचनावली की आलोचनादि।

ब्रज की संध्या

(१) शब्दार्थ दिवस=दिन। अवसान=अन्त। लोहित=लाल, वर्ण का। कमलिनी=कुल-वल्लभ=सूर्य। प्रभा=प्रकाश। तरुशिखा =पेड़ की चोटी। राजती=सुशोभित, विराजमान।

प्रसंग प्रस्तुत पद्यांश श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वारा रजित प्रसिद्ध महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' के आरम्भ से उद्धृत किया गया है। यह उस समय का वर्णन है जब कंस का बुलावा आने पर कृष्ण ब्रज को छोड़ रहे हैं।

सरलार्थ दिन के समाप्त होने का समय निकट था इसीलिये आकाश अब कुछ-कुछ लाल वर्ण का हो गया था। कमलिनियो के स्वामी अर्थात् सूर्य का प्रकाश वृक्षो की चोटियो पर विराजमान हो गया था।

(२) शब्दार्थ विपिन=जंगल, वन। विहंगम-वृन्द=पक्षियों के के समूह। कल=सुन्दर। निनाद=शब्द, बोली। विवर्धित हुआ=

बढ़ गया। ध्वनिमयी = शब्द करती हुई। विविधा = अनेक प्रकार की।

सरलार्थ संध्या के समय वन में पक्षियों के समूह की मधुर शब्दावली (चह चहाहट) और बढ़ गई। आकाश के बीच में अनेक प्रकार के पक्षियों की पंक्ति (झुंड) शब्द करती हुई उड़ रही थी।

(३) शब्दार्थ अनुरंजित = रंग गई। पादप-पुञ्ज = वृक्ष-समूह। विनसज्जित = नहाई हुई, ढक गई।

सरलार्थ आकाश की लालिमा और बढ़ गई अब दसों दिशायें लाल रँग मे रंग गई। सभी वृक्षों के समूह का हरा रंग अब लाल रंग में नहाया हुआ सा प्रतीत होने लगा।

(४) पुलिन = किनारा। सरि = सरोवर = नदी, तालाब। रमणीय सुन्दर।

सरलार्थ आकाश मे फैली हुई यह लालिमा अब किनारों पर भी प्रतिबिम्बित होने लगी। नदी और तालाब के जल में पड़ती हुई यह लालिमा बहुत ही सुन्दर प्रतीत होती थी।

(५) शब्दार्थ अचल = पर्वत। शिखर = चोटी। पादप = वृक्ष। तरणि = सूर्य। तिरहित = लुप्त, डूब चला। शनैः शनैः = धीरे-धीरे।

सरलार्थ सूर्य की वे किरणे जो अभी कुछ समय पूर्व वृक्षों की चोटियों पर विहार कर रहीं थी अब पर्वत की चोटियों पर पहुँच गई। इस प्रकार सूर्य का गोला आकाश में धीरे-धीरे डूब गया अर्थात् सूर्यास्त हो गया।

(६) शब्दार्थ कलित-कानन = सुन्दर वन। कीलि = क्रीणा, खेल। निकुञ्ज = लता मंडप। तरणिजा = यमुना (तरणि + जा = सूर्य की पुत्री) राजित = शोभित, स्थित।

सरलार्थ इसी समय अर्थात् सूर्यास्त होते ही यमुना के किनारे स्थित एक लता मंडप से मुरली बजने लगी। मुरली की ध्वनि से पहाड़ की गुफाएँ और वन के सुन्दर लता गृह सब प्रति ध्वनित हो उठे, उसकी आवाज से गूँज उठे। यह मुरली श्री कृष्ण ने ग्वालों को

घर जाने की सूचनार्थ बजाई थी।

(७) शब्दार्थ--क्वणित=बज उठे। विषाण=सिंगो, नरसिंगा नामक बाजा। श्रृंग=सींग का बाजा। रणित=बजे। समाहित=एकत्रित। प्रान्तरस्थ भाग में=वन के दूसरे भाग में। धावित=दौड़ती हुई।

सरलार्थ- मुरली बजने के साथ ही सींग के अनेक प्रकार के बाजे भी बज उठे। फिर इसके बाद ही वन के दूसरे भाग से दौड़कर आती हुई इकट्ठी गऊओं का स्वर सुनाई पड़ा।

(८)--शब्दार्थ -निमिष=क्षण भर में। वीथिका=मार्ग। धवल=श्वेत। वत्स=गाय का बछड़े। विलसता=सुशोभित होता।

सरलार्थ क्षण भर में जंगल का मार्ग अनेक प्रकार की गायों से सुशोभित हो गया अर्थात् रास्ता गायों से भर गया। गऊओं के साथ श्वेत वर्ण के, धूल से भरे बछड़ों का समूह भी बहुत ही सुन्दर प्रतीत हो रहा था।

(९) शब्दार्थ समवेत=इकट्ठे, एकत्र। व्रज भूषण=ब्रज की शोभा, कृष्ण। अलंकृत=सजे हुए।

सरलार्थ- धीरे-धीरे गायों के सहित, जब सब ग्वाले अपनी मण्डली सहित एक स्थान पर खड़े हुए तब वे व्रज भूषण श्री कृष्ण को साथ लेकर, सजे हुए, गोकुल गाँव की ओर चल दिए।

(१०) शब्दार्थ--विशद=स्वच्छ, सुन्दर। वर=सुन्दर। स्रोत=धारा।

सरलार्थ गायों के पैरों से उड़ी हुई धूल आकाश में छा गई और दसों दिशाएँ अनेक प्रकार के शब्दों से गूँजने लगीं। उधर सुन्दर गोकुल के प्रत्येक घर में आनन्द की सुन्दर धारा बहने लगी। अर्थात् भगवान कृष्ण के ग्वालों के साथ आगम की सूचना पाकर सब लोग प्रसन्न चित्त हो गये।

यशोदा-विलाप

(१) दुखजलनिधि=दुख का समुद्र। निमग्ना=डूबी हुई।

प्रसंग—कंस के निमन्त्रण पर कृष्ण और बलराम को लेकर नंद बाबा मथुरा गए। चलते समय यशोदा ने कहा था कि दोनों पुत्रों को सकुशल अपने साथ लौटा लाना। फिर नंद को अकेला लौटा देख कर यशोदा अपने पुत्र कृष्ण के लिए अत्यन्त दुखित होकर विलाप करती है।

सरलार्थ- नंद जी को संबोधन करती हुई यशोदा कहने लगी हे प्रियतम ! मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय वह श्री कृष्ण कहाँ है ? मैं दुख में डूबी हुई हूँ, मुझको सहारा देकर उसमे से निकाल सकने वाला वह श्री कृष्ण कहाँ है ? जिसका मुँह देखकर मे आजतक जीवित रह सकी हूं वह मेरे प्राण और आँखों की पुतली के समान प्रिय श्री कृष्ण कहाँ है ?

(२) शब्दार्थ सोहती=सुशोभित होती। मंजुमाला=सुन्दर माला। नव नलिनी=नई खिली कमलनी।

सरलार्थ—क्षण-क्षण पश्चात् जिसके आने वाले मार्ग को मै देखती थी और जिसकी चिन्ता में रात-दिन व्यतीत कर देती थी; तथा जिस के गले में सुन्दर माला सुशोभित रहती थी, वह नई खिली कमलनी के से नेत्रों वाला श्री कृष्ण कहाँ है।

(३) शब्दार्थ विजित जरा=वृद्धावस्था से पराजित, बुढ़ापा। सजल जलद—पानी से भरे बादल। कान्ति=शोभा।

सरलार्थ—बुढ़ापे से लाचार इस अवस्था मे मुझे जो सहारा देने वाला है; जो एक अनोखा रत्न है तथा जो मेरा सब कुछ है; मुझ निधन का जो एक मात्र धन है; जो मेरी आँखों का प्रकाश है, वह जल भरे बादलों की सी शोभा वाला (श्यामाभ) श्री कृष्ण कहाँ है।

(४) शब्दार्थ—अंक=गोद। कुअंक=दुर्भाग्य। कीलनी=बुरे प्रभाव को नष्ट करती। किशलय=नया निकला हुआ कोमल पत्ता।

सरलार्थ हे स्वामी ! जिसे प्रति दिन अपनी गोद मे लेकर, ब्रह्मा के द्वारा लिखे दुर्भाग्य के बुरे प्रभाव को नष्ट करती रहती थी; जिसको अनोखा पीला वस्त्र बहुत अधिक प्रिय है वह नये निकले हुए

पत्ते के समान कोमल और श्यामल शरीर वाला श्रीकृष्ण कहाँ है ?

(५) शब्दार्थ वर-वदन=सुन्दर मुख । अंभोज=कमल । करतल गत होत=हाथ में आ जाता । मृदुल=मधुर शब्द । मानसों=हृदयों का ।

सरलार्थ जिसके खिले हुए कमल के समान सुन्दर मुख को देख कर आकाश का चन्द्रमा भी हाथ में आ जाता था । श्रीकृष्ण का मुख चन्द्रमा का समान ही उज्ज्वल था) और जिसके कोमल तथा मधुर शब्दों को सुनकर सूखी नसों में रक्त प्रवाहित होने लगता है वह लोगों के हृदयों को मधुरता से भर देने वाला श्रीकृष्ण कहाँ है ?

(६) रसमय=प्रेम भरे । गेह=घर (गृह) । स्वर्ग-मंदाकिनी= स्वर्गलोक की गंगा; आकाश गंगा, जिसमें पुराणों के अनुसार जल के स्थान पर अमृत बहता है । सुकृति=पुण्य । सुधा=अमृत ।

सरलार्थ हे स्वामी ! अपनी प्रेम भरी बातों से, जो घर में सदा ही देवलोक की अमृत से भरी गंगा बहादेता था; और जो मेरी पुण्य रूपी पृथ्वी के लिये अमृत के स्रोत के समान था, वह नये बादलो की की सी अमा वाला, अनोखा श्याम वर्ण का श्रीकृष्ण कहाँ है ।

(७) शब्दार्थ जलज=कमल । समुत्फुल्लकारी=पूर्ण रूप से खिला देने वाला अर्थात् सूर्य । यामिनी=रात । विनाशी=नष्ट करने वाला । मोद दाता=आनंद देने वाला । दिन कर शोभी=सूर्य के समान शोभा वाला, । राम-भ्राता=बलराम का भाई श्रीकृष्ण ।

सरलार्थ जो अपने परिवार रूपी कमल को पूर्ण रूप से खिला देने वाला है अर्थात् परिवार के लोगों को परम सुख देने वाला है; जो मेरी घोर निराश रूपी रात को नष्ट करने वाला है अर्थात् जिसे देखकर मेरी सभी निराशायें दूर हो जाती हैं; जो व्रज के निवासी लोगो रूपी पक्षियों के समूह को आनन्द प्रदान करने वाला है, वह सूर्य के समान शोभा देने वाला बलराम का भाई श्रीकृष्ण कहाँ है

(८) शब्दार्थ सौम्यता=सरलता, सुन्दरता, शान्ति । सौजन्य= सज्जनता । शील=आचरण, स्वभाव । समुद्विग्न=बहुत व्याकुल

या बेचैन। सरसी = छोटा तालाब या बावड़ी।

सरलार्थ— जिसके मुँह सदैव शान्ति विराजमान रहती है; जिसकी सज्जनता एवं सुन्दर प्रकृति अद्वितीय है; जो दूसरे के कष्टों को देख कर बेचैन हो उठता है, जो महान कार्यों की पूर्ति करता था वह कृष्ण कहाँ है?

(६) शब्दार्थ निविड़तम = घोर अंधकार। विधु = चन्द्रमा। कामिनी = स्त्री। चितेरा = चित्रकार, चित्र बनाने वाला।

सरलार्थ - हमारे घर में तो पहले ही निराशारूपी घोर अंधकार भरा था अब वह कृष्ण जिसने कि जन्म ले कर उसे दूर कर दिया था किस चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख की शोभा को देख कर भाग गया। और जिसके कारण ही मेरा स्त्री-जन्म आनन्द दायक है वह सुन्दर-सुन्दर चित्रों का बनाने वाला चित्रकार श्रीकृष्ण कहाँ हैं?

(१०) शब्दार्थ यजन = यज्ञ। निर्जर = देवता। (जरा-बुढ़ापे रहित) एक सुअन = एक पुत्र।

सरलार्थ अनेक कष्ट एवं विपत्तियों को सहन करने, बहुत से यज्ञ तथा देवताओं की पूजा करने के पश्चात् किसी उपाय से, जो मुझे एक पुत्र प्राप्त हुआ है; हे प्रियतम! वह मेरा प्यारा श्रीकृष्ण कहाँ है?

(११) शब्दार्थ शुक = तोता। पिक = कोयल। बहु विधि कण्ठों = अनेक प्रकार के शब्द या बोलियाँ।

सरलार्थ जो तोतों के समान घर को शब्दों से गुंजित कर देता था; जो जंगलों में पक्षियों के समान मधुर शब्द करता था; और वाटिका को कोयल के समान मीठी बोली से भर देता था वह अनेक प्रकार की बोली बोलने वाला श्री कृष्ण कहाँ है?

(१२) शब्दार्थ — मृगादि = हिरन आदि। महादिव्य = बहुत सुन्दर। पुलकित = प्रसन्न, रोमाञ्चित। नादकारी = बजाने वाला।

सरलार्थ- जिसके गाने को सुनकर हिरन आदि पशु-पक्षी मस्त हो जाते थे; वृक्षों की हरियाली बहुत सुन्दर प्रतीत होने लगती थी

और फूलों से सुसज्जित क्यारी भी रोमाञ्चित होने लगती थी; उस सुन्दर मुरली का बजाने वाला श्री कृष्ण कहाँ है।

(१३) शब्दार्थ सूना=सुनसान, उजाड़। सदन-सदन=प्रतिघर। तमवलितमही=अंधकार से पराजित पृथ्वी। निपट=बिलकुल।

सरलार्थ -जिस प्रिय पुत्र को खोकर सम्पूर्ण गाँव श्री हीन (सुनसान सा) हो गया है और हाय! प्रत्येक घर में शोक छा गया है तथा जिसके बिना अंधकार से हारी हुई पृथ्वी में उजाला भी नहीं होता है अर्थात् जिसके वियोग में कोई भी व्यक्ति अपने घर मे दिया नहीं जलाता है; वह बिलकुल ही अपूर्व शोभावाला श्री कृष्ण कहाँ है?

(१४) शब्दार्थ खिन्न=दुखी। शुक=तोता। गेह=घर। सुधि=याद। शारिका=मैना। शुचि=पवित्र। मंजु=सुन्दर।

सरलार्थ जिसके वियोग में बहुत सी गायें दुखी होकर, खोज में जंगल-जंगल भटकती फिरती हैं। और तोता आँखों में आँसू भर कर घर की ओर देखता रहता है और जिसकी याद कर मैना प्रति दिन ही रोती रहती है वह पवित्र रुचि (स्वभाव) वाला, स्वाति नक्षत्र के समय बना मोती श्री कृष्ण कहाँ है? अर्थात श्री कृष्ण का जन्म पवित्र और सुन्दर नक्षत्रों में हुआ था।

(१५) शब्दार्थ शोभी=शोभायमान करने वाला। स्वच्छ=निर्मल।

सरलार्थ जिस प्रिय बालक के वियोग में गोपों की पत्नियाँ घबड़ा रही हैं; और गोप भी उदास होकर जिसकी खोज में एक मार्ग से दूसरे मार्ग पर भटकते हैं; जिस पुत्र के बिना मैं भी अधीर हो रही हूँ; वह सुन्दरता की खानि, स्वच्छ मोती के समान पवित्र हृदय वाला श्री कृष्ण कहाँ है?

(१६) शब्दार्थ -ममउर=मेरा हृदय। निजकृत=अपने किये हुये। पिसा=नष्ट हो गया, पिस गया।

सरलार्थ मेरा हृदय तो कंस के भय से काँपा करता था। प्रतिदिन यही सोचकर अपने मन में डरती थी कि कंस न जाने क्या-क्या अनिष्ट करेगा; परन्तु ईश्वर ने यह अच्छा ही किया कि वह अपने किये हुये पापों के कारण स्वयं ही नष्ट हो गया।

(१७) शब्दार्थ अतुलित = अपार। लोक-आतंकारी = लोगों को भयभीत करने वाला। अनुदिन = प्रतिदिन।

सरलार्थ बहुत अधिक बलशाली कूट आदि जो पहलवान थे और पहाड़ के समान लोगों मे भय उत्पन्न करने वाला जो कुवलयापीड़ नामक हाथी था; ये प्रति दिन कोई कम भय उत्पन्न नही करते थे अर्थात् बहुत करते थे; परन्तु आज वे सब भी मर चुके हैं।

(१८) शब्दार्थ अनसोंची = जिसका कभी ध्यान तक न था। अभिनव = अनोखी। आपदा = आपत्ति।

सरलार्थ इसके अतिरिक्त हृदय को भयभीत करने वाली जो अन्य बहुतसी आपत्तियाँ थीं वे सब भी इसी प्रकार एक एक करके समाप्त हो गईं। हे प्रियतम! यह अनोखी आपत्ति कैसी आ गई है जिसका कि हमारे मन में कभी ध्यान तक नहीं आया था। (कृष्ण का मथुरा में रह जाना)

(१९) शब्दार्थ किसल = नया पत्ता, कोंपल (किशलय)। पंकज = कमल (पंक + ज, कीचड़ से उत्पन्न)। दलोंसा = पत्तों के समान। नवल = नये। सलोने = सुन्दर। गात = शरीर। पवि = वज्र। कल्पान्त = प्रलय।

सरलार्थ नये निकले हुए कोमल पत्तों के रंग का तथा कमल की पंखड़ियों के समान कोमल वह नये और सुन्दर शरीर का मेरा पुत्र, वज्र के समान कठोर शरीर रखने वाले इन सब राक्षसों का प्रलय-काल अथवा सृष्टि के अंत तक भी नाश नहीं कर सकता था।

(२०) शब्दार्थ परम अनूठा = बहुत ही अनोखा। कुसमय = बुरे समय।

सरलार्थ लेकिन हमारा हृदय ही हमें यह बता रहा है कि किसी

पुण्य कर्म के कारण ही यह सब कल्याणकारी फल प्राप्त हो रहे हैं। पर वह बहुत ही अनोखा पाप नष्ट करने वाला पुण्य ही इस बुरे समय में क्यों नहीं काम आता ?

(२१) शब्दार्थ सुअन=पुत्र। वर=सुन्दर। छटायें=शोभा। कुटिल=दुष्ट। भोग=भोगना।

सरलार्थ हे स्वामी! अपने भाई को लेकर प्यारा पुत्र श्रीकृष्ण घर को लौट कर क्यों नहीं आया ? क्या मथुरा नगर की शोभा को देखकर लट्टू हो गया है या राज-काज करना मन को पसंद आ गया है ? जो वह दुष्ट लोगों के बीच में जाकर पड़ा हुआ है ?

(२२) शब्दार्थ भक्ति भावादिकों से=आदर प्रेम के भावों से। अनुनय=विनम्र प्रार्थना। उक्तियों=बातों से। मधुपुरवासी=मथुरा निवासी। अतिशय=बहुत अधिक।

सरलार्थ अथवा क्या मथुरा के सब बुद्धिमान लोगों ने, अपने मीठे शब्दों, आदर-प्रेम आदि भावों, प्रार्थना, विनतियों तथा प्यार भरी बातों से क्या कृष्ण और बलराम को बहुत अपना लिया है ?

(२३) शब्दार्थ बहुविभव=बहुत सी धन सम्पत्ति। विलम गया=प्रेम में पड़कर रुक गया। सुफलक सुत=अक्रूर जी।

सरलार्थ यशोदा जी फिर कहती हैं कि कहीं मथुराकी अत्याधिक धन-सम्पत्ति को देखकर तो श्री कृष्ण मुग्ध नहीं; हो गया या लड़कों के समूह में प्रेम के आधिक्य के कारण तो नहीं ठहर गया ? कहीं अक्रूर ने धोखे का कोई जाल तो नहीं फैला दिया, जिसमें फँस जाने के कारण हाय ! मेरा पुत्र न छूट पाया हो ?

(२४) शब्दार्थ परम शिथिल=बहुत सुस्त, थकित। पंथ=मार्ग। क्लान्तियों से=कष्टों से।

सरलार्थ अथवा मार्ग की अधिक थकावट से बहुत थककर वह किसी छोटे बाग में तो नहीं ठहर गया है ? हे स्वामी ! तुमसे या दूसरे लोगों से जिनके साथ वह आ रहा हो, अलग होकर कहीं रास्ते में ही तो नहीं भटकता फिर रहा है ?

(२५) शब्दार्थ विपुल=बहुत सी। भानुजा=यमुना। (भानु+जा)। अतुलित=बहुत अधिक, अपार। पुलकित चित=प्रसन्न मन। कतिपय=कुछ। श्रान्ति=थकावट। विमोचने को=दूर करने को।

सरलार्थ यमुना जी के किनारे जो बहुत से सुन्दर लता मंडप थे जो कि मेरे प्रिय पुत्रों को बहुत अधिक प्रिय थे, क्या उन्हीं में वे कुछ दिनों के लिये थकावट दूर करने तो नहीं चले गये है ?

(२६) शब्दार्थ मम=मेरे। युगल=दोनों। सहृद=मित्र। वत्स =बछड़े। धेनु=गाय। बहु विलग गये—बहुत देर तक ठहर गये।

सरलार्थ क्या मेरे दोनों पुत्रों को अनेक प्रकार की गायों के साथ लड़कों के झुंड कहीं दिखाई पड़ गये और वे अपने मित्रों, बछड़ों और गायों में बहुत देर तक ठहर गये; उनके न आने का क्या यही कारण तो नहीं है ?

(२७) शब्दार्थ अति अनूठे=बहुत सुन्दर। नीप=कदंब। भानुजा यमुना। समुद=प्रसन्नता के साथ।

सरलार्थ बहुत ही सुन्दर फल-फूल से लदे हुये कदंब के वृक्ष के पास जो यमुनाजी की धारा कल-कल शब्द करती हुई बहती है उसका अनोखा दृश्य मेरे पुत्र को बहुत प्रिय लगता था: क्या वह प्रसन्नता के साथ उसी को देखने तो नहीं गया है ?

(२८) शब्दार्थ —सित=श्वेत, सफेद। सरसिज=कमल। गात =शरीर। श्याम-भ्राता=कृष्ण जी के भाई बलराम। सदन= घर।

सरलार्थ श्वेत कमल जैसे शरीर वाले अर्थात् गोर वर्ण के बलराम यदुवंशी है और उस कुल को प्रकाश देने वाले दीपक के समान हैं अर्थात् उस कुल की शोभा को बढ़ाने वाले हैं। यदि वे अपने परिवार वालों के प्रेम में भूले हुए हैं तो श्री कृष्ण उन्हे छोड़कर अकेले ही अपने घर वापस क्यों नहीं आ गये ?

(२९) शब्दार्थ स्नेही=प्रेमी। शील-सौजन्य-शाली=संकोची स्वभाव तथा सज्जनता से युक्त। तजकर=छोड़कर। अवनि=पृथ्वी।

बिलोकोंगी = देखूँगी। बदन = मुख।

सरलार्थ यदि वह परम् प्रेमी, संकोची स्वभाव तथा भद्र व्यवहार वाला श्रीकृष्ण अपने भाई का साथ छोड़कर घर को नहीं आया तो हे स्वामी! आपही बता दीजिये, इस बृज-भूमि मे लोग बसे रह सकेंगे और उसका मुँह देखे बिना मैं कैसे जोवित रह सकूँगी?

(३०) शब्दार्थ कण्ठ में प्राण आया = मृत्यु का समय हो गया है। सरलार्थ—मुझे ठीक-ठीक बता दीजिये कि मेरे प्राणों का प्यारा श्रीकृष्ण कहाँ है? यदि मेरे जीवन का एक मात्र सहारा वह मुझे मिल नहीं जायगा तो फिर मैं इस पापी प्राण को धारण करके क्या करूँगी? अर्थात् फिर जीना व्यर्थ है। उस जीने से तो मरना ही अच्छा है।

काँटा और फूल

(१) शब्दार्थ उभरना = बाहर की ओर निकलना। पुलकित = प्रसन्न।

सरलार्थ काटों के समान बहुत अधिक बाहर की ओर निकलना किसी काम का नहीं है अर्थात् व्यर्थ है। फूल के समान खिलना, जो कि प्रत्येक व्यक्ति को सदैव ही प्रसन्न-चित्त कर देता है क्यों नहीं सीख लें? अर्थात् फूल के समान हमें सदैव दूसरों को प्रसन्न चित्त करना सीख लेना चाहिये।

(२) शब्दार्थ घटी = कमी, अभाव।

सरलार्थ जो दूसरों की भलाई करने में सदैव ही लगे रहते हैं ऐसे प्राणियों का इस संसार में सदैव ही अभाव रहा है। डालियों पर काँटों का कोई अभाव दिखाई नहीं देता है परन्तु फूल तो इने-गिने दिखाई देते हैं।

(३) सरलार्थ—जब भी हमने आँखें उठाकर देखा तभी काँटे हमें सदैव की भाँति सीधी नोक किये हुये दिखाई पड़े, परन्तु हमें यह पता भी नहीं चल पाया कि ये अनोखे पुष्प कब तो खिले थे और कब शीघ्र ही मुरझा गये। अर्थात् दुष्ट व्यक्ति सदैव ही बहुत समय तक घमंड के

साथ अकड़े हुए दिखाई देते हैं पर सज्जन पुरुषों का जीवन बहुत क्षणिक होता है।

(४) सरलार्थ—क्या बतावें हमारा हृदय बहुत ही दुखी हो रहा है तेज धूप के निकलने, लू के चलने और प्रचण्ड आँधी-तूफान के उठने का इन काँटों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा; इन सबका दुष्परिणाम फूलों के लिये ही हुआ। अर्थात् बाधा तथा विपत्तियों का कुप्रभाव दुष्टों पर तनिक भी नहीं पड़ता वह तो सज्जन व्यक्तियों पर ही पड़ता है।

(५) भोली-भाली तितलियों के लिये काँटे जो कि कष्ट देने वाले सिद्ध हुए वह तो दूर नहीं हुए अर्थात् स्थाई बने रहे और फूल जो कि उनके लिये आनंद प्रद थे वह दो दिन (थोड़े दिना) भी नहीं रहे। अर्थात् चार दिना की चाँदनी फिर अँधेरी रात।'

(६) आह! मेरे मन को बहुत ही दुख हो रहा है कि ये काँटे कष्ट बहुत दिनों तक क्यों रहते हैं और यह सुन्दर फूल (सुख) थोड़े समय में ही समाप्त क्यों हो जाता है?

मैथिली शरण गुप्त

जीवन-परिचय श्रीमैथिलीशरण गुप्त का जन्म श्रावण शुक्ला द्वितीया चन्द्रवार सं० १६४२ को चिरगाँव, जिला झाँसी में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री रामचरण जी था, जो स्वयं एक अच्छे कवि थे। गुप्त जी चार भाई और हैं, जिनमें श्री सियारामशरण जी भी हिन्दी के अच्छे कवियों में गिने जाते हैं, और शेष तीन अपना निजी व्यापार करते हैं। गुप्त जी प्रारम्भ मे अङ्गरेजी शिक्षा प्राप्त करने के लिये झाँसी गये। वहाँ जब मन न लगा तो फिर घर पर आकर ही उनकी शिक्षा का प्रबन्ध हो गया। पहले आपकी कवितायें कलकत्ता से निकलने वाले जातीय पत्र में प्रकाशित होती रहती थी परन्तु उनका वास्तविक साहित्यिक रूप 'सरस्वती' के सम्पादक श्री महावीर प्रसाद जी द्विवेदी के सम्पर्क में आने से होता है। फिर वह दिन प्रतिदिन उन्नति करते गये और आज तो हमारी सरकार ने एम० पी० चुनकर उनका सम्मान किया है। आप बहुत ही सात्विक

तथा सादा व्यक्ति है।

भाषा-शैली गुप्त जी की भाषा खड़ी बोली है और इस पर उनका पूर्ण अधिकार है। यद्यपि वे कविता उस समय से कर रहे हैं जबकि हिन्दी का न तो इतना प्रचार ही था और न प्रसार ही; और व्याकरण की अशुद्धियाँ भी साहित्यकों से खूब होती थीं पर गुप्त जी इस दोष से पूर्णतः मुक्त है। इसका कारण द्विवेदी जी है। हाँ इतना अवश्य है कि भाषा में लावण्य एवं माधुर्य क्रमशः बढ़ता गया है। भारत-भारती का रुखापन पंचवटी तक पहुँच कर माधुर्य में परिवर्तित हो गया है; भाषा में सजीवता भी आ गई है।

गुप्त जी की भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्द प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। कहीं-कहीं अप्रचलित या प्रान्तीय शब्द भी मिल जाते हैं। इतना ही नहीं उर्दू-फारसी के शब्दों का प्रयोग भी कहीं-कहीं मिल जाता है। इसका कारण केवल 'तुक' के (अन्त्यानुप्रास) है। यह सब उन्होंने 'तुक' के आग्रह के कारण किया है पर इससे भाषा के स्वाभाविक प्रवाह एवं लय में बाधा पहुँचती है। भाषा के माधुर्य में भी इससे बाधा पहुँचती है। परन्तु इतना निश्चित है कि उनकी भाषा व्याकरण सम्मतित है। उसमें अन्वय दोष नहीं हैं। लोकोक्तियों का प्रयोग भी मिलता है। आपने कुछ शब्दों का संस्कृत व्याकरण के अनुसार निर्माण भी किया है।

गुप्त जी काव्य क्षेत्र में सब कुछ हैं। वे प्रबन्धकार गीतिकार और नाटककार हैं। फलस्वरूप उनकी शैली भी उसी का अनुशरण कर चली है वह है प्रबन्ध शैली, गीति शैली और नाट्य शैली। (१) गुप्तजी के अधिकाँश काव्य-ग्रन्थ, प्रबन्ध शैली के अन्तर्गत आते हैं। 'रंग में भंग' तथा 'जयद्रथ-वध' आदि इसी शैली में लिखे गये हैं इनकी ऐसी रचनायें भी दो भागों में विभाजित की जा सकती है (१) महाकाव्य साकेत (२) खण्ड काव्य पञ्चवटी। पञ्चवटी उनका सबसे अधिक सफल खण्ड काव्य है।

(२) गीति नाट्य शैली इसमें नाटकीय प्रणाली का अनुसरण

किया है। 'यशोधरा' इस शैली में बहुत सफल रचना है।

(३) गीति काव्यात्मक शैली इसमें प्राचीन और आधुनिक दोनों पद्धतियों पर लिखे गीत हैं। ऐसे गीतों का संग्रह 'झंकार' में है।

(४) उपदेशात्मक शैली प्राचीन परिपाटी के अनुसार आपने कुछ उपदेशात्मक ग्रन्थों की रचना की है, जिनमें हिन्दू, और भारत-भारती हैं।

संक्षेप में गुप्त जी की शैली प्रभावोत्पादक, संयत, गम्भीर, प्रसाद (सरल), माधुर्य और ओज से परिपूर्ण है। उनकी शैली में विशेष आकर्षण है जो कि सबसे भिन्न दृष्टिगोचर होती है। उनमें राष्ट्रीय भावना के साथ-साथ 'वसुधैव कुटम्बकंम' की भावना भी पाई जाती है। वे साम्प्रदायिकता अथवा रूढ़िवादिता के पक्षपाती नहीं है।

रचनाएँ गुप्त जी की रचनाएँ दो प्रकार की हैं (१) अनूदित और (२) मौलिक।

(१) अनूदित --विरहिणी व्रजांगना, वीराङ्गना, मेघनम्बध, पलासी का युद्ध, चन्द्रहास और तिलोत्तमा। इसके साथ ही साथ उमरखय्याम की रुबाइयों तथा 'भास' के स्वप्न वासवदत्ता का भी अनुवाद किया है।

(२) मौलिक रंग में भंग, जयद्रथ बध, पद्य-प्रबन्ध, भारत-भारती, शकुन्तला, पत्रावली, वैतालिक, पद्यावली, किसान पंचवटी, अनघ, स्वदेश संगीत, गुरु तेग बहादुर, हिन्दू, शक्ति, सौरान्ध्री, वन-वैभव, वक-संहार झंकार, साकेत, यशोधरा, द्वापर, सिद्ध-राज, नहुष, विकट भट, मौर्यविजय, मंगल घट, त्रिपथगा तथा गुरु कुल।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उन्होंने अपनी अनूदित तथा मौलिक रचनाओं द्वारा हिन्दी साहित्य के भंडार को भरा है और अब वृद्ध होने पर भी साहित्य-सृजन में लीन हैं। हिन्दी भाषा एवं राष्ट्र को उन पर गर्व है।

ध्वज-वंदना

यह पुण्य पताका .... न थक थहरे।

शब्दार्थ- ध्वज = झंडा। पता का-झंडा। मानस = हृदय, मन। सूत्र = गूढ़ अर्थ वाला पद या वचन, मूल सिद्धान्त। थहरे = भयभीत होकर काँपना। थर्राना।

प्रसंग- हमारी राष्ट्रीय पताका, हमारी संस्कृति की विशेषताओं और राष्ट्रीय आदर्शों का प्रतीक है। इन्हीं विशेषताओं और आदर्शों को ध्यान रखकर राष्ट्र-कवि श्री 'गुप्त' जी ने प्रस्तुत गीत में उसकी वंदना की है।

सरलार्थ- हमारे राष्ट्र की पवित्र पताका निर्बाध होकर फहराये। वह स्वतन्त्र वायुमंडल में स्वतंत्र होकर अपने मनके विचारों को प्रकट करे। हमारी इस पताका में विजय, मित्रता और करुणा तीनों का मेल है। समय आने पर यह पताका क्रान्ति के सूर्य के समान तेजवान बन जाती है अर्थात् देश वासियों में क्रान्ति की भावना उत्पन्न कर देती है और कभी शान्ति और सुख के देने वाले चाँद और तारे के समान मौन होकर लहराती रहती है। इसी ध्वज-चक्र ने हमें शान्ति के मूल सिद्धान्तों का पाठ पढ़ाया है। फूल की पंखुड़ियों के समान प्रिय एवं मोहक यह पताका सदैव ही सुदर्शन चक्र के समान आपत्ति काल में हमारी रक्षा करती रही है। जब इतना तेजस्वी काल चक्र हमारे पास है तो लक्ष्य थक कर भयभीत क्यों न होगा ? अर्थात् हमें हमारा लक्ष्य प्राप्त अवश्य होगा।

कर्म क्षेत्र हरा .... घोषणा घहरे।

शब्दार्थ शुभ्र = श्वेत; उज्ज्वल। कल = सुन्दर। घहरे = गर्जन। गम्भीर = ध्वनि।

सरलार्थ- तिरंगे झन्डे में तीन रंग हैं उन्हीं का प्रयोजन बताते हुए कवि कहता है इस झंडे में जो हरा रंग है वह हमारा कर्म क्षेत्र है; श्वेत रंग हमारे मन को बहुत अधिक प्रिय लगने वाला ज्ञान

का प्रतीक है। और सुन्दर केसरिया रंग जो है, हमारे देश के लिये न्यौछावर होने की प्रबल भावना का तथा नम्र भक्ति-भावना का प्रतीक है। इन तीनों संगम से जो श्रेष्ठ तीर्थ स्थान बनता है उसमें हमें अपने धर्म (कर्त्तव्य) का पालन करना है अर्थात् ऐसा कार्य करना है, जिससे ज्ञान, भक्ति एवं कर्म का पालन हो सके। और स्वयं स्वतन्त्र होने के साथ ही साथ दूसरों की स्वतन्त्रता का भी उपाय सोचना है। हम तो केवल यह गम्भीर घोषणा करना चाहते हैं कि जीवन की सुख तथा सुविधाओं के सभी समान भागी हैं अर्थात सबको मिलनी चाहिये।

त्याग हमार............................आगे ठहरे

शब्दार्थ हरण=छीनना, लूटना, अनुचित रूप से ले जाना। वरण=गठबंधन, अंगीकार, स्वीकार। आततायी=अत्याचारी, दुष्ट। तुष्टी करण=संतुष्ट करना। नरता=मनुष्यता। बर्बरता= दुष्टता, राक्षसपन।

सरलार्थ हम सदैव ही दूसरों के लिये अपने सुख आदि का त्याग करते आए हैं परन्तु हमारी सुख एवं सुविधाओं की सामग्री को यदि कोई बल पूर्वक छीनना चाहेगा अथवा उस पर अनुचित रूप से अधिकार करना चाहेगा तो हम उसका सामना करेंगे। ऐसी दुष्टता को हम कभी भी सहन नहीं कर सकते। हम मानवता का दुष्टता और राक्षसी वृत्ति से कभी भी गठबंधन नहीं करेंगे। ऐसा करना हमें न कभी स्वीकार है और न हम इसे सह सकते हैं। किसी भी अत्याचारी को संतुष्ट करना हम कभी भी सहन नहीं कर सकते हैं। विना कारण हम किसी भी व्यक्ति की मृत्यु कभी भी सहन नहीं कर सकते हैं। जिस मनुष्यता के सन्मुख ही दुष्टि व्यक्ति अत्याचार करते रहे वह वास्तव में मानवता नही कुछ और बेसक हो।

इस ध्वज पर ....करके छहरे।

शब्दार्थ जूझे=बलिदान हुए। निर्भर=निडर। बरण= स्वीकार करना, चुनना। भू=पृथ्वी। छहरे=छितरे।

सरलार्थ स्वतन्त्रता-युद्ध में बलि होकर जिन भारतीयों ने इस पताका के सम्मान की रक्षा की है उन लोगों का जब ध्यान आता है तो गर्व से हमारा मस्तक ऊँचा हो जाता है। इतना होने पर भी शहीदों की स्मृति हो आने पर, हमारे हृदय में एक हूक उठती है। वास्तव में इस संसार में वही व्यक्ति स्थायी यश को पाता है जो निडर होकर मृत्यु को स्वीकार करता है अर्थात् साहस के साथ विपत्तियों का सामना करता है। हमारी भारत-माता को ऐसे ही देश भक्त पुत्रों की इच्छा है। भारत माता के सम्मान और लाज का रक्षक यह वस्त्र देश की रक्षा करता हुआ युग-युग तक छिटकता रहे।

माँ कह एक कहानी

मां कह एक .... था रानी

प्रसंग- प्रस्तुत पद्यांश राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'यशोधरा' से उद्धृत किया गया है। राहुल (गौतम बुद्ध का पुत्र) अपनी माँ यशोधरा से सामान्य बालकों की भाँति कहानी सुनने का आग्रह करता है। यशोधरा (गौतम की पत्नी) अपने प्रियतम की कहानी ही कहती है

सरलार्थ सोने से पूर्व, राहुल अपनी माँ यशोधरा से कहता है कि 'हे माँ! कोई एक कहानी कह;' यह सुनकर यशोधरा उत्तर देती है 'हे पुत्र! क्या तूने मुझे अपनी नानी समझ लिया है।' (नानी अथवा दादी ही बच्चों को कहानी अधिकांशतः सुनाती हैं।) उत्तर में राहुल कहता है 'यह परिचारिका (दासी) मुझसे कह रही थी कि तू मेरी नानी तो नहीं पर नानी की बेटी है। हे माँ! तू सोती ही सोती कहानी कह दे; कहानी का नायक राजा था या रानी।'

तू है हठी .... यही कहानी।"

सरलार्थ- यशोधरा कहती है 'हे पुत्र, तू बहुत जिद्दी है; मेरा कहना मानले, कहानी की जिद मत कर।' पर जब किसी तरह राहुल नहीं मानता तो वह कहती है 'हे पुत्र सुन! तेरे पिताजी प्रातःकाल

बहुत शीघ्र ही वाटिका में घूमा करते थे। उस वाटिका में मधुर तथा स्वच्छंद सुगन्धि फैली हुई थी।' राहुल कहता है 'हाँ माँ यही कहानी कहो, जहाँ पर कि अत्यधिक सुगन्धि थी।'

वर्ण-वर्ण के ....'यही कहानी

सरलार्थ यशोधरा आगे कहती है 'उस वाटिका मे रंग-विरंगे फूल खिले हुए थे; उन फूलों पर ओस के बिन्दु झिलमिला रहे थे। उस वाटिका मे एक ओर पानी लहरा रहा था, जिसमें धीमे-धीमे बहने वाली वायु के झोंके हिल-मिल गये थे।' राहुल कहता है 'पानी मे लहरें उठ रही थीं हाँ मां यही कहानी कह।'

गाते थे खग ....भरी कहानी।

सरलार्थ 'मीठे स्वर में कल-कल ध्वनि करते हुए पक्षी वहां गाना गाते थे। यकायक एक हँस तीक्ष्ण बाण से घायल होकर ऊपर से नीचे पृथ्वी पर आकर गिरा। बाँण इतना गहरा लगा कि हँस की एक पंख टूट गई।' राहुल कहता है—'हाय माँ! एक पंख टूट गई; यह तो बड़ी करुणाजनक कहानी है।'

चौंक उन्होने ....कठिन कहानी

सरलार्थ 'तेरे पिताजी (गौतम बुद्ध) ने उस हंस को आश्चर्य चकित होकर उठा लिया। उन्होने उसकी सेवा सुश्रूषा की तो पक्षी ठीक होने लगा और वास्तव मे पक्षी को मृत्यु के मुँह से निकाल कर उसे नया जन्म दिला दिया। तीर चलाने मे सिद्ध हस्त जो अभिमानी शिकारी था। इतनी देर मे वह भी वहाँ पर आ गया। राहुल कहता है 'शिकारी सिद्धहस्त और अभिमानी था; माँ यह कहानी तो बड़ी करुणोत्पादक तथा कठिन है।'

माँगा उसने ....चली कहानी

सरलार्थ- 'उसने तेरे पिताजी से आकर घायल पंछी माँगा। परन्तु तेरे पिताजी उसके रक्षक थे इसलिये उन्होंने पक्षी को देने से इन्कार कर दिया। तब उस माँसाहारी ने उस पक्षी को लेने के लिए जिद करना आरम्भ कर दिया।' राहुल ने कहा 'उसने हठ करने

का निश्चय किया; सो अब कहानी आगे बढ़ती जा रही है।'

हुआ विवाद .... हुई कहानी।

सरलार्थ 'अब फिर दयाशील (गौतम बुद्ध) और निर्दयी (अहेरी) में वाद-विवाद होने लगा। दोनो ही अपनी इच्छा को पूरा करना चाहते थे। अंत में बात न्यायलय में गई तो सभी ने इस बात को सुना और जान लिया।' राहुल कहता है 'सभी ने सुना और जान लिया; मां अब कहनी बहुत बढ़ गई।'

राहुल तू .... सुन रहा कहानी।

सरलार्थ--यशोधरा कहती है--'हे पुत्र राहुल! अब इस बात का तू ही निर्णय दे कि नीति किसके पक्ष में है अर्थात् धर्म पर कौन टिका हुआ है। तू निडर होकर कह दे कि किसकी जीत होनी चाहिए, जिससे कि मैं तेरे शब्द भी सुन लूँ।' राहुल कहता है हे माँ मैं तो कहानी सुन रहा हूँ मेरी वाणी क्या हो सकती है; अर्थात् मैं अपना निर्णय क्या दे सकता हूँ?'

कोई निरपराध .... गुनी कहानी

सरलार्थ यदि कोई व्यक्ति निर्दोष प्राणी को मारे तो दूसरे व्यक्ति उसे क्यों न बचायें अर्थात् अवश्य बचाना चाहिए। न्याय और दया का दान करने वाला व्यक्ति सदैव ही रक्षक पर भक्षक को न्योछावर कर देता है। अर्थात् भक्षक को महत्त्व न देकर रक्षक को ही महत्त्व देता है। राहुल कहता है 'हो माँ! तूने न्याय और दया के दान करने वाली की कहानी कही।

पंचवटी में लक्ष्मण।

(१) शब्दार्थ चारु=सुन्दर। थल=पृथ्वी। अवनि=पृथ्वी। अंबरतल=आकाश। हरित तृणों=घास। तरु=वृक्ष।

प्रसंग प्रस्तुत पद्यांश राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'पंचवटी' नामक खंड काव्य से उद्धृत किये गये हैं। आरम्भ में पंचवटी की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन करते हुए कवि कहता है

सरलार्थ पंचवटी की भूमि और जल पर सुन्दर चन्द्रमा की

चंचल किरणें फैली हुई हैं। पृथ्वी और आकाश में उज्वल चाँदनी बिखरी हुई है। ऐसे सुन्दर वातावरण को देख कर पृथ्वी पुलकायमान हो जाती है: उस पर उगे हुए घास के अंकुर मानो पृथ्वी का रोमान्च है। धीमी-धीमी वायु के कारण वृक्ष हिल रहे हैं; वह ऐसे विदित होते हैं मानो वे भी इस अभूत पूर्व सौन्दर्य को देख कर नींद से जाग गये हैं।

(२) शब्दार्थ -पर्ण-कुटीर=पत्तों की बनी झोपड़ी। मना=मनवाला, मनुष्य। कुसुमायुध=कामदेव। दृष्टिगत=दिखाई देता है।

प्रसंग श्री राम और सीता कुटिया मे सो रहे है और एकांत तथा शांत रात्रि के वातावरण मे अकेले लक्ष्मण जी पहरा देने के लिये जाग रहे हैं

सरलार्थ पंचवट वृक्षों की छाया में सुन्दर, पत्तों की बनी हुई कुटिया है। उसके सामने श्वेत पत्थर पर धैर्यवान, एकवीर, निडर मनवाला मनुष्य बैठा हुआ है। ऐसी शांत रात्रि में जब कि सारा संसार भर सो रहा है; यह धनुष वाला कौन जाग रहा है। भोग-विलासी कामदेव योगी के समान बना हुआ दिखाई दे रहा है?

(३) शब्दार्थ व्रत=पुण्य-कार्य। व्रती=ब्रह्मचारी। विराग=त्याग, वैराग्य। प्रहरी=पहरेदार। रत=लीन, लगा हुआ।

सरलार्थ यह वीर ब्रह्मचारी इस प्रकार निद्रा को त्याग कर किस पुण्य कार्य में लीन है? यह तो राज भोगने के योग्य है फिर जंगल में वैराग्य लेकर क्यों बैठा है? जिस कुटिया का यह पहरेदार बना हुआ है उस कुटिया मे ऐसा क्या अमूल्य धन है? उसकी ही रक्षा में उसका शरीर, मन और सारा जीवन लगा हुआ है।

(४) शब्दार्थ मृत्यलोक-मालिन्य=इस संसार की मलीनता अथवा पाप। निशाचरी=राक्षसी। माया=छल, कपट।

सरलार्थ- इस संसार के पापों को नष्ट करने के लिये जो पत्नी साथ में आई है वह तो ऐसी मालूम पड़ती है मानो तीनों लोकों की लक्ष्मी ने, आज इस कुटिया मे निवास कर लिया है। वह (सीताजी)

वीर वंश की लाज है फिर उस लज्जा की रक्षा के लिए पहरेदार वीर क्यों नहीं ? अर्थात् वीर वंश की लज्जा के हेतु पहरेदार भी वीर ही होना चाहिये। दूसरे वीर पहरेदार की इसलिए भी आवश्यकता है क्योंकि जनशून्य स्थान है, रात्रि अभी बाकी है और राक्षसों के छल-कपट वाला यह स्थान है।

(५) शब्दार्थ मोदमयी=प्रसन्नताभरी। धनुर्धर=धनुषधारी।

सरलार्थ यदि मनुष्य के पास कोई व्यक्ति नहीं भी रहता है, तब भी उसका मन शांत नहीं रहता है। वह स्वयं अपनी बात सुनता है और अपने से ही अपनी बात कहता है। लक्ष्मण जी बात करते हुये बीच-बीच में इधर-उधर प्रसन्नताभरी दृष्टि डालते हैं और वह वीर धनुषधारी मन ही मन में, अपने आप बात करता है।

(६) शब्दार्थ--निस्तब्ध=शांत। सुमद=धीरे-धीरे बढ़ने वाली। गंधवह=सुगंधित हवा। निरानंद=आनद रहित। नियति=प्रकृति।

सरलार्थ यह चाँदनी भी किस स्वतन्त्रता से फैली हुई है और रात्रि भी कितनी अधिक शांत है। धीरे-धीरे बहने वाली सुगंधित वायु स्वतन्त्रतापूर्वक बह रही है। प्रकृति रूपी नटिनी के काय अब भी चल रहे है, वह बन्द नहीं है, परन्तु वह बहुत ही शांति पूर्वक अकेले ही पूरे हो रहे हैं--ससार की भांति शोर गुल नहीं है।

(७) शब्दार्थ विराम दायिनी=आराम देने वाली। श्याम=नीला, काला।

सरलार्थ जब सारा संसार सो जाता है तो पृथ्वी अपने धरातल पर मोती (ओस के बिन्दु) फैला देती है। सूर्य निकलते ही हर प्रातःकाल उन्हें इकट्ठा कर लेता है (सूर्य के निकलते ही ओस समाप्त हो जाती है। उन मोतियों को वह रात्रि को दे जाता है, क्योंकि संध्या के आते ही सूर्य आराम करने चला जाता है। उन मोतियों को पाकर उसका काला शरीर, आकाश नये सौन्दर्य में सुशोभित होने लगता है। कवि यहाँ पर कल्पना करता है कि रात्रि में आकाश में चमकने वाले तारागण ओस के बिन्दु हैं जिन्हे कि

पृथ्वी पर से इकट्ठा कर सूर्य रात को दे जाता है -

(८) शब्दार्थ- आर्त=दुखित। अवधि=समय की सीमा।

सरलार्थ लक्ष्मण जी बैठे-बैठे सोच रहे हैं 'हमें वन में आए हुए तेरह वर्ष व्यतीत हो चुके हैं परन्तु ऐसा मालूम पड़ता है मानो हम अयोध्या से कल ही चले हैं। जिस दिन हम अयोध्या से वन को चले थे उस दिन दुखित होकर पिताजी बेहोश हो गये थे। अब वह चौदह वर्ष पूरे होने में एक वर्ष की देर और है जब कि वन के समय की अवधि भी पूरी हो जायगी। परन्तु इस भक्त को (मुझे) श्री राम और सीता की सेवा रूपी अमूल्य धन से बढ़कर और कौन सा धन प्राप्त होगा ? अर्थात् इस सेवा के सन्मुख सब वैभव एवं राज-पाट व्यर्थ है।

(९) शब्दार्थ आर्य=श्री राम। प्रजार्थ=प्रजा के लिए बिसारेंगे=भुला देंगे। लोकोपकार=संसार का हित।

सरलार्थ- लक्ष्मण जी आगे सोच रहे हैं -भगवान राम को क्या मिलेगा ? उन्हें राज्य कार्य संभालना पड़ेगा। लेकिन इसे तो वे प्रजा की भलाई के लिये ही स्वीकार करेंगे, इसमें उनका अपना कुछ भी स्वार्थ नहीं होगा। राज्यकार्य मे वे दिन-रात लगे रहेंगे, इसलिये इच्छा न होते हुए भी वह हमें परिस्थिति वश भुला देंगे। लेकिन हमें इसका दुख नहीं होगा क्योंकि वे संसार की भलाई में लगे होंगे। परन्तु फिर भी मेरे मन मे एक प्रश्न उठता है कि क्या यह संसार अपनी भलाइ अपने आप नहीं कर सकता ? अर्थात् चाहे तो अवश्य कर सकता है।

(१०) शब्दार्थ मँझली=बीच की; कैकेयी। निर्वासित कर= निकालकर,

सरलार्थ बीच की माता कैकेयी ने अपने मन में सोचा था कि राम को वनवासी बनाकर, अपने पुत्र को राजा बनाकर मै स्वयं राजमाता बन जाऊँगी और उनके वन चले जाने पर मै पूर्णतः राज्य पर अपना अधिकार जमा लूँगी। किन्तु चित्रकूट में वह इतनी दुखी

थी कि उसे देखकर करुणा भी थक जाती थी। अर्थात् वह करुणा और दया की मूर्ति बनी हुई थी। उसे तो सब लोग देखते थे क्योंकि वनवास का कारण ही वह थी, पर लज्जा के कारण वह स्वयं किसी को नहीं देख पा रही थी।

(११) शब्दार्थ बड़भागी=बड़े भाग्यशाली। विश्वानुकूल्य=संसार के नियम के अनुसार।

सरलार्थ आहा, क्या राजमाता इसी को कहते हैं कि भरत भी राजा न होकर संसार त्यागी वन गये। परन्तु अब वह वास्तव में हज़ारों सकटों से भी बड़े भाग्यवान हैं। इस मूर्ख संसार ने एक तुच्छ राज्य का कितना अधिक मूल्य रखा है। हमें तो ऐसा विदित होता है कि मानो दैव ने हमें सांसारिक नियमों के अनुसार ही वन में रखा है।

(१२) शब्दार्थ राजत्व-मात्र=केवल राजा बनना। लक्ष्य=उद्देश्य। पूर्व=पहले के। भाव=विचार।

सरलार्थ यदि हमारे (भारतीय) जीवन का उद्देश्य केवल राज्य प्राप्त करना ही होता तो हमारे पूर्वज राज्य को छोड़कर वन का रास्ता क्यों अपनाते? अर्थात् भारतीय जीवन का उद्देश्य राज्य या वैभव न होकर सादा जीवन था। यदि परिवर्तन (बदलना) को ही यह संसारी व्यक्ति उन्नति कहते हैं तब तो हम आगे बढ़ते जा रहे हैं, परन्तु मुझे यह परिवर्तित विचार अच्छे नहीं लगते मुझे तो साधारण तथा सत्य जो प्राचीन विचार है वही अच्छे लगते हैं।

(१३) शब्दार्थ वनचारी=वन में रहने वाले। विहरते हैं=भ्रमण करते है; घूमते है। सयत्न=प्रयत्न करके। स्वयमपि=अपने आप ही। सानद=प्रसन्नता के साथ।

सरलार्थ कुछ भी हो भगवान राम जहाँ रहते हैं वह तो वहीं पर राज्य करते हैं। उनके राज्य मे वन में रहने वाले सभी जीव स्वतन्त्रता पूर्वक भ्रमण करते हैं। जिन पशु पक्षियों को हम प्रयत्न करके नगरों मे पींजड़ों में बन्द करके रखते हैं वे ही पशु पक्षी, अपने

आप प्रसन्नता से भाभी (सीता जी) से हिल मिल गए हैं।

(१४) शब्दार्थ पतित = पापी, नीच। बहुधा = अधिकतर। आरोपण = रोपना, झूठी कल्पना। निसर्ग = प्राकृतिक। लोप = छोड़ना, त्यागना। सुरत्व = देवत्व। जननी = माँ, जन्म देने वाली।

सरलार्थ -अधिकतर हम पापी लोगों को पशु कह देते है परन्तु हमारी यह झूठी कल्पना है; क्योंकि जानवर कभी भी अपने प्राकृतिक नियमों को नहीं छोड़ता, जबकि मनुष्य प्राकृतिक नियमो का अधिकांशतः त्याग कर देता है। मैं मनुष्यता को देवत्व को जन्म देने वाली तो कह सकता हूँ पर पापी को, (जो प्रकृतिक नियमों का उल्लंघन करता है) पशु (जो प्राकृतिक नियमो का सदैव पालन करता है) कहना कभी भी स्वीकार नहीं कर सकता।

(१५) शब्दार्थ—खिझाते हैं = चिढ़ाते हैं। आर्या = सीतामाता। रिझाते हैं = प्रसन्न करते हैं। विचित्र = अनोखे। चारु = सुन्दर।

सरलार्थ तरह-तरह के पशु-पक्षी यहाँ पंचवटी में आकर के दोपहरी व्यतीत करते हैं। यहाँ पर भाभी (सीतामाता) उनको खाना देती है और पंचवटी उनको गहरी छाया देती है। जिस प्रकार के सुन्दर चंचल बालक सब घिर कर माता को चिढ़ाते हैं; उसी प्रकार वे पशु पक्षी भी घेर कर तथा चिढ़ा कर सीतामाता को प्रसन्न करते हैं।

(१६) शब्दार्थ ताल = ध्वनि। तान = लय, संगीत लहरी। सुमन = फूल। ललक = गहरी इच्छा।

सरलार्थ गोदावरी नदी का वह किनारा अब भी शब्द कर रहा है। ऐसा विदित होता है मानो चंचल जल कल-कल की मधुर ध्वनि करता हुआ अब भी संगीत लहरी फैला रहा है। पेड़ों के पत्ते अब भी हिल रहे हैं और फूल उसी प्रकार सुगंधि फैला रहे हैं जिस प्रकार कि प्रसन्न मन होता है। पंचवटी की भूमि की इस शोभा पर चन्द्रमा और तारागण भी मोहित होकर उसे लालच भरी आँखों से देखते हैं।

(१७) शब्दार्थ वैतालिक=चारण, भाट, स्तुति पाठ। तुल्य=समान। मग्न=लगे हुए। केकी=मोर।

सरलार्थ पशु-पक्षी सीता माता की स्तुति में ठीक तरह से चारण और भाटों की भाँति लगे हुये हैं। ऐसा विदित होता है। मानो वे कवियों की भाँति नये गीत लिखने में लगे हुए हैं। इसी के बीच-बीच में नाचता हुआ मोर जब कूकता है तो ऐसा मालूम पड़ता है मानो यह कह रहा हो कि आज तो मैं अपने कर्तव्य की पूर्ति में लगा हूँ देखें कल इस कार्य को कौन पूरा करता है।

(१८) शब्दार्थ तत्व-ज्ञान=ब्रह्म-ज्ञान, । गौरव-गंध=यश रूपी सुगन्धि। यत्र-तत्र सर्वत्र=यहां, वहां और सब जगह।

सरलार्थ यहां पंचवटी की तपोभूमि मे मुनियों का अच्छा संग प्राप्त है; वे मुनि ऐसे हैं, जिन्हे कि आत्मज्ञान प्राप्त हो चुका है। उन मुनियो से हमें प्रतिदिन नवीन-नवीन अनोखी कथायें सुनने को मिलती है। जिन मनुष्यों का जीवन रूपी फूल, जितने कष्ट रूपी कांटों में खिलता है, व्यतीत होता है उन्हे उतनी यश रूपी सुगन्धि इस संसार में यहां वहां और सब जगह प्राप्त होती है।

(१६) शब्दार्थ शुक=तोते। सारी=मैना। पराक्रम=वीरता।

सरलार्थ यहां आश्रम के तोते और मैना भी पवित्र, जीवन के सिद्धान्तों का पाठ करते हैं, मुनियों की पुत्रियां पवित्र वीरता के यशोगान करती हैं। आहा, भगवान राम के वन के राज्य में सभी जीव सुखके साथ अपना जीवन व्यतीत करतेहैं यहां पर इतना न्याय है कि शेर और हिरन साथ ही साथ रहते हैं।

(२०) शब्दार्थ कानन=जंगल। आनन=मुख।

सरलार्थ भगवान राम जंगलों में भील, मल्लाह तथा शबरी आदि की मनकी इच्छाको भी पूरी करते हैं। इनके भोले मुखसे बहुत सीधे सादे वाक्य निकलते हैं। इन लोगों को समाज नीच कहता है पर वास्तव में भी तो जीव हैं। इनके भी मन तथा विचार है; ह कमी इतनी ही है कि इनके मुख से उतने सुसंस्कृत वाक्य नहीं

निकलते हैं।

(२१) शब्दार्थ व्यजन=पंखा। आयोजनमय=प्रबन्ध किया हुआ। मना प्रसाद=मन का संतोष। आह्लाद=प्रसन्नता।

सरलार्थ --जंगल में हमे कभी भी पंखे की आवश्यकता नहीं पड़ती है क्योंकि यहाँ पर वैसे ही सदैव वायु बहती रहती है। यहाँ पर पानी, मकरंद, कंद-मूल, फल सब प्रबन्ध किया हुआ भोजन है। केवल मन का संतोष चाहिये फिर कहीं रहो चाहे कुटिया या महल में सभी बराबर है। उदाहरण के लिये भाभी (सीतामाता) जंगल में रहते हुए भी बहुत प्रसन्न है और बीच की माँ कैकेयी महल में रहते हुए भी बहुत दुखी है।

(२२) शब्दार्थ निराती=साफ करतीं। स्वावलम्ब=अपना काम अपने हाथ से करना, स्वाश्रित। कोष=खजाना।

सरलार्थ जब बर्तन भर-भर करके सीतामाता अपने लगाए हुए पौधों में पानी देती हैं। खुरपी लेकर जब वे स्वयं अपने खेत साफ करती हैं, तब उन्हें बहुत अधिक सुख, संतोष तथा गौरव प्राप्त होता है। अपने आप जो कार्य करते हैं उस पर मैं कुबेर के खजाने तक न्यौछावर करने को तैयार हूँ।

(२३) शब्दार्थ निःस्पृहता=त्याग लालच रहित। कृत्रिमता=बनावटी। अधिष्ठामी=स्वामिनी। विकृति=बनावटीपन।

सरलार्थ यद्यपि यहाँ पर ऋषि-मुनि गृहस्थाश्रम में रहते हैं पर फिर भी उनमें अनोखे त्याग की भावना के दर्शन होते हैं। यहाँ पर ऋषि अत्रि और अनुसूया की जैसी पवित्र गृहस्थी है वैसी संसार में और कहीं भी नहीं है। ऐसा विदित होता है मानो यह संसार तीनों लोकों से अलग ही है। प्रकृति यहाँ की स्वामिनी है। अतः बनावटीपन का यहाँ नाम मात्र भी नहीं है।

(२४) शब्दार्थ स्वजनों=घर वालों को। विपिनवास=बनवास। परोक्ष=दूरी।

सरलार्थ हमें तो अपने घर वालों की चिंता है और उन्हें

हमारी चिंता होगी। दोनों ओर इस वनवास का यही संकोच रहा। इसका कारण यह है कि प्रेम कष्ट आदि सब कुछ सहन कर सकता है पर दूरी, अलगाव हो सहन नहीं कर सकता है। उसकी कुशलता तो सामने रहने में ही रक्षित रहती है।

माखनलाल चतुर्वेदी

(एक भारतीय आत्मा)

जीवन-परिचय आपका जन्म सं० १६४५ में होशंगाबाद जिले के बाबई नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिताजी का नाम पं० नन्दलाल चतुर्वेदी था। आपने हिन्दी मिडिल पास की फिर नार्मल स्कूल में शिक्षा पाई। कुछ समय तक खण्डवा के मिडिल स्कूल में अध्यापन कार्य किया। आज कल आप 'कर्मवीर' साप्ताहिक पत्र का सम्पादन कर रहे हैं, जो कि खण्डवा से प्रकाशित होता है।

शैली चतुर्वेदी जी यद्यपि राष्ट्रीय कवि के रूप में हिन्दी-संसार में विख्यात हैं, परन्तु इससे भी बढ़कर वे प्रेम मय जीवन के कवि हैं। गृह तथा वन्दीगृह सभी जगह उन्हे अपने हृदय के अराध्य के दर्शन होते हैं। माखनलाल जी की प्रेम भावना पूर्णतः मानव-प्रवृत्तियों से ओत-प्रोत है। इसका उदाहरण हमें कृष्ण के वर्णन में मिलता है। उन्होने कृष्ण को अलौकिक रूप में चित्रित न कर एक मानव के रूप में चित्रित किया है। कविता में उनका हृदय उमड़ पड़ा है। यही कारण है कि आपके लिये कला गौण और भाव प्रधान हैं। निराला जी का यह कथन उपयुक्त ही है "कला की प्रदर्शिनी में जाने से पहले उनकी (माखनलाल जी की) कविता सहृदयता की ओर चली जाती है। जहाँ कला की चकाचौंध नहीं आँसुओं का प्रस्रवण जारी रहता है।"

माखनलाल जी का 'आराध्य' उन्हे केवल प्रेम के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रखता, अपितु वह उन्हे त्याग, तप तथा आत्म बलि-दान की भी प्रेरणा देता है। यही कारण है कि आपने समाज को

एक नये मार्ग के दर्शन कराये हैं तो युवकों में नई चेतना व नवस्फूर्ति भर दी है। वे भारतीय युवकों को क्षण-क्षण सजग रहने तथा कर्त्तव्य पालन करने की प्रेरणा देते रहते हैं। इससे भी बढ़कर कष्ट सहिष्णुता का उपदेश देकर उनमें तप की भावना कूट-कूट कर भर देते हैं। राष्ट्रीय क्षेत्र में 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से आप काव्य रचना करते हैं। उस क्षेत्र में तो आपको अत्यधिक ख्याति प्राप्त हुई है। कहीं-कहीं आपमें रहस्यवाद की भी झलक मिल जाती है। उसमें हमें सर्वत्र एक हूक, कराह, कसक और टीस मिलती है। चाहे वह प्रेम क्षेत्र हो या राष्ट्रीय क्षेत्र हो। राष्ट्रीय कविता में भी उनके हृदय की वेदना ही है।

आपकी भाषा सरल, सुबोध होने के साथ-साथ ओजपूर्ण है। आपने संस्कृत के तत्सम शब्दों के अतिरिक्त उर्दू, फारसी तथा बोलचाल के शब्दों का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है।' फलत भाषा दुर्बोध न होकर सरल है और उसमें मिठास के साथ-साथ, शक्ति का समावेश है। आप कविता को शब्दाडम्बर से लादने के पक्ष में नहीं है। काव्य-सृजन करने के अतिरिक्त आप एक सफल गद्य-लेखक भी हैं।

ग्रन्थ हिमकीरीटिनी, हिम तरङ्गिनी, बनवासी, साहित्य देवता, कृष्णार्जुन युद्ध (नाटक) आदि आपकी प्रसिद्ध साहित्यिक रचनायें है।

भारतीय विद्यार्थी

(१) शब्दार्थ मनस्वी=उच्च विचार वाला, स्वेच्छाचारी। पूर्ण ज्ञान-सर्वेश-चरण=पूर्ण ज्ञान रूपी ईश्वर के चरण। परमार्थी=त्यागी, मोक्ष चाहने वाला। मस्तिष्क=विचार।

प्रसंग प्रस्तुत पंक्तियाँ प्रख्यात राष्ट्र कवि श्री माखन लाल चतुर्वेदी की हैं। विद्यार्थी किसी भी देश एवं राष्ट्र तथा समाज के मेरु दंड हैं। बुद्धि बल और पराक्रम के प्राचीन भारतीय आदर्शों की रक्षा करते हुए राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों का नेतृत्व करने के लिए

कवि उनसे तैयार होने को कहता है .

सरलार्थ अब समय बदल गया है, वह हमे आगे बढ़ने का बुलावा दे रहा है। ऐसी परिस्थिति में अब हमे सोते रहना शोभा नहीं देता अपितु अब हमे साहस के साथ आगे बढ़ना होगा। आधुनिक ससार की कार्य पद्धति एव रीति को देख कर उसके अनु- सार निडर होकर अब हमे भी अपने कार्य मे लग जाना चाहिए। अपने विचार पर दृढ़ता से डट कर उच्च विचारों वाला मनुष्य बनना चाहिए; जिससे कि हमें संसार सच्चे अर्थों में वीर कह सके। पूर्ण ज्ञान रूपी ईश्वर के चरणो पर हमें अपना जीवन रुपी फूल चढ़ाना होगा, बलिदान करना होगा। हम सच्चे अर्थ मे भारतीय विद्यार्थी उसी समय कहला सकते हैं जब यह स्वार्थ की कीचड़ मे पड़ा हुआ संसार एक दिन त्याग की साक्षात् मूर्ति बन जाय; दुष्कर्मों को त्याग कर मोक्ष का इच्छुक बन जाय।

(२) शब्दार्थ दुर्जन दल = दुष्टों का समूह। तीखे = तीक्ष्ण, तेज।

सरलार्थ- भीष्म पितामह का आदर्श अपने सम्मुख रख कर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर रहे हों: वीर एवं तेज में अर्जुन के समान बन कर दुष्टों के समूह को मरने वाले हों; सरलता से रहने में बहुत तेज हों और अपनी प्रतिज्ञा को पालन के समान पूरी लगन से पालन कर रहे हों; और विदुर के समान न्याय एवं नीति के तीक्ष्ण वाक्य बोलने वाले हों; हम केवल यही प्रार्थना नित्य प्रति करें कि हमें कार्य करने का अनुकूल क्षेत्र मिल जाय; वास्तव में ऐसे अनोखे विद्यार्थी ही ऋषियों की सच्ची सतान कही जा सकती है।

(३) शब्दार्थ धर्मस्थल = कर्त्तव्य क्षेत्र। मर्मस्थल = हृदय। लक्ष्यों = उद्देश्य। लक्ष्यक = लक्ष्य पाने वाले।

सरलार्थ पाश्चात्य सभ्यता से जो बुराई ग्रहण न करके, मान- वता के हित में बलिदान होने के गुण सीख रहे हों; तथा मानव मनोविज्ञान की खोज तथा कार्य में डटने की विशेषता को हृदय में

धारण करना सीख रहे हों और सच्चे हृदय, तन तथा मस्तिष्क से कार्य को पूरा करने वाले हों; और कार्य करने की उनमें इतनी शक्ति हो कि संसार भर के व्यक्तियों के मन को अपने वश में करलें; वास्तव में ऐसे ही युवक अपने देश की रक्षा कर सकते हैं और वे ही सच्चे अर्थों में गुरू कहे जा सकते हैं और ऐसे ही व्यक्ति अपने उद्देश्य को प्राप्त कर सकते हैं और वे ही भारत के प्रियविद्यार्थी हैं।

(४) शब्दार्थ- शिल्प=भवन, निर्माणकला। पोत=जलयान, समुद्री जहाज। आकाशयान=हवाईजहाज। माधव=कृष्ण।

सरलार्थ हम भारती यदि चाहे तो प्रत्येक घर मे जगदीशचन्द्र बसु जैसे विश्वविख्यात वैज्ञानिक बन सकते हैं। हमारा काम केवल बाबू बन कर नहीं रहना है अपितु किसान बनकर गर्व के साथ खेत बोना भी है। भवन निर्माण कला में उन्नति करके हमें पुनः नवीन ताजमहल जैसी सुन्दर इमारत बनानी होंगी; और प्राचीन काल की ही भांति के कुशल व्यापारी बन कर संसार के सभी देशों में अपने समुद्री जहाज ले जाने होंगे; क्या कभी भी हम भारतीय रेल, तार एवं हवाई जहाज आदि वैज्ञानिक वस्तुओ का निर्माण नहीं कर पाएँगे और क्या हम कभी अपने प्रिय कृष्ण (भारतीय मानव) को शुद्ध स्वदेशी पीताम्बर (पीला वस्त्र) नहीं पहना सकेंगे ? अर्थात यदि हम प्रयत्न करें तथा हम में लगन एवं दृढ़ता हो तो हम यह सब कार्य कर सकते हैं।

(५) शब्दार्थ बाल भरत=दुष्यन्त का पुत्र भरत, जिसके नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा। भरत हो देहमान तज=जड़ भरत के समान विदेह होकर।

सरलार्थ -हम उन्नति तभी कर सकेंगे जब पहले भरत के समान वीर बालक बनकर शेर के दाँतों को पकड़ कर दबाएँ और इसके पश्चात् राम के भाई भरत के समान बनकर भ्रात्र-प्रेम करें अपने को बलिदान कर देना होगा तभी हमें जड़भरत के समान विदेह होकर संसार में एकीकरण हो जाना होगा, और तत्पश्चात् भारतवर्ष के

सच्चे पुत्र भरत वन कर संसार में यश पा सकेंगे। जब तक भारत-वर्ष के दोष बदल कर गुण नहीं बन जायेंगे तथा प्राणि मात्र से प्रेम नहीं करेंगे तब तक हम किसी भी परिस्थिति में भारतवर्ष के विजयी वीर विद्यार्थी कैसे कहला सकते हैं अर्थात् नहीं कहे जा सकते है।

(६) शब्दार्थ जीवन-रण=जीवन युद्ध। मार्ग=रास्ता। मंगल मय=कल्याण कारी। गिर=पर्वत। विघ्न=कष्ट,आपत्ति। नेम=नियम। सौभाग्य-विधाता=सौभाग्य बनाने वाले। आज्ञार्थी=आज्ञा पालन करने वाले।

सरलार्थ हे वीर भारतीय युवको। जीवन के युद्ध में आगे बढ़ो, हम यही प्राथना करते हैं कि तुम्हारा मार्ग काल्याणकारी हो। पर्वतो पर चढ़ना अर्थात् साहस के कार्य करना और एक वार असफल हो कर पुन: आगे बढ़ना। और तुम इतने वीर बनो कि सब आपदायें तुमसे डरें। नियमों का पालन करो, संसार से प्रेम बढ़ाओ और अपने शिर का बलिदान करके भारत का उद्धार करो। तुम इतने तेजस्वी बनो कि देवता भी कहने लगें कि हे विजयी भारतीयो पुण्य मार्ग पर आगे बढ़ो युवको तुम भारत के तुम भारत का सौभाग्य बनाने वाले तथ अपने देश के सच्चे आज्ञा पालक बनो। हे प्रिय! भारतीय विद्यार्थी भारत को विजयी बनाने के लिये आगे बढ़ो।

पुष्प की अभिलाषा

चाह नहीं मैं............ललचाऊँ।

शब्दार्थ सुरवाला=देवता की स्त्री; देवाङ्गना, अप्सरा। बिंध=छिदकर।

प्रसंग प्रस्तुत पद्य में चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीयता एवं देश प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण मिलता है सामान्य फूलों की भांति उसकी अभिलाषाएँ सीमित न होकर देश के उन शहीदों को उत्साहित करने की इच्छा है जोकि देशके लिये अपने जीवनका बलिदान कर देते हैं।

सरलार्थ- राष्टभक्त पुष्प अपनी इच्छा प्रकट करता है -मेरी

यह इच्छा नहीं है कि देवाङ्गनायें मुझे अपने आभूषणों में गूंथ कर अपनी शोभा बढ़ायें और न मेरी यही इच्छा है कि किसी प्रेमी युवक का माल बिंधकर उसकी प्रियतमा के मन में अपने पहने जाने का लालच उत्पन्न करूँ।

चाह नहीं सम्राटों.................इठलाऊँ।

शब्दार्थ शव=मृतशरीर, मुर्दा। हरि=भगवान। इठलाऊँ=अभिमान करूँ।

सरलार्थ हे भगवान! मेरी यह भी अभिलाषा नहीं कि मुझे राजा महाराजाओं के मृतशरीर पर डाला जाय, और न मैं यही चाहता हूँ कि मुझे देवार्चना के लिये देवताओं के मस्तक पर चढ़ाया जाय, परिणाम स्वरूप फिर मैं अपने को बहुत उच्च समझ कर अभिमान करने लगूँ यह भी मैं नहीं चाहता।

मुझे तोड़.....................वीर अनेक।

शब्दार्थ वनमाली=श्रीकृष्ण भगवान, वन का रक्षक माली। पथ=मार्ग रास्ता। शीश चढ़ाने=आत्मबलिदान करने।

सरलार्थ- अंत में अब फूल अपनी अभिलाषा प्रगट करते हुए कहता है हे वनमाली (श्री कृष्ण भगवान)। मुझे डाली से तोड़ कर उस मार्ग में फेंक देना जिस मार्ग से मातृ-भूमि की रक्षा के लिये आत्मबलिदान करने वाले वीरों की टोलियाँ जाँय। जिससे कि देश भक्त मेरे ऊपर अपने चरण रखते हुए जाँय तो उनके हृदय में बलिदान की भावना और भी प्रबल हो जाय।

मुकुटधर पाण्डेय

श्री मुकुटधर पाण्डेय मध्य प्रदेश के कवियों में प्रमुख स्थान रखते हैं। काव्य के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखने का कारण स्वतन्त्र धारा का अनुकरण करना है। यद्यपि आजकल आप साहित्य से विरक्त से हैं, परन्तु फिर भी आपका अतीत का साहित्य आपको स्थायी महत्व प्रदान कराने के लिये यथेष्ट है।

आधुनिक युग की प्रबल धारा 'प्रगतिवाद' से दूर रह कर आप पर प्रकृति के मनमोहक रूप का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगत होता है। प्रकृति आपके लिये मनोमुग्धकारी ही नहीं अपितु जिज्ञासा का भी विषय है। यही कारण है कि प्रकृति का वर्णन सजीव एवं स्वाभाविक है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि पाण्डेय जी केवल प्रकृति में ही रम गए हैं अपितु इसके विपरीत मानव हृदय की करुण भावना तथा द्रवणशीलता का भी मर्मस्पर्शी वर्णन है।

किंशुक-कुसुम

(१) शब्दार्थ किंशुक-कुसुम=टेसू=ढाक का फूल। अञ्चल=प्रदेश, भूभाग। उपहार=भेंट।

प्रसंग प्रस्तुत काव्य खण्ड आधुनिक गीति काव्य के आरम्भ-कर्त्ता श्री मुकुट धर पाण्डेय द्वारा रचित है। वसन्त ऋतु में टेसू को फूला हुआ देखकर कवि को पिछले दिन स्मरण हो आते हैं फूल से मैत्री भाव होने के कारण वह अपनी वस्तु स्थिति बनाकर कहता है कि मेरी इस करुण दशा का सन्देश भगवान को भी दे देना।

सरलार्थ हे टेसू के फूल! तुझे डाली पर खिला हुआ देख कर आज मेरे मन को बहुत अधिक प्रसन्नता हो रही है। आज मैंने तुझे ठीक एक वर्ष के पश्चात् फिर दुबारा देखा है; तू इतने दिनों तक कहाँ रहता है यह तो बता दे। इस एक वर्ष मे तू कौन-कौन से देशों मे भ्रमण कर आया है वहाँ का पूरा हाल तू मुझे क्यों नहीं बताता है? उस प्रदेश में जाकर, वहाँ के सुन्दर वातावरण को देखकर कहीं तू मुझे भूल तो नहीं गया है? वहाँ से मेरे लिये क्या कुछ भी भेंट नहीं लाया है।

(२) शब्दार्थ उषा=सूर्योदय। अरुण-हास=लालिमा मय हँसी। तव=तेरा। अपार छट=बहुत शोभा। रम्य=सुन्दर।

सरलार्थ तुझे अतीत के दिन याद हैं कि नहीं जब ठीक इसी

स्थान पर मैं तेरे साथ खेल कर सुबह बिताता था। उस समय एक ओर तो मैं सूर्योदय की लालिमामय हँसी को देखता था और दूसरी ओर तुम्हारे लाल मुख को देखकर सुखी होता था। जिस प्रकार कि यह आम आज खिला हुआ है ठीक इसी प्रकार यह आम उस समय भी खूब फल फूल कर अपनी अत्यधिक शोभ (सौन्दर्य) को हमें दिखलाता था। कभी डाली पर धीरे से वह तुझे झुलाता (हिलाता) था और कभी तेरे सुन्दर स्वागत मे मीठे-मीठे गीत गाता था।

(३) शब्दार्थ वन-देव=वन का स्वामी। कुसुमांजलि=फूलों की भेंट। नीर=पानी। दिव्य=सुन्दर, भव्य। आभा=शोभा चमक। उर=हृदय। बाल-विहग=पक्षियों के बच्चे। हेतु=लिये।

सरलार्थ किसी किसी विशाल एवं आकर्षक वृक्ष को देख कर उसे ही वन का स्वामी समझ कर उसके चरणों (जड़) पर आदर तथा प्रेम के साथ तेरे फूलों को चढ़ाता था। कभी तेरे फूलों को महानदी के जल मे फैलाकर और फिर तेरी भव्य आभा को देख कर, अपने हृदय में अत्यधिक प्रसन्न होता था। हे ढाक के फूल! कभी बालकों के खेलने के लिये तुझे पत्तों से तोड़-तोड़कर अपने साथ ले जाता था। वे बच्चे तेरी पंखड़ियों से पक्षियों के बच्चों की आकृति बनाकर उन बच्चों का बालक हृदय प्रसन्नता से फूला नहीं समाता था।

(४) शब्दार्थ मानस=हृदय। विधान=व्यवस्था।

सरलार्थ आज पुनः वही सुन्दर, सुखद बसंत, इस वन में छाया हुआ है। मैं भी वही पुराना व्यक्ति हूँ और यह पवित्र भूमि भी वही है। हम नहीं बदले हैं तो तू भी नहीं बदला है; तू भी वही पुराना है परन्तु यह बात स्पष्ट दिखाई नहीं देती आज तूने यह सुख देने वाला चरित्र किस कारण अपना रखा है। वह पुराना आनन्द मय, सुन्दर चित्र आज भी मेरे हृदय एवं नेत्रों को बार-बार स्मरण हो आता है। यद्यपि यह बात अभी थोड़े दिनों की ही है पर आज

यह बात बदल गई है। आज तो उसका रूप ही बदल गया है। यह कुछ आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि हे मित्र ! ब्रह्मा की व्यवस्था कुछ ऐसी ही अनोखी है; परिवर्तन शीलता है।

(५) शब्दार्थ- बास=सुगन्धि । सरसिज-सुमन=कमल-फूल। सुसौरभ=सुखद सुगन्धि। सौरभित=सुगन्धित। समीर=वायु। विकास=बढ़ना खिलना। किंवा=अथवा।

सरलार्थ एक वह भी समय था जब मैं तुझे देखकर यह कहता था। कि हे टेसू के फूल ! तू जितना देखने में सुन्दर प्रतीत होता है उतनी सुखद तुझमें सुगन्धि नहीं है। यह वायु, जो कि कमल-पुष्प की सुखद सुगन्धि से सुगन्धित है इसी कारण (सुगन्धि के अभाव के कारण) तेरी हँसी उड़ाती है। परन्तु स्वयं मेरा जीवन रूपी फूल आज मुरझा गया है, (दुखी, खिन्न है) आज उसमें पहले जैसी न तो सुगन्धि है और न वह पहले की भाँति विकसित ही हो पा रहा है। क्या मेरी ऐसी दीनावस्था को देखकर तुझे दया आरही है अथवा मेरी हीनता को देखकर यह व्यंग पूर्ण हँसी है।

(६) शब्दार्थ प्रखर=तेज। कुटज=कुरैया, कमल। तरुण=युवक। तरणि=सूर्य। लोनी=सलोनी, सुन्दर। लतिका=बेल। वृन्तच्युत=डाली से अलग।

सरलार्थ- हे टेसू के फूल ! जब बसंत बीत जायगा तब कोयल बोलना बन्द कर देगी और फिर तेज ग्रीष्म ऋतु आयगी। उस समय कुरैया, कचनार आदि के फूलों के समूह कुम्हला कर सूख जायँगे और दोपहर का तेज सूर्य सुन्दर बेलों को सुखा कर जला डालेगा। उस समय तू भी डाल से गिरकर इस भूमि को छोड़ देगा (हवा उड़ा ले जायगी) और फिर तू मुझसे विदा लेकर किसी दूसरे देश मे बहुत दूर चला जावेगा। वहाँ पर यदि तेरी भेंट भगवान से हो तो तू मेरी करुण-कथा को उन्हे सुनावेगा या नहीं ?

(७) शब्दार्थ आर्त त्राण=दुखियों के रक्षक। बुध=विद्वान, ज्ञानी। करुणा निधान=करुणा के खजाने, भगवान।

सरलार्थ हे टेसू के फूल! जब मैं अपनी दीनावस्था के बारे में सोचता हूँ तो मेरे नेत्रों में आँसू आ जाते हैं; यह बात मैं पूर्णतः सत्य कह रहा हूँ। कष्टों को दूर करने के लिये मैंने बहुत से प्रयत्न किये हैं, परन्तु सब बेकार रहे; एक भी तो काम नहीं आया। अब तो जीवन में एक ही भगवान रामचन्द्र जी की ही आशा है, जिनको कि वेद तथा विद्वान दुखियों के रक्षक कह कर बुलाते हैं। हे टेसू के फूल! वह करुणा के खजाने भगवान मुझ पर कब दया करेंगे? मेरे प्राण तो इस समय उनके बिना छटपटा रहे हैं।

कुररी के प्रति

(१) शब्दार्थ विहग विदेशी=परदेशी पक्षी। जी=मन। निज=अपने। खोतों=घरों, घोसलों। सानन्द=आनन्द के साथ। नीरव=शांत, मौन। छटिका=घड़ी, समय। गात=शरीर।

प्रसंग प्रस्तुत काव्य खंड में पांडेय जी कुररी पक्षी के करुण स्वर को रात्रि की नीरवता मे सुन कर उससे उसके पिछड़ जाने का कारण पूछते हैं:

सरलार्थ हे परदेशी पक्षी तू मुझे अपने मन की बात बता दे। तू इतनी देर से, इस रात के समय क्यों यहाँ आ रहा है, अपने साथी से तू कहाँ पिछड़ गया था। यहाँ गाँव के स्वतन्त्र मनुष्य बहुत पहले ही सो गये हैं और दूसरे पक्षी भी आनन्द के साथ अपने घोंसलों में सुख की नींद सो रहे हैं। केवल एक तू ही है जो इस शांत घड़ी में, शरीर से चितत हो उड़ रहा है। तू अपने साथी से कहाँ पिछड़ गया था और तुझे इतनी रात क्यों हो गई?

(२) शब्दार्थ माया=मोहक। प्रान्तर=स्थान, प्रान्त। चित्रित=बना हुआ। चारु=सुन्दर। सुरा=मदिरा, शराब। मरीचिका=मृग तृष्णा (हिरन रेगिस्ता मे जब प्यासा इधर-उधर भटकता है तो उसे बालू के कण, सूर्य की धूप में पानी के समान लहराते दिखाई देते हैं। हिरन अपनी प्यास बुझाने वहाँ दौड़ कर जाता है तो बालू ही दिखाई देती है पर फिर दूरी पर कण पानी

दिखाई देते हैं। इसी प्रकार हिरन भटकता फिरता है पर पानी नहीं पाता इसे मृग तृष्णा कहते है। यह केवल साहित्यकारों की कल्पना नहीं है अपितु विज्ञान की दृष्टि से भी सत्य है।) दिग्भ्रान्त=दिशा भूल कर। पथ प्रतिकूल=उल्टा मार्ग। प्रलोभन=लालच।

सरलार्थ हे कुररी! किसी अन्य रमणीक प्रान्त के सुन्दर किनारों को देख कर क्या तेरा मन किसी, मोह के जाल में फँस कर अपने आपको भूल गया था? अथवा अब उसकी सौन्दर्य रूपी मदिरा से तेरा हृदय ऊब गया था? या झूठी आशा ने तुझसे खूब अच्छी तरह छल किया है। किंवा दिशा भूल कर तूने विपरीत मार्ग अपना लिया था अथवा किसी लोभ-लालच में पड़ कर अपने ही को भूल गया था।

(३) शब्दार्थ अन्तरिक्ष=आकाश। अनवरत=लगातार। विलाप=रूदन। दारुण=कठिन, कष्ट कर। व्यथा=कष्ट। परिताप=खेद; पश्चाताप। गुप्त=छिपी। दुष्कृति=पाप। वियोग आग=विरहाग्नि। विपुल=बहुत अधिक।

सरलार्थ हे पक्षी! तू आकाश में लगातार रूप से रोदन क्यों कर रहा है? ऐसा क्या कठिन कष्ट तुझे है या तुझे किसी कार्य पर खेद हो रहा है? या किसी छिपे हुए पाप की याद तुम्हारे हृदय में जाग उठी है? अथवा अपने प्रेमी से अलग होने के कारण विरहाग्नि तुझे जला रही है, कष्ट दे रही है? तेरे इतने अधिक रोने को इस सूने आकाश में कौन सुनने वाला बैठा है? अर्थात् कोई नहीं। तू मुझे बता कि तुझे कौन सा कष्ट है और किस बात का। खेद अथवा पश्चाताप है?

(४) शब्दार्थ ज्योत्सना रजनी=चाँदनी रात। विषाद=दुख। निज=अपनी। विमल=पवित्र। व्योम=आकाश। मणियों के दीप=तारागण। इन्द्रजाल=मोहक। विभ्रम=भ्रम धोखा। उन्माद=पागलपन, उत्तेजना।

सरलार्थ क्या यह चाँदनी रात तेरे कष्ट को दूर नहीं कर

सकती है ? या तुझे अपने देश की याद सता रही है इसलिये तू दुखी है ? पवित्र आकाश में सुन्दर मणियों के दिए अर्थात् तारागणों को इन्द्रजाल समझ कर क्या तू उनके पास नहीं जाता है ? यह डर से पूर्ण तेरा कैसा भ्रम है और यह क्या पागलपन है ? या तू वहाँ इसलिए नहीं ठहरता कि तुझे घर की याद आ गई है ?

(५) शब्दार्थ आयास=कष्ट। आलोक प्रदान=उजाला करना। तटिनी=नदी। भू=पृथ्वी। स्निग्ध=शीतल। समीर=हवा। सुवास=सुगंधि।

सरलार्थ तू हमेशा कहाँ, किस दिशा में रहता है ? वह स्थान यहाँ से कितनी दूर है ? हे विदेशी पक्षी तूने यहाँ आने का कष्ट क्यों किया है ? जिस देश मे तू सदा रहता है उस देश में कौन से तारागण प्रकाश करते है ? उस पृथ्वी की नदी बताओ कौन सा गाना गाती है ? वहाँ कैसी ठंडी हवा चलती है और वहाँ की सुगंधि कैसी है ? हे पक्षी ! तूने यहाँ आने का कष्ट क्यों किया है ?

बलदेव प्रसाद मिश्र

जीवन परिचय मध्य प्रदेश में रायगढ़ रियासत के महाराजा चक्रधरसिंह के राज्यकाल मे दीवान के पद पर प्रसन्न थे। कुछ काल तक बिलासपुर आर्टस कालिज के प्रिंसिपल भी रहे थे। आजकल आप राजनन्द गांव में रह कर साहित्य-सृजन कर रहे है।

शैली आप केवल कोमल कल्पना के कवि ही नहीं हैं, अपितु एक उच्चकोटि के विद्वान एवं दार्शनिक भी हैं। यही कारण है कि आपके साहित्य मे जीवन का दर्शन भरा पड़ा है और उसमे गम्भीरता एवं गहता है। पाण्डित्यपूर्ण होनेके कारण आपके साहित्य को साधारण पाठक के समझने में कुछ कठिनाई होती है।

मिश्र जी की भाषा पर पूर्ण अधिकार है। विशयानुकूल भाषा लिखना आपकी विशेषता है। वर्णन शैली एवं भाषा, सरल, स्वाभाविक एवं सरल है जिसका हृदय पर अमिट प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत वीर एवं आज का वर्णन करते समय आपकी भाषा

पौरुष तथा उत्साह के भाव प्रगट करती है। इसके साथ ही साथ मधुरता एवं सरलता के भी आपकी भाषा में दर्शन होते हैं। देश के भटके युवकों के लिये आपकी कविता में एक स्थाई संदेश है।

प्रसिद्ध-ग्रन्थ जीवन-संगीत, कौशल-किशोर, तुलसी-दर्शन, साकेत-सन्त, असत्य संकल्प आदि।

नवयुवक

ऐ नौजवान..................अपने को तू।

शब्दार्थ महामहिम=श्रेष्ठतर। अमर-वृन्द=देवताओं के समूह। तरलइशारों पर=शांत संकेतों पर। बल-निधान=बल के खजाने।

प्रसंग प्रस्तुत पद्य हिन्दी के विद्वान कवि बलदेव प्रसाद मिश्र द्वारा रचित है। आज के निराश नवयुवकों में एक नई चेतना भरने के लिये कवि ने, उनको, उनमे निहित शक्ति का परिचय करा रहा है। नवयुक अपनी इस शक्ति को भुलाए बैठे हैं।

सरलार्थ हे नवयुवक! तू उस अमर गान को सुन जिसे तेरी आत्मा नित्य प्रति गा रही है। तू भली भाँति अपनी शक्ति को तथा अपने को पहिचान ले; तुझमे असीमित शक्ति है। हे श्रेष्ठ नवयुक! तू तो समुद्र के समान महाशक्तिशाली है तू अपने को बुल-बुलों के समान क्षुद्र तथा क्षणिक मत समझ। तेरे ही शांत संकेतों पर आज भी देवताओ के समूह जीवित है। तेरे ही विजय के नारों पर इतना विस्तृत आकाश अपने स्थान पर स्थिर है। आज संसार की आशाओं के छिन्न-भिन्न तार तेरी ही दृष्टि के कारण जुड़े हुए है अर्थात् संसार की आशा तुम्हारे ही ऊपर लगी हुई है। यदि तू आग में कूद पड़े तो जलाने वाले आग के अंगारों पर भी फूल खिल जॉय अर्थात् यदि तू कठिन कार्य करने के लिये सन्नद्ध हो जाय तो असम्भव भी सम्भव हो जाय। हे बल के खजाने! तू अपने मन में आश्चर्य-चकित होकर अपने को ही क्यों भूल रहा है? नवयुवक! तू उस अमर गान को सुन, जिसे तेरी आत्मा नित्य प्रति गा रही है।

तू भली भाँति अपनी शक्ति तथा अपने को पहिचान ले; तुझमें असीमित शक्ति है।

तू चाहे तो सागर.......................अपने को तू।

शब्दार्थ ऊसर=अनुपजाऊ, मरुस्थक। रज-कण=धूलि कण। धाये=दौड़े। विदलित=गिरा हुआ; पतित, दुखी। अमरों=देवताओं। विभु=सर्व व्यापक ईश्वर। प्रतिरूप=दूसरा रूप।

सरलार्थ हे नवयुवक! तुझमें इतनी शक्ति का भंडार है कि यदि तू चाहे तो अगाध समुद्र एक क्षण भर में सूखा मरु स्थल बन जाय। यदि तू चाहे तो धूलि के छोटे-छोटे कण पर्वत के समान विशाल बन जाँय और भूकम्पों के कारण पहाड़ भी हिलने लगे। यदि तू कामना करे तो इस पतित मृतलोक पर देवताओं का स्वर्ग उतर आये। हे नवयुवक! तू अपने को छोटा (हीन) मत समझ, तू तो सर्व व्यापक ईश्वर का ही दूसरा रूप है। हे नवयुवक! तू उस अमर गान को सुन, जिसे तेरी आत्मा नित्य प्रति गा रही है। तू भली भांति, अपनी शक्ति तथा अपने को पहिचान ले; तु झमे असीमित शक्ति है।

तुझमें अतति के.......................अपने को तू।

शब्दार्थ अतीत=भूतकाल, बीता हुआ। समग्र। सुफल=पुण्य, अच्छे परिणाम। सत्ता=अधिकार, हस्ती, अस्तित्व। उत्साह-कुञ्ज=उत्साह से सिकुड़े, उत्साह हीन, निराश। अखिल=सम्पूर्ण। धाम=घर। समता=समानता, बराबरी।

सरलार्थ हे नवयुवक भूतकाल के सभी पुण्य तुझमें निहित हैं और भविष्य के विकास तथा उन्नति के बीज भी तुझमें ही निहित हैं। तेरी ही शक्ति के कारण सभी निराश व्यक्ति भी उत्साही एवं प्रसन्नचित रहते हैं। हे नवयुवक! तू सम्पूर्ण शक्ति का घर है बता तेरी बराबरी करने वाला इस संसार में कौन है? अर्थात् कोई नहीं। ऐसा असम्भव कार्य इस संसार में कौन-सा है, जिसे तू नहीं कर सका हैं? अर्थात् सब कार्य तूने पूरे किये हैं और ऐसा स्थान कौनसा

है जहाँ पर कि तू नहीं है ? अर्थात् तू सर्व-व्यापक है। और तू क्या नहीं है ? अर्थात् सब कुछ है। हे संसार के जीवनाधार तू संसार को केवल एक बार अपने सच्चे रूप में दिखा दे। हे नवयुवक ! तू उस अमर गान को सुन, जिसे तेरी आत्मा नित्य प्रति गा रही है। तू भली भाँति अपनी शक्ति तथा अपने को पहिचान ले; तुझमें असीमित शक्ति है।

यह काँप उठे......................अपने को तू।

शब्दार्थ निष्क्रिय=निश्चेष्ट, कर्त्तव्य हीन। अनमोल=बहु-मूल्य, कीमती। जगवितान=संसार रूपी मंडप।

सरलार्थ हे नवयुवक ! यदि तू कहीं केवल इशारा मात्र कर दे तो विशाल संसार थर-थर काँपने लगे। यदि तू तनिक भी क्रोध करे तो आकाश के तारागण भी पृथ्वी पर आ गिरें। यदि तू दृढ़ होकर अपना ध्यान जमा दे तो पहाड़ भी टूट कर चूर-चूर हो जाँय तू अपने बहुमूल्य जीवन को इस प्रकार कर्त्तव्यहीन होकर क्यों बिताए दे रहा है। वेद तुझे ब्रह्म कहते हैं तो तू अपने को संसार का आधार बता। (यहाँ पर 'अहं ब्रह्मास्मि' की ओर संकेत है।) हे नवयुवक ! तू उस अमर गान को सुन, जिसे तेरी आत्मा नित्य प्रति गा रही है। तू भली भाँति अपनी शक्ति तथा अपने को पहिचान ले, तुझमें असीमित शक्ति है।

उठ सँभल......................अपने को तू !

शब्दार्थ जीवन-रण=जीवन रूपी युद्ध, कर्त्तव्य क्षेत्र। आघात=चोट, धक्का। दग=नेत्र। मात=हार। विजय-मंगल-निधान=सुन्दर कल्याण का भण्डार।

सरलार्थ हे नवयुवक ! तू अपनी शक्ति को पहिचान ले और फिर सँभल कर उठ, संसार में ऐसा कौन सा कार्य है जो तेरे लिये असम्भव है ? अर्थात् कोई भी कार्य तेरे लिए ऐसा नहीं जिसे तू पूरा न कर सके। तू संसार से विलग हो कर सो रहा है पर संसार में कर्त्तव्य पालन की चोट तुझे बार-बार जगा रही है। तू नेत्र खोल

कर (सँभल कर) आगे आकर बढ़, इस संसार में ऐसी कौन सी शक्ति है जो तुझे हरा सके ? अर्थात् कोई नहीं। कवि कहता है कि मुझे यह सोच कर महान आश्चर्य हो रहा है कि हे महान योद्धा (हनुमान) तुझे अपनी ही शक्ति का ज्ञान नहीं है। एक बार फिर तू उठ। इस बात को मत भूल कि तू सुन्दर कल्याण का घर है। हे नवयुवक ! तू उस अमर गान को सुन, जिसे तेरी आत्मा नित्य प्रति गा रही है। तू भली भाँति अपनी शक्ति तथा अपने को पहिचान ले, तुझमें असीमित शक्ति है।

सीताजी का जन्म

(१) शब्दार्थ- विज्ञ=विद्वान, ज्ञानवान। भावी=भविष्यमें होने वाला। महामख=महायज्ञ। शुचि=पवित्र। उद्भव=जन्म, आरम्भ। रण=युद्ध। तामसी=क्रोध पूर्ण। गरिमा=गर्व, अभिमान।

प्रसंग प्रस्तुत पद्यांश श्री बलदेवप्रसाद द्वारा रचित है। यहाँ पर सीता जी के जन्म की कथा का वर्णन करने के लिये भूमिका बाँधता हुआ कवि कहता है

सरलार्थ श्रोताओं तथा पाठकों को सम्बोधन करता हुआ कवि कहता है ज्ञान वान भगवान राम एवं सीता से सम्बन्धित, जो एक पवित्र महायज्ञ आरम्भ होने वाला है उसके बारे में आप सुनिये। जिसके लिये बहुत ही भयानक राक्षसों का युद्ध होगा, जिसमें कि सम्पूर्ण क्रोध पूर्ण घमण्ड जल कर नष्ट हो जायगा।

(२) शब्दार्थ विस्तीर्ण=फैली हुई, विस्तृत, लम्बी-चौड़ी। सुर=देवता। शङ्का=भय, डर। अमर-विमर्दक=देवताओं को नष्ट करने वाली। त्रिभुवन-विद्रावण=तीनो लोकों को डराने वाला। असुराधिप=राक्षसों का स्वामी या राजा।

सरलार्थ हमारे देश (भारतवर्ष) के दक्षिण में एक बहुत ही विस्तृत नगरी है, जिसका नाम लङ्का है। अत्याचारी दानवों का

निवास होने के कारण, वह नित्य-प्रति देवताओं के मन में भय उत्पन्न करती रहती है। उस लङ्का मे देवताओं को नष्ट करने वाला तथा तीनों लोकों को डराने वाला, राक्षसों का स्वामी दुष्ट रावण अपने कुटुम्ब के साथ रहता है।

(३) शब्दार्थ आर्य=श्रेष्ठ, हिन्दुओं की सभ्य प्राचीन जाति। शोणित धारा=खून, रक्त की धारा। भूप=राजा। चक्र=कुचक्र, बुरी चाल। अनार्य= (अन+आर्य) वह जो आर्य नहीं है, म्लेच्छ। अनार्य दक्षिण भारत की एक जाति है।

सरलार्थ आर्य जाति यहां (लङ्का में) नहीं आई। नहीं तो रक्त की धारा (युद्ध के कारण) बहती। भारतवर्ष ने तो राज भरतको ही बहुत प्रिय समझा। परन्तु इस दुष्ट रावणने ऐसीकुचालें चलीं जिसके कारण कि आज तक आनार्य जाति हमें (आर्यों को) अपने से अलग समझती है।

(४) शब्दार्थ यूथ=समूह। निशा चर=रात्रि मे चरने वाले, राक्षस। विप्लव=उपद्रव, विनाश। दमन=दण्ड, बाना।

सरलार्थ यद्यपि वह रावण लङ्का का राजा है परन्तु फिर भी भारतवर्ष में आकर राक्षसों के समूह बढ़ाये जा रहा है। वे दुष्ट एवं अत्याचारी राक्षस भारतवर्ष में आ कर विनाश कर रहे हैं, उन्होंने उपद्रव मचा रखा है। वे इतने बलशाली थे कि दक्षिण भारत के अधिकारी-गण उन्हें दण्डित कर दबा नहीं सके।

(५) शब्दार्थ- पराकाष्ठा=सीमा, अधिकता। उच्छृङ्खलता= नीचता, छिछोरापन। संहार=मृत्यु, नष्ट। इन्द्रिय=सौख्य-प्रचार इन्द्रियों के सुख-भोगकर विलास आदि। बाना=उद्देश्य, रूप, प्रण।

सरलार्थ राक्षसों के अत्याचारों कीअधिकतम सीमा दिखला दी अर्थात् अत्याधिक अत्याचार किये। सम्पूर्ण दिशाओं में उन्होंने नीचता फैला दी। मुनियों को मारना, धर्म मंदिरों को तुड़वाना, भोग विलासादि का प्रचार करना यही उनका उद्देश्य था।

(६) शब्दार्थ तपोवन=तपस्या करने का स्थान। दारिद्रय=

निर्धनता। निज=अपना। निशिचारी=राक्षस।

सरलार्थ एक बार उन राक्षसों ने कुछ दूत तपोवन में, मुनियों से अन्यायपूर्ण कर मांगने के लिये भेजे। जब ऋषि-मुनियों ने अपनी निर्धनता का वर्णन किया तो, दुष्ट राक्षस कहने लगे कि अपने शरीर का खून ही दे दो कर नहीं है तो।

(७) शब्दार्थ असुर हठ=राक्षसों की जिद। क्षुब्ध=दुखित। सकल मुनीश्वर=सभी महर्षि एवं मुनिगण। रुधिर=रक्त, खून। सुजावें=अपनी सुन्दर जाघें। सुत=पुत्री, कन्या। प्रगटावेगा=प्रगट करेगा, उत्पन्न करेगा।

सरलार्थ राक्षसों हठ हठ को देखकर सभी ऋषि-मुनि अत्यन्त दुखित हुए। और अंत में दुखी होकर अपनी सुन्दर-सुन्दर जंघाओं को चीर-चीर कर रक्त राक्षसों को दिया। रक्त देते समय उन्होंने राक्षसों से कहा 'इस रक्त से ऐसी पुण्यात्मा कन्या (सीता जी) का जन्म होगा, जिसके कारण राक्षसों का सम्पूर्ण वंश ही नष्ट हो जावेगा।'

(८) शब्दार्थ दहल=भयभीत, डरे।

सरलार्थ दुखित ऋषि-मुनियों की दुखभरी आह जब उनके हृदय से शाप के रूप मे निकली, तो राक्षसों के भी हृदय भयभीत हो गये। उस समय जब वहां पर उनको कोई दूसरा उपाय न सूझा तो रक्त से भरा घड़ा तथा यह अभिशाप का समाचार शीघ्र ही लङ्का में रावण के पास पहुंचा दिया।

शब्दार्थ ब्रह्मतेज-भयभीत=ब्राह्मणों के तप तथा तेज से डर-कर। असुरपति=राक्षसो का स्वामी, रावण। घट=घड़ा। सत्वर=शीघ्र ही तुरन्त। मिथिला=जनकपुरी।

सरलार्थ ब्राह्मणों के तेज से भयभीत रावण ने जब उपरोक्त समाचार सुना तो उसी समय दूतों से कहा 'इसी समय शीघ्र ही दूइस घड़े को हटा दो।' इस प्रकार की आज्ञा पाकर दूत लोग बहुत र जनक पुरी में पहुंच कर उसे (घड़े को) एक खेत में गड्ढा खोद

कर गाड़ दिया और स्वयं फिर लौट आये।

(१०) शब्दार्थ सहसा=अचानक, यकायक। मुनिगण रक्त=मुनियों का रक्त। धरित्री=पृथ्वी। रंग और ही=अनोखा दृश्य। अखिल=सम्पूर्ण, सारी। द्रुम=वृक्ष, पेड़। आतपवश=गर्मी के कारण। सरस द्रव्यादक=(द्रव+यादक) द्रव पदार्थ रस आदि का भोजन करने वाले वृक्ष आदि।

सरलार्थ जब पृथ्वी ने अचानक मुनिगण का रक्त पाया तो सारे जनकपुर में एक दूसरा ही वातावरण बन गया। वर्षा होना बन्द हो गया, घास-पात, खेती, बेल, वृक्ष आदि सभी सूख गये। गर्मी की अधिकता के कारण सरस पेड़ आदि भी सूख गये।

(११) शब्दार्थ कूप=कुएँ। जलहीन=पानी रहित। पङ्कमय=कीचड़ से भरे। सकल=सभी। अवशिष्ट=बाकी, शेष। सरितायें=नदियाँ। प्रतप्त=प्रचण्ड रूप से तपने लगी। धूलिधर=धूल के तूफान, आँधी। अति चंड=बहुत तेज, प्रचण्ड। मृग-तृष्णा=देखिए मुकुटधर पाण्डेय के कुररी के प्रति पाठ के २ पद में।

सरलार्थ कूओं का पानी सूख गया, सभी तालाब पानी के अभाव में कीचड़ से भर गये। नदियों के सूख जाने के कारण बालू में अब केवल मृग-तृष्णा (झूठी आशा) ही शेष रह गई। पृथ्वी बहुत गर्म हो गई और उस पर अब धूल की आंधी चलने लगी और गर्म हवा (लू) अत्यन्त तेजी से अग्नि की वर्षा सी करने लगी।

(१२) दवानल=जंगल में लगने वाली आग। विपिन=वन। त्रास=दुखी। व्याथित=व्याकुल, दुखी। मनुजों=मनुष्यों। भव्य=सुन्दर, अलीशान। भवन=घर, महल।

सरलार्थ क्षण भर में ही सारे वन में आग लग जाती थी और प्यास के दुख के कारण सभी जीवों का धीरज समाप्त हो जाता था। सभी जीव-जन्तु एवं प्राणि मात्र दुखित होकर अपने प्राणों की रक्षा के लिये दौड़े। अपने प्राणों की रक्षा के लिये मनुष्यों ने भी अपने-अपने आलीशान घरों एवं महलों को भी छोड़ दिया।

(१३) शब्दार्थ —त्राहि-त्राहि=रक्षा करो, रक्षा करो। परम कारुणिक=बहुत अधिक करुणा तथा दया से पूर्ण। प्रजा प्रियंकर= प्रजा के प्रिय।

सरलार्थ -सब ओर भयंकर अकाल पड़ जाने के कारण सभी स्त्री-पुरुष मरने लगे। और सम्पूर्ण दिशाओं से आवाज आने लगी कि 'रक्षा करो', 'रक्षा करो'। प्रजाके प्रिय राजा जनक ने जब यह अत्यन्त करुण दृश्य देखा तो बहुत अधिक चिन्तित होकर वे सोचने लगे---

(१४) शब्दार्थ- आहुति=होम, नैवेद्य। सामस्वर=सामवेद की ऋचायें। श्रौत धर्म=वैदिक धर्म

सरलार्थ राजा जनक सोच रहे है 'मेरे राज्य में देवतागण सदैव ही संतोषपूर्ण होम-नेवेद्य आदि पाते थे। और ऋषि-मुनि भी स्वतन्त्रता पूर्वक सामवेद के मधुर गीत गाते थे। मेरे राज्य में अन्याय तो तनिक भी नहा था अर्थात् बिलकुल नहीं था। सभी मानवों के हृदय मे वैदिक धर्म अपनी शोभा छाये हुये था अर्थात् सभी लोग वैदिक धर्म के अनुयायी थे।'

(१५) शब्दार्थ वैभिन्य=विभिन्नता, समंजस (सामंजस्य)= मिलाना, उचित' सौख्यसना=सुख से डूबा।

सरलार्थ- 'मेरे राज्य में सभी व्यक्ति अपनी इच्छानुकूल मार्ग चुन कर धर्म के कार्यों में सदैव लीन रहते थे। मेरे राज्य में समता थी और विभिन्न प्रकार के सुख से सनी हुई (डूबी हुई) जनता में मेल (संगठन) था। इस प्रकार मेरा राज्य पूर्ण रूप से एक आदर्श (श्रेष्ठ) राज्य था।'

(१६) शब्दार्थ -समग्र सृष्टि=सम्पूर्ण संसार।

सरलार्थ 'जब मेरा राज्य श्रेष्ठ था फिर ईश्वरीय क्रोध इस पृथ्वी पर क्यों हुआ? जिसके कारण इस पृथ्वी की यह बुरी (दयनीय) अवस्था हो रही है। मेरे प्राणों से भी प्रिय प्रजा 'रक्षा

करो', 'रक्षा करो' चिल्ला रही है। पानी के अभाव में सारा संसार बहुत ही कष्ट में है।

(१७) शब्दार्थ दुर्दैव=दुर्भाग्य। अविलम्ब=शीघ्र ही।

सरलार्थ 'मेरी प्रजा का दुख कैसे दूर हो और वह कैसे सुख पा सकती है? किस प्रकार उसके ऊपर आया यह दुर्भाग्य हटाया जा सकता है' राजा जनकने यह विचार शीघ्र ही अपने गुरु जी के पास जाकर कहे। गुरु जी ने इसका सुन्दर उत्तर इस प्रकार दिया।

(१८) शब्दार्थ अलभ्य=जो प्राप्त न हो सके। सद्वस्तु (सद्+ वस्तु)=अच्छी वस्तु। अवर्षण=वर्षा का न होना, सूखा।

सरलार्थ गुरुदेव ने उत्तर दिया 'हे राजन्! यदि तुम अपने हाथों में हल लेकर स्वयं पृथ्वी जोतोगे तो तुमको एक न प्राप्त होने वाली बहुत अच्छी वस्तु मिलेगी। और अत्यधिक वर्षा होगी और सूखा पूर्ण रूप से समाप्त हो जायगी। इस पूरे लोक मे जहाँ प्राणी रहते हैं हरी-भरी खेती हो जायगी।

(१९) शब्दार्थ हेम=सोना। वितरित-नव-हर्षा=नवीन प्रसन्नता का प्रसार हो गया। सत्वर=तत्काल, शीघ्र।

सरलार्थ गुरुजी के वचनों को सुनकर राजा जनक अत्यधिक प्रसन्न होकर अपने खेतों पर गये। सोने का हल बनवाकर स्वयं वहाँ हल जोतने लगे। उसी समय सूखा समाप्त हो गई और चारों ओर एक नया उल्लास (प्रसन्नता) फैल गया। तत्काल वर्षा सुन्दर तथा सुखद रूप धरकर पृथ्वी पर आई।

(२०) शब्दार्थ स्थावर=अचल, जड़। जङ्गम=चल, चेतन। सौख्य पगी=सुख में डूब गई। मलिनता=उदासीनता, कष्ट।

सरलार्थ वर्षा होने के कारण सभी तालाब पानी से भर गये और सभी प्राणियों के कष्ट दूर हो गये। राजा जनक के राज्य की सभी चल और अचल प्रकृति अत्याधिक सुखी हो गई। इस सुखद दृश्य को देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुये तथा मन की सारी उदासीनता

को छोड़कर और भी उत्साहित होकर राजा जनक भूमि जोतने लगे।

(२१) शब्दार्थ हल आघात=हलकी चोट। स्वपति=अपने स्वामी।

सरलार्थ हल जोतते-जोतते राजा जनक वहाँ पहुँच गये जहाँ पर कि वह रक्त का भरा घड़ा गड़ा हुआ था। घड़े में हल की चोट लगते ही ठनाठन शब्द हुआ। पृथ्वी ने अपने स्वामी राजा जनक को वह प्यारा घड़ा। भेंट किया उस घड़े में अत्यन्त शोभाशाली कन्या (सीताजी) विराजमान थीं।

(२२) शब्दार्थ दिव्य=दैवी, सुन्दर। अलक्षित=अदृश्य। मङ्गल=कल्याणकारी।

सरलार्थ यकायक चारों ओर एक अद्भुत शोभा सी फैल गई। प्रकृति की वस्तुओं में एक नई ही चमक भर गई। अदृश्य कोमल कंठों से कल्याणकारी गीत सुनाई पड़ने लगे और जंगल में ही विभिन्न प्रकार के मनमाने उत्सव (खेलकूद) होने लगे।

(२३) शब्दार्थ भूपवर=श्रेष्ठ राजा। माधुरी मूर्ति=सुन्दर स्वरूप। मनोज्ञ=सुन्दर। श्री शाली=शोभापूर्ण।

सरलार्थ राजा जनक शीघ्र ही प्रेम के साथ उसे अपने महलों में ले आये और उसका नाम 'सीता' रखकर विभिन्न प्रकार के संस्कार (मांगलिक कार्य) कराये। वही अच्छे गुणों से पूर्ण सुन्दर तथा ओरवी मूर्ति राजा जनक के महलों को सुन्दर तथा शोभा पूर्ण बना रहा है।

द्वारिका प्रसाद मिश्र

जीवन-परिचय मिश्र जी उत्तर प्रदेश के रहने वाले हैं। रामपुर एवं जबलपुर में बी० ए०, एल० एल० बी० तक शिक्षा प्राप्त की। आप बचपन से ही देश सेवा में लीन रहते थे। फलस्वरूप मध्य-प्रदेश के गृह-मन्त्री पद पर आसीन हो चुके हैं। आज कल कांग्रेस से मत भेद होने के कारण आप समाजवादी पार्टी के सदस्य हैं।

शैली 'कृष्णायन' महाकाव्य की रचना करके अपने हिन्दी-साहित्य को एक अद्भुत देन दी है। इनसे पूर्व जितनी भी कृष्ण पर रचना की गई थी, वह सब व्रज भाषा में थी। मिश्रजी ने सब प्रथम अवधी भाषा में कृष्ण काव्य की रचना की। यह दोहा, चौपाई, सोरठा की शैली में लिखा गया प्रथम कृष्ण सम्बन्धी महाकाव्य है। राष्ट्रीय विचारों तथा वातावरण में रहने के कारण आपने इस ग्रन्थ में राष्ट्रीयता कूट-कूट कर भर दी है। पौराणिक संस्कृति के तत्व पूर्ण रूप से निहित है। इस महाकाव्य में रामचरित मानष की भी सरसता तथा जातीय जीवन का प्रदर्शन है। रामचरित की भांति महा काव्य हमें युग-युग तक प्रेरणा देता रहेगा।

कवि के साथ-साथ मिश्रजी भी एक सफल गद्य लेखक तथा वक्ता भी हैं। आपकी-विद्वता और साहित्य सेवा पर सागर विश्व-विद्यालय ने आपको 'डाक्टर' की उपाधि प्रदान की है।

कृष्णायन की प्रस्तावना

सोरठा जन्मेउ ··· ·· ··········· तनय।

शब्दार्थ बंदिनि-तनय = परत-भारत-माता का पुत्र।

प्रसंग प्रस्तुत सोरठा हिंदी के यशस्वी कवि श्री द्वारका प्रसाद मिश्र द्वारा रचित 'कृष्णायन' महाकाव्य के आरम्भिक भाग से उद्धृत किया गया है। भारतीय परम्परानुसार कवि अपने इष्टदेव की प्रार्थना करता हुआ ग्रन्थ का आरम्भ करते हुए कहता है:

सरलार्थ जिसने जगत् माता का उद्धार करने के लिये, कारागृह में जन्म लिया है; मैं परतन्त्र तथा परतन्त्र-भारत-माताका पुत्र अर्थात् कवि द्वारिका प्रसाद मिश्र उन्हीं कृष्ण भगवान की वंदना करता हूँ (अन्था के परतन्त्र था) आरम्भ काल मे कवि जेल में था और अपना देश।

जेहि संसृति ··········· प्रथम हरि।

शब्दार्थ संस्कृति = सृष्टि, संसार। रस-आगार = हरसों का घर

सरलार्थ जिन भगवान ने अपनी लीलाओं का प्रदर्शन करने के लिये इस संसार का प्रसार किया है, उन्हीं नौ रसों के भंडार, श्रेष्ठतम् कलाकार भगवान् कृष्ण की मैं सबसे पहले वंदना करता हूँ।

रच्छे श्रुति.......................स्वयम्।

शब्दार्थ रच्छे=रचा की (शु० रचे)। श्रुति=वेद। कलि-वारिधि=कलियुग रूपी समुद्र।

सरलार्थ- अब अमर मुनि वेदव्यास की वंदना करते हुए कवि कहता है:

कलियुग रूपी समुद्र में डूबता देखकर, जिन वेदव्यास जी ने वेद और भारत के इतिहास को रचा की, उन ज्ञान की प्रतिमूर्ति स्वयं भगवान कृष्ण को मैं वंदना करता हूँ।

वंदहु तुलसीदास.......................काव्यजल।

सरलार्थ रवि-भासित-ज्ञान-घन=सूर्य के समान तेजवान, और बादलों के समान ज्ञान के भण्डार। महि=पृथ्वी।

सरलार्थ कवि अब तुलसीदास जी की वन्दना करता हुआ कहता है मैं उन तुलसीदास जी की वंदना करता हूं जो कि सत्य ही हिन्दी-साहित्याकाश में सदा सूर्य के समान प्रकाशवान् हैं और बादलों के समान असीमित ज्ञान के भण्डार हैं जिस प्रकार बादल सदैव आकाश में तो निवास करते हैं पर पृथ्वी पर झुककर जल की वर्षा करते हैं उसी प्रकार महात्मा तुलसीदास सदैव भगवान् की भक्ति में डूबे रहकर भी संसार के सम्मुख विनम्र होकर अपने काव्य को प्रस्तुत करते हैं।

युग-युग.......................हरि-यश-मयी।

शब्दार्थ भुक्ति=भोग। मुक्ति=मोक्ष। हरि-जननी=भगवान् कृष्ण की जन्मभूमि। हरि-यश-गायी=भगवान के यश से पूर्ण।

सरलार्थ -वह भारत-भूमि जो कि भगवान् कृष्ण की जन्म-भूमि है, जो कि भगवान के गौरव पूर्ण कार्यों के कारण आज भी यश पूर्ण है, जिसने अनन्त काल से भगवान के चरण स्पर्श किये हैं,

(भगवान ने अनेकों रूपमें भारतवर्ष में अवतार लिया है)। जिसने उनके द्वारा सांसारिक सुख प्राप्त किये हैं, मुक्ति प्राप्त की है तथा प्राप्त की है संसार में विजय ऐसी भारत माता को मैं प्रणाम करता हूं।

दोहा सुरसरि........................ यश गान।

शब्दार्थ सुरसरि-हृत-पद्-पद्म रज=गंगा नदी द्वारा लाई हुई भगवान् विष्णु के चरणों की धूल। चरणोदक=चरणों का धोया हुआ जल। उदधि= समुद्र।

सरलार्थ भारतवर्ष की पवित्र-भूमि की रचना, गंगा नदी-द्वारा लाई हुई भगवान् विष्णु के चरणों की धूल से हुई है और समुद्र भगवान् के चरणों का धोया हुआ एकत्रित जल है, जो लहरा कर ईश्वर का यश गाता है।

चौपाई मनजहु .... भगवाना।

शब्दार्थ मनुजहु=मनुष्य भी। वारि=जल। प्रजाता=जन्म लिया है। हरिनता=भगवान की भक्ति।

सरलार्थ मनुष्य भी उसी भगवान की धूल एवं पानी से उत्पन्न हुआ है। भगवान से उसकी भक्ति स्वभावतः स्थिर रहती है। जो व्यक्ति सांसारिक भोग-विलास की भावना का त्याग कर भगवान की भक्ति करते हैं वह परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

सौंपि प्रभुहिं ....हमारी।

शब्दार्थ कर्मज=कर्मों से उत्पन्न। गत=समाप्त।

सरलार्थ मनुष्य यदि कर्मों से उत्पन्न सभी फलों को भगवान को सौंप देता है तो वह पाप-पुण्य रहित होकर सुखमय जीवन व्यतीत करता है। इसलिये जब सम्पूर्ण संसार भोग-विलास में लीन है तब हमारी जन्म भूमि (भारतवर्ष) ही अकेली कर्म-भूमि है। अर्थात् भारतवासी भोग विलास में लीन न होकर कर्म पर ध्यान देते हैं।

संचित पुण्य........................ ......निर्वाण।

शब्दार्थ निर्वाणा=निर्वाण पद की प्राप्ति, मोक्ष (यह बौद्ध

धर्म का शब्द है।)

सरलार्थ इस भारत-भूमि पर कोई प्राणी जब तक जन्म नहीं पा सकता जब तक के उसके अतीत के पुण्य एकत्रित न हो पाये हों। यद्यपि देवतागण भाँति-भाँति के सुख भोगते हैं पर उन्हें भी स्वर्ग, मोक्ष तथा निर्वाण पद की प्राप्ति नहीं हो पाती। जबकि भारत वासियों को वह स्वभावतः प्राप्त हो जाती है।

क्षीण पुण्य..................महि आयी।

शब्दार्थ भव-पाशा=संसार का जाल,। रिझायी=प्रसन्नकर,।

सरलार्थ जिनके पुण्य क्षीण (निर्बल) हो जाते हैं तथा सुख एवं वैभव समाप्त हो जाता है, उनको फिर से संसार का जाल (आवागवन का फंदा) अपने वश मे कर लेता है। इसी कारण जब तब भगवान् को सन्तुष्ट करके देवतागण पवित्र भारत-भूमि पर जन्म लेते हैं।

दोहा : जानि आत्मजा............भूमि भगवान।

शब्दार्थ- अर्पित=न्यौछावर कर। निर्गुण निराकार। सगुण=साकार।

सरलार्थ जब भगवान यह जान लेते हैं कि पुत्री (भूमि) ने मेरे चरणों से अपना शरीर, मन एवं प्राण न्यौछावर कर दिये हैं। अपने चरणों में जब यह देखते हैं तो निराकार (बिना शरीर वाले) भगवान भी साकर (शरीर वाले) भगवान बन जाते हैं। पृथ्वी फिर भगवान को साकार रूप में ही देखती है।

चौपाई : जन्म हेतु.................विश्वेशा।

शब्दार्थ जन-त्राणा=जीव रक्षा। युगोचित=समय के अनुकूल। विश्वेशा=विश्व के स्वामी; भगवान।

सरलार्थ भगवान के जन्म का कारण कभी तो जीव रक्षा होता है और कभी समय के अनुकूल ज्ञान देना होता है। इस भारत भूमि में जो भी कुछ पुण्य कर्म है वह सब हे भगवान आपके ही दिये हुए हैं।

जबहिं म्लेच्छ ....जन त्राता।

शब्दार्थ नसावहिं=नष्ट करें। हरिहि=भगवान को। जन-त्राता=जन-रक्षक।

सरलार्थ जब दुष्ट नीच लोग भारत पर हमला करके विजयी हो जाते और यहाँ की सभ्यता, रहन-सहन, धर्म तथा सुन्दर नीति-रीति आदि को नष्ट करने लगते हैं; फलस्वरूप भारत माता ईश्वर को स्मरण करती है, उसे रक्षा के लिये पुकारती है, तब-तब प्राणिमात्र के रक्षक भगवान इस भूमि पर जन्म लेते हैं।

ये अंशन .... व्रज धारा।

शब्दार्थ अंशन=अपूर्ण, कुछ कलाओं वाले (पूर्ण कलाओं सहित नहीं।) ईशता=प्रभुत्व, ईश्वरता, बड़प्पन।

सरलार्थ भगवान के ऐसे अवतार अंशअवतार (अपूर्ण कला वाले) कहलाते हैं। इन अवतारों में भगवान अपनी कुछ-कुछ महानता तथा बड़प्पन का प्रदर्शन करते हैं। भगवन ने जब कृष्ण के रूप में व्रज-भूमि में जन्म लिया था तभी वह अपनी पूर्ण कलाओं (सोलहों कला) सहित प्रगट हुये थे।

प्रकटे भुवन ....प्रभु दीन्हा।

शब्दार्थ भुवन-विमोहन=संसार को मोहित करने वाले! वेषा =रूप। अभय=निडर। खल-शिक्षण=दुष्टों को शिक्षा। धरणिहि =पृथ्वी को।

भगवान कृष्ण संसार को मोहित करने वाले रूप में प्रकट हुए और संसार को निडर होकर जीवन व्यतीत करने का संदेश दिया। दुष्ट लोगों को दंड देकर दया भाव रखने की शिक्षा दी और भक्त लोगों की रक्षा की। और पृथ्वी की रक्षा का भार भगवान ने धर्म राज को सौंप दिया।

दोहा भयेउ कला..................मति अनुसारा।

शब्दार्थ विमल=पवित्र।

सरलार्थ श्री कृष्ण भगवान का अवतार सोलहों कलाओं सहित

हुआ था। पूर्ण ब्रह्म भगवान कृष्ण के पवित्र यश का वर्णन मैं अपनी बुद्धि के अनुसार करता हूँ।

चौपाई :-- ज्ञान ध्यान..................परिछाहीं।

शब्दार्थ मम=मेरे। अचल=दृढ़। मूल=प्रधान, मौलिक। गहि=पकड़ कर।

सरलार्थ- मेरे पास न तो ज्ञान-ध्यान है; न दृढ़ भक्ति है और न शक्ति तथा विश्वास ही है। मेरी कविता में कुछ मौलिक भाव भी नहीं हैं; मैं तो अपने पूर्वज कवियों की परछाईं ग्रहण कर चलना चाहता हूँ अर्थात् उनका अनुकरण करना चाहता हूँ।

तुलसी शैलिहि......................मैं सारे।

शब्दार्थ रस-पागी=सरस, मधुर।

सरलार्थ कवि शिरोमणि तुलसीदास जी की वर्णन शैली मुझे बहुत ही अच्छी लगी और उनकी भाषा, जोकि निर्विवाद सरस एवं मधुर है- -को मैंने अपनाया है। महात्मा सूरदास जी के पदों के प्रकाश से मैंने कृष्ण भगवान के सम्पूर्ण बाल-चरित्रों का वर्णन किया है। अर्थात् उनका अनुकरण किया है।

जद्यपि धोय..................अभिमाना।

शब्दार्थ--कतहुं=कहीं भी। मधुप-स्वभाव-भौंरे का स्वभाव, गुण ग्राहकता। अकिंचन=तुच्छ।

सरलार्थ यद्यपि मैंने जिस उद्देश्य विशेष को अपने सम्मुख रखकर इस काव्य की रचना की है, उसे मैंने कहीं भी नहीं छोड़ा है; परन्तु फिर भी मुझे भौंरे का स्वभाव अच्छा लगता है; अर्थात् बीच-बीच में दूसरों के गुणों को अपनाया है। मैं प्रार्थना करता हूँ कि विद्वान लोग मुझे तथा इस काव्य-ग्रन्थ को तुच्छ समझ कर क्षमा करें। मेरे हृदय में काव्य-रचना करने का तनिक भी अभिमान नहीं है।

एक यहहि.....................मम संता।

शब्दार्थ आद्यन्ता=आद्योपान्त, आरम्भ से अन्त तक।

सरलार्थ बस मेरी केवल एक यही इच्छा है कि लाखों-करोड़ों जन, भगवान कृष्ण के यश का श्रवण करें। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इसे आरम्भ से अन्त तक पढ़कर तथा भली भाँति समझकर मेरे सम्पूर्ण दोषों को सज्जन पुरुष क्षमा कर देंगे।

दोहा दण्डनीय अपराध..................सन काम।

शब्दार्थ दण्डनीय=दण्ड देने योग्य। अपराध=दोष। वन्दनीय=पूजा करने योग्य। रूचत नहि=प्रिय नहीं है।

सरलार्थ यदि मेरे दोष दण्ड देने योग्य हैं तो भगवान का नाम तो वंदना करने योग्य है। जिन लोगों को भगवान के जीवन-चरित्र से प्रेम नहीं है; मुझे उनमे कोई भी काम नही है अर्थात् जो लोग केवल मेरे दोषों की ही ओर देखते हैं, भगवद्भक्ति की ओर नहीं; मुझे उनकी तनिक भी चिन्ता नहीं है।

चौपाई जिनहिंन ....अभिलाषी।

शब्दार्थ संस्कृति=सभ्यता, रहन-सहन का ढंग। गरल=जहर। जीवन-तरुहिं=जीवन रूपी वृक्ष को। समूल=जड़ सहित।

सरलार्थ जो व्यक्ति अपने धर्म और संस्कृति से अनभिज्ञ (अपरचित) है तथा जिन्हे शास्त्र औरपुराण जहर के समान कड़ुये (बुरे) लगते हैं और फिर भी वे अपने जीवन में नये बीच बोने के इच्छुक हैं नये कार्य करना चाहते हैं; ऐसे व्यक्ति अपने जीवन-रूपी वृक्ष को जड़-सहित-पूर्णतः नष्ट कर देना चाहते हैं।

उदधि-पार..................समपर्ण।

शब्दार्थ उदधि-पार के=समुद्र पार के, पश्चिम के। धरतशीश=स्वीकार करते है। प्रसाद=तपस्या का फल। समर्पण=चढ़ाना।

सरलार्थ पश्चिम के नित नए बनने वाले वादों (सिद्धान्तों) नास्तिकता को पुण्य फल समझ कर जो स्वीकार करते हैं, शरीर के साथ-साथ जिनका मन भी दूसरों के वश में हो गया है अर्थात् परतन्त्र होने के साथ-साथ जो उनके विचारों की भी नकल करने

लगे हैं और जिन्होंने दूसरों के चरणों पर अपना आत्म समर्पण कर दिया है।

नात पुरातन..........................नहिं जाथी

शब्दार्थ पुरातन=पुराना। प्रयास=प्रयत्न। परम्परा-प्रिय=पुरानी चली आती हुई।

सरलार्थ जिन लोगों ने अपने पूर्वजों के विचारों से बिलकुल सम्बन्ध तोड़ दिया है और नये विचारों में रंग गये हैं, यह मेरा प्रयत्न उनकी भलाई के लिये नहीं है मुझे प्राचीन काल से चली आती हुई बुद्धि मिली है और अब मुझसे वह पिता से प्राप्त (पूर्वजों की देन) छोड़ी नहीं जाती है।

करि तप...... ....नवधारी।

शब्दार्थ लहेउ=प्राप्त किया। निष्प्राण=निर्जीव। नववारी =नया पानी।

सरलार्थ कठिन तप-वृत करके ऋषियो ने जो ज्ञान प्राप्त किया था वह अभी निर्जीव नहीं हो गया है अर्थात् अभी उसमें जीवन है। वह सब अभी हमारे हृदयों में बीज रूप में स्थित है। उसको बढ़ाने के लिये कर्म-भूमि नवीन जल माँगती है अर्थात् नवीन दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

दोहा बाजी जो............नवीन।

शब्दार्थ अंजर=व्यय जो कभी वृद्ध न हो, अमर।

सरलार्थ प्राचीन काल में जो मधुर बाँसुरी बजी थी, यद्यपि उसे बहुत समय व्यतीत हो गया परन्तु फिर भी वह अभी तक अमर है। भक्तों के कान, उस अमर तथा मधुर वाणी को, जो कि प्रत्येक काल में नित नई है आज भी सुनते हैं।

चौपाई सकल जो...... .....मुख खोली।

शब्दार्थ- स्वल्प=थोड़ी भी। प्राची=पूर्व दिशा। निरखि=देखकर। रवि-रोली=सूर्य की लालिमा, बाल सूर्य। विह्वल=व्याकुल।

सरलार्थ- जो व्यक्ति अपनी थोड़ी बुद्धि के अनुसार भी भगवान का यशोगान कर सकते हैं, वह केवल भगवान के चरित्र की ही कृपा है। जिस प्रकार कि पूर्व दिशा के बाल-सूर्य की लालिमा को ही देखकर, कमल व्याकुल होकर अपने मुँह को खोल देता है अर्थात् खिल जाता है; उसी प्रकार थोड़े से यशगान को सुनकर ही भगवान् भक्त पर प्रसन्न हो जाते हैं।

भरत भुवन..................विहाला।

शब्दार्थ तन्त्री-नादा=संगीत। फणिहु=सर्प भी। सलय=लय के साथ। अह्लादा=झूमकर, प्रसन्न चित्त।

सरलार्थ जब घर में संगीत की मधुर-ध्वनि भर जाती है तो काटने वाले सर्प भी झूम-झूम कर प्रकट हो जाता है। बाग में आम को फूला हुआ देखकर, कोयल विवश और व्याकुल होकर गाने लगती है।

व्योम विलोकि..........................निज भूली।

शब्दार्थ उपवन=वाटिका। यूथिका=जुही। भृङ्ग=भवरे।

सरलार्थ आकाश में गहरे काले बादलों को देखकर मोर अपने आप विवश होकर वन में नाचने लगता है। वाटिका में जुही की कली को फूला हुआ देखकर अपने आप को भूल कर मस्त हो भौंरे गुँजारने लगते हैं।

गगन विलोकि.........................रस भीजी।

शब्दार्थ रजनीश (रजनी+ईश)=चन्द्रमा। वारीश (वरि+ईश)=समुद्र।

सरलार्थ आकाश में चन्द्रमा को प्रगट हुआ हुआ देखकर, समुद्र स्वयं अपने आप हिलोरें मार-मार कर गाने लगता है (चन्द्रमा को देखकर समुद्र में ज्वार-भाटे आते हैं) और चन्द्रमा की किरणों के पड़ते ही चन्द्रकान्त मणि का हृदय भी जो पत्थर होती है पसी-सने लगता है, स्वयं रस (प्रेम, आनन्द) में भीगने लगती है।

दोहा हरि-चरितहिं..........................नसाहिं।

सरलार्थ स्थायी दुख तो कष्ट कर है ही, पर स्थायी सुख भी दुखदायी है। संसार के मनुष्यों का जीवन दुख रूपी रात्रि और सुख रूपी दिन में सोता जागता (मिल-जुलकर) दुख और सुख पाता हुआ सफल होता है।

यह साँझ-ऊषा........................जीवन का।

शब्दार्थ साँझ-उषा का आँगन = दुख (साँझ), सुख (उषा) मे सम्पूर्ण जीवन (आँगन)।

सरलार्थ यह संसार सन्ध्या रूपी दुख और उषा रूपी सुख का मिलन स्थान बन जाय, जहाँ वियोग और संयोग (दुख-सुख) आपस मे मिलते रहें जिसके भीतर अश्रु (दुखी) तथा हास्य पूर्ण (सुखी) मुख, सदैव विकसित होता रहे। अर्थात् संसार के मनुष्यों का जीवन दुख और सुख में व्यतीत हो।

श्रद्धा के फूल

अन्तर्धान हुआ........................चिर अभिनव।

शब्दार्थ अन्तर्धान = छिपना; ध्यान (दृष्टि) से परे (स्वर्ग-वासी)। देव = देवताओ के समान बापू। जीर्ण = पुरानी, (अव्यव-स्थित)। अन्तर्मुख = परमात्मा में लीन। अनामय = विकार रहित। शतदल = कमल। चिर-पुराण = बहुत पुराना, वृद्ध भारत।

प्रसंग पूज्यबापू एक साधारण मानव नहीं अपितु देवतुल्य थे। उन्होंने भारतीय जीवन में काया पलट कर एक नया-उत्साह भर दिया था। योग्य-गुण-सम्पन्न भारतीयों द्वारा निर्मित भारत का भावी नूतन राष्ट्र ही उनका सच्चा स्मृति-चिन्ह होगा।

सरलार्थ देव तुल्य बापू इस मानव-लोक की धूल को स्वर्ग के रक्त से रंजित कर (खून से रंगकर), तथा इस पर घूम फिरकर, पुनः ओझल हो गये, अर्थात् ईश्वर से मिल गये। प्रकाश (आशा) का अंतिम तारा जो शेष था वह भी इस सृष्टि को वरदान देकर समाप्त होगया। उसने भारत की प्राचीन अव्यवस्थित जाति के

[illegible] रूपी खंडहर में छाये अंधकार को दूर कर दिया था। अर्थात् अज्ञान एवं अंध विश्वास को समाप्त कर ज्ञान की ज्योति जगाई थी। वह दैवी, श्रेष्ठ तथा विकार रहित चेतना अपने में ही लीन हो गई। (बापू स्वर्ग सिधारे) उस समय वह दुखी नहीं थी अपितु इसके विपरीत इस प्रकार प्रसन्न थी मानो हृदय रूपी सरोवर का उत्साह रूपी लहरों पर वह कमल रूपी खिली हुई (प्रकाशवान) आत्मा प्रभु में लीन हो गई हो। अर्थात् बापू स्वर्ग सिधारते तनिक भी दुखी नहीं थे। आज मनुष्यों में श्रेष्ठ मान अत्यन्त प्राचीन पिछड़े हुये) भारत-वर्ष को अपनी आत्मिक शक्ति से अत्यन्त सुन्दर बनाकर मनुष्यों में ही मिल गया। अर्थात् साधारण मानव की भाँति वह भी स्वर्गवासी बना।

आओ, हम ....बखेरे नूतन।

शब्दार्थ देवोचित=देवताओं के अनुकूल। देव-मृत्यु=देव तुल्य बापू की मृत्यु। हृदय-विदारक=हृदय के टुकड़े-टुकड़े करने वाली। स्मारक=स्मृति-चिन्ह।

सरलार्थ हे मनुष्यों! आओ, जीवन की सम्पूर्ण सुन्दरताओं रूपी घड़ा मृतक बापू को भेंट कर हम उन्हे देवताओं के समान श्रद्धांजलि अर्पित करें। देवता के समान बापू की यह हृदय के टुकड़े-टुकड़े कर देने वाली मृत्यु हम भारतीयों के लिये कल्याणकारी सिद्ध हो। और नवीन-भारत का निर्माण बापू की सदैव जीवित रहने वाला स्मृति चिन्ह हो अर्थात आदर्श राष्ट्र की स्थापना हो। उनके लिये शहीद-स्मारक (भवन, इमारत) की कोई आवश्यकता नहीं है। बापू की आत्मा कोयल का नवीन गुन्जार बने और उनकी आत्मा नवीन वसन्त की शोभा फैलाये अर्थात एक नवीन, सुखद तथा आदर्श भारत का निर्माण हो।

आलोचक और कवि

(क) तेरा कैसा गान.. ....नादान।

तब उनका स्वागत करने के लिये मार्ग में मखमल बिछवायी गई थी और प्रज्वलित दीप-मालिकायें जलाकर प्रखर प्रकाश किया गया था। हे मां! क्या वे बिना पांवड़े (पैर पोंछने का) बिछाये मार्ग में नहीं चल सकते थे? उनके स्वागत में इतने दीपक क्यों जलाये थे; क्या मां उन्हें कुछ कम दिखाई देता था?

कृष्णे! स्वामी..................पूजन के।

शब्दार्थ दुर्गम=कठिन। प्रभावान=तेजवान। प्रदीप=दीपक।

प्रसंग कृष्णा के बाल हृदय में उठी शंकाओं का समाधान करते हुये मां कहती है:

सरलार्थ हे पुत्री कृष्णा! स्वामी विवेकानन्द जी तो कठिन मार्गों में भी निडर होकर चलते उन्हें तो दैवी नेत्र प्राप्त हैं। हैं, और वे कितने ही संकट पूर्ण मार्ग पार कर चुके हैं। मार्ग में मखमल के जो पावड़े बिछे थे, वह तो जनता के हृदय की भक्ति-भावना के प्रतीक थे। जोकि पांवड़े के रूप में वहाँ फैले थे। स्वामी विवेकानन्द तो प्रकाशवान हैं; वे दीपक तो जनता की पूजा भावना के प्रतीक थे।

विशेष कुछ आलोचकों का कथन है कि विवेकानन्द पूर्ण आदर्श के प्रतीक हैं तथा बालिका आत्मा की प्रतीक। सहज कुतूहल उसे उद्वेलित कर देता है; वह बार-बार अपनी मां से पूछती है। मां प्रकृति का प्रतीक है। परन्तु यह अधिक उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। पंत प्रकृति के कवि हैं; मनोविज्ञान उनकी आधार-भूमि है। फिर कविता का शीर्षक भी बाल-प्रश्न है, जो एक सच्ची घटना पर आधारित है।

मैं नहीं चाहता चिर-सुख

मैं नहीं चाहता..................अपना सुख।

शब्दार्थ चिर सुख=स्थायी सुख। अविरत=लगातार, स्थायी।

प्रसंग यहाँ कवि भावना लोक से पूर्णतः जीवन की आधार-

भूमि पर उतर आया है। प्रस्तुत गीत में यह कहना है कि मुझे सुख अथवा दुख की चिरन्तनता प्रिय नहीं है क्योंकि जीवन की सफलता दोनों के सफल समन्वय में ही है। एकरसता गीत हीन बना देती है।

सरलार्थ - कवि कहता है- मैं सदैव रहने वाला सुख भी नहीं चाहता और न सदैव रहने वाला दुख ही चाहता हूँ। मेरे जीवन में सुख और दुख का सफल समन्वय है।

सुख-दुख के................हो घन।

शब्दार्थ- मधुर-मिलन = सफल समन्वय, सुखद-मिलन। परिपूरन = परिपूर्ण, एकाकार। घन = बादल, दुख का प्रतीक। शशि = चन्द्रमा, सुख का प्रतीक।

सरलार्थ मेरे जीवन की पूर्णता तभी हो सकती है जब उसमें सुख और दुख का सफल-समन्वय हो। जिस प्रकार कभी बादल में छिपकर चन्द्रमा और कभी चन्द्रमा की चाँदनी से प्रकाशित बादल आकाश की शोभा को बढ़ाते हैं, उसी प्रकार मेरा जीवन तभी सुखद हो सकता है जब कभी तो सुख की अधिकता में दुख ओझल हो जाय और कभी दुख के आधिक्य में सुख विलीन हो जाय।

जग पीड़ित.......... .... सुख दुख से।

शब्दार्थ- पीड़ित = दुखी। मानव-जग = मानव-सृष्टि, संसार।

सरलार्थ यह संसार अत्यधिक दुख से दुखी है और अत्यधिक सुख के कारण भी सुखी न होकर दुखी है। क्योंकि अविरत दुख और अविरत सुख दोनो ही उत्पीड़क हैं। इसलिये यह संसार तभी सुखी रह सकता है जब कि सुखी व्यक्ति को कुछ दुख (कठिनाइयाँ) और दुखी व्यक्ति को कुछ सुख (सुविधायें) की मात्रा प्राप्त हो। जब तक सुख, दुख में और दुख, सुख में परिणत नहीं होता रहेगा, तब तक विश्व-जीवन की गति सयंत नहीं हो सकती।

अविरत दुख है.......................... जग-जीवन।

शब्दार्थ अविरत = सदैव। उत्पीड़न = कष्टकर। दिवा = दिन।

(४) शब्दार्थ विरचत = रचना कर। भ्रम-भीति = शङ्का तथा डर।

सरलार्थ- भगवान का चरित्र कवियों की रचना करता है अर्थात् मनुष्य को कवि बना देता है; कवि लोग भगवान के चरित्र का वर्णन नहीं करते हैं यह सोचकर भगवान के पवित्र यश का वर्णन कर रहा हूं, जिसे सुनकर सभी शंकायें तथा डर नष्ट हो जाते हैं।

सुमित्रा नन्दन पंत

जीवन-परिचय पंतजी का जन्म सं० १९५७ वि० में अल्मोड़ा के समीप कौसानी नगर में हुआ था। आपके पिता का नाम गंगादत्त पंत और माता का नाम सरस्वती देवी था। हाई स्कूल उत्तीर्ण करने के पश्चात् आप प्रयाग में आकर म्योर कालिज में प्रविष्ट हो गये। पर विवश हो १९२२ में कालिज छोड़ घर पर ही अध्ययन आरम्भ कर दिया। आजकाल आप इलाहाबाद में 'आकाशवाणी' के हिन्दी-विभाग में हैं।

शैली पंत जी का जन्म प्रकृति के मधुर एवं मोहक वातावरण में हुआ। फलस्वरूप आप कोमल-कांत-पदावली के कवि बन गये हैं। प्रकृति का आपके साहित्य तथा जीवन पर गहरा प्रभाव है। यही कारण है कि आप छायावाद के मुख्य-स्तम्भ माने जाते हैं। छायावाद के आदर्शवादी रूप से आपको विशेष प्रेम है। आपकी पद योजना संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी पद योजना से प्रभावित है। परन्तु अपनी भावना और सरसता के अनुसार आपने अपनी निजी पद योजना बनाई है। फलस्वरूप वह नई सी प्रतीत होती है।

पंत जी संगीत प्रिय व्यक्ति है। आपकी संगीत प्रियता तथा कोमल-कान्त-पदावली ने खड़ी बोली हिन्दी कर्कशता को दूर कर उसमें मधुरता भर दी है। आपकी भाषा में सुकोमल, सरस, और मधुर भावों को अभिव्यक्ति करने की अपूर्व क्षमता है। भाषा में संस्कृत पदावली का भी प्रयोग है, किन्तु भाषा की सरलता सरसता नष्ट नहीं होने पाई है। उर्दू, ब्रज भाषा, फारसी, तथा अंग्रेजी

के शब्दों का भी आपने भाषा-निर्माण में सहयोग प्राप्त किया है। आपने नवीन शब्दों की भी रचना की है और प्रयोग में शब्दलिंग भी बदल दिये हैं (स्त्रीलिंग का पुलिंग और पुलिंग का स्त्रीलिंग कर दिया है)। यही कारण है कि पन्त जी को 'शब्द-शिल्पी' कहा जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पंत जी आधुनिक युग के एक सफल कवि हैं। उनकी कविता मे प्रकृति जीवन, जगत, भाषा भाव का बेजोड़ सौन्दर्य प्रदर्शित किया गया है। आप हिन्दी के उच्चकोटि के छायावादी कलाकार है। कवि होने के साथ-साथ आप एक सफल गद्य लेखक भी हैं।

ग्रंथ काव्य उच्छ्वास, पल्लव, पल्लविनि वीणा, ग्रन्थि, गुंजन, युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्ण-किरण स्वर्ण, धूलि, मधु-ज्वाल, उमर खयाम की रुबाइयों का हिन्दी अनुवाद।

गद्य ज्योत्स्ना, परी, क्रीड़ा, रानी (नाटक), हार (उपन्यास), पाँच कहानियाँ (कहानी-संग्रह)।

बाल-प्रश्न

मां! अल्मोड़े..................रखते थे।

शब्दार्थ अमन्द=तेज, प्रकाशवान। दीपावलि (दीप+अवलि) =दीपकों की पंक्ति।

प्रसंग राजर्षिविवेकानन्द, जो कि वैदिक धर्म के बहुत बड़े समर्थक और एक महान विद्वान थे, जिन्होंने विद्वत्ता तथा प्रतिभा के द्वारा अमेरिका और इंगलैण्ड आदि उन्नतिशील देशों के विद्वानों को भी आश्चर्य चकित कर दिया था, एक वार अल्मोड़े में आये थे। उस समय उनका भव्य स्वागत किया गया था। उस अपूर्व सौन्दर्य को देख कर उनकी (पंतजी की) बहिन कृष्णा अपनी मां से प्रश्न करती है:

सरलार्थ हे मां! राजर्षिविवेकानन्द जब अल्मोड़े में आये थे,

शब्दार्थ विहंगम=पक्षी (यहाँ गायक, या कवि)। पिक-प्रतिभा=कोयल की मधुर गान की शक्ति, संगीत, लय। शकुनि=पक्षी (यहाँ गायक, कवि)।

प्रसंग एक बार जब हिन्दी के जाने-माने एक आलोचक ने छायावाद की और विशेषकर पंत के रूप (बाल आदि) की कड़ी आलोचना की तो पंत जी ने उसके उत्तर में प्रस्तुत कविता लिखी। (क) भाग में आलोचक के तर्क और (ख) में कवि का उत्तर है।

सरलार्थ आलोचक कवि को सम्बोधन करके कहता है हे पक्षी (छायावादी कवि)! तेरा यह गीत (कविता) कैसा है। न तो तूने गुरु के द्वारा वेद और पुराणों की शिक्षा पाई है और छः दर्शन शास्त्र तथा नीति शास्त्र एवं विज्ञान के ग्रन्थों का भी अध्ययन नहीं किया है। क्या तुझे कुछ भाषा की भी जानकारी है? क्या तुझे काव्य के रस छंद (पिंगल शास्त्र) की जानकारी है? कोयल के समान मधुर कंठ (संगीतात्मकता, गेयता) पा लेने का घमंड मत कर हे नादान पक्षी (कवि)! कुछ सोच विचार, (चिन्तन कर)।

हँसते हैं विद्वान..............................के गान।

शब्दार्थ गीत-खग=गीत गाने वाले पक्षी (कवि)। हास-अश्रु =सुख-दुख। छाया-ग्रथित-प्रकाश=प्रकाश (सुख) में दुख गुथा (मिला) हुआ है।

सरलार्थ आलोचक कवि से पुनः कहता है हे गीत (कविता) गाने वाले पक्षी (कवि)! तेरे गीतों को सुनकर सभी विद्वान तेरी नादानी पर हँसते हैं अर्थात् निंदा करते हैं। तुम्हारा निवास संसार से दूर घने वन की छाया में है अर्थात् तुम यथार्थ से दूर केवल कल्पनाओं के गीत लिखते हो। उसमें संसार के सुख दुख का तनिक भी वर्णन नहीं है। हे पक्षी (कवि) इस बात को तू भली-भाँति समझ ले कि संसार के आकाश का पाना तेरे लिए अत्यन्त कठिन है; क्यों कि आकाश अन्तहीन है अर्थात् संसार से दूर रह कर केवल कल्पनाओं में लीन रहकर तुम सुखी नहीं रह सकते। क्योंकि प्रकाश में

अंधकार बड़ा गहरा मिला हुआ है (सुख में दुख और दुख में सुख छिपा हुआ है) इस बात को समझना अत्यन्त ही कठिन है। हे वन-पक्षी (प्रकृति का गान करने वाले कवि) ! आकाश की उड़ान और एकान्त घोंसले के गीत (दर्शन और प्रकृति के कल्पना पूर्ण गीत) गाना अब छोड़ दे और यथार्थ की भूमि पर उतर आ।

(ख) मेरा कैसा......... ...प्राणों में गान।

शब्दार्थ गन्धोच्छ्वास=सुगन्धरूपी श्वास। पुलकाकुल=रोमाञ्च से व्याकुल, विभोर। वातास=वायु।

सरलार्थ कवि आलोचक के प्रश्न का उत्तर देता हुआ कहता है हे आलोचक! मुझसे यह मत पूछो कि मेरा गीत कैसा है? आज प्रत्येक वन-वाटिका में बसंत-ऋतु छाई हुई है। सुन्दर अर्ध-विकसित कलियों में सुगन्ध रूपी सुवास है, प्रकृति के कण-कण में हर्षोत्साह व्याप्त है। रोमाञ्चित (आनन्द-विभोर) वायु चल रही है। उधर आकाश में भी स्वर्णिम-प्रभात फूटा पड़ रहा है अर्थात् संसार में सुखमय आशा के चिन्ह दिखाई दे रहे हैं। फलस्वरूप मेरे प्राण भी आनन्द-विभोर हो गीत गाने लगे हैं।

टिप्पणी=जब कवि से आलोचक दर्शन और प्रकृति के कल्पना पूर्ण गीतों को छोड़ कर यथार्थ की भूमि पर उतर आने को कहता है तो कवि आलोचक को अपने गीत द्वारा ही यह समझा देता है कि कवि भावुक होता है और जब वह अपने चारों ओर प्रकृति के अङ्ग प्रत्यङ्ग को रोमाञ्चित, सुख मय तथा आनन्दविभोर देखता है तो स्वयं आनन्द विभोर हो कर वह गाने लगता है यही कवि की भावुकता है और यही कवि के भावुक हृदय का रहस्य है वह प्रकृति में ही जीवन देखता है। प्रकृति का मानव के साथ तादात्मय को भी कवि देखता है और यह सत्य भी है। प्रकृति और मानव का अद्भुत सयोग है।

मुझे न अपना..................मेरे गान।

शब्दार्थ विश्व-पुलकावलि=संसार के हर्ष से रोमाञ्च। तरु-पात=पेड़ पौधे।

सरलार्थ कवि आलोचक से आगे कहता है- हे आलोचक मुझे न तो स्वयं अपना ध्यान है और न कभी संसार का ही ज्ञान मुझे रहा है। मेरे गीत को सुनकर पेड़-पौधे आनन्द-विभोर हो ऐसे झूमने लगते हैं मानो संसार रोमाञ्चित हो रहा हो। प्रातःकाल एवं सायंकाल मेरे गीत मेरे हृदय से निकल कर अन्तहीन अज्ञात आकाश को पार कर जाते हैं अर्थात स्वभावतः मैं असीमित कल्पनाओं में डूब जाता हूं। हे आलोचक मेरे प्राण मेरे गीतों में ही निहित हैं अर्थात बिना गीत गाये मैं जीवित नहीं रह सकता। संसार के सम्पूर्ण प्राणियों में मेरे गीत समाये हुये हैं।

सुभद्रा कुमारी चौहान

जीवन-परिचय : आपका जन्म संवत् १६६१ में, प्रयाग में हुआ था। आपकी आरम्भिक शिक्षा प्रयाग में ही हुई। आपके दो भाई और तीन बहनें थीं। सं० १६७६ मे आपका विवाह ठा० लक्ष्मणसिंह चौहान के साथ सम्पन्न हुआ था। दम्पति को काँग्रेस में कार्य शील रहने के कारण कई बार जेल जाना पड़ा था। राष्ट्रीयता आपके जीवन का श्रृंगार थी। १२ फरवरी सन् १६४८ ई० को मोटर दुर्घटना से उनके पार्थिव शरीर का नाश हो गया।

शैली सुभद्रा जी आधुनिक महिला कवियित्रियो में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। श्रीमती महादेवी वर्मा के पश्चात आप ही का नाम है। आपकी कविताओं को तीन श्रेणियों मे विभाजित किया जाता है (१) देश भक्ति पूर्ण कवितायें (२) मातृत्व भावना पूर्ण कवितायें (३) प्रणय सम्बन्धी कवितायें। देश भक्ति पूर्ण कविताओं में "झाँसी की रानी" उनकी सर्व श्रेष्ठ रचना है। उसका एक-एक शब्द नवीन स्फूर्ति और उत्साह देने वाला है। वीरोचित नारी

जीवन का जितना सजीव चित्र सम्भव हो सकता है इस पद्य में चित्रित किया गया है। इसके अतिरिक्त "वीरों का कैसा हो बसन्त" और "जलियाँ वाले बाग में वसन्त" भी आपकी ऐसी ही ओज पूर्ण रचनायें हैं। इसके अतिरिक्त वात्सल्य रस की कवितायें भी बड़ी भावुक और सरस हैं। आपकी प्रणय सम्बन्धी कविताओं में दाम्पत्य भाव फूटा पड़ता है।

सुभद्रा जी के भाव बड़े ही सीधे और सरल होते हैं। अन्य कवियों की भाँति वह ऊँची उड़ान नहीं भरतीं वरन इस वस्तु जगत के अन्दर ही उनकी दृष्टि इतनी पैनी हो जाती है कि वह अपने भाव और विचारों से पाठक को आत्म-विभोर कर देती हैं। उनके भावों में एक प्रकार की मादकता, ओज एवं अपूर्व आकर्षण है।

सुभद्रा जी की भाषा खड़ी बोली है। उसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग बड़ी सफलता पूर्वक हुआ है। साथ ही साथ उर्दू के प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग है। भाषा इतनी सरल और सीधी होती है कि पाठक को कविता समझने के लिये किसी शब्द का अर्थ नहीं खोजना पड़ता। भाषा भावों की अनुगामिनी है। उसमें ओज, प्रसाद और माधुर्य पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। भाषा में अलंकारों को स्थान प्राप्त नहीं है।

रचना मुकुल, बिखरे मोती, उन्मादिनी, त्रिधारा, सभा के खेल (बालोपयोगी कविता संग्रह), सीधे-सीधे चित्र (कहानी-संग्रह)।

झाँसी की रानी की समाधि पर

शब्दार्थ भग्न=टूटी। वीरबाला=पौरुषपूर्ण स्त्री। निहित=छिपी हुई। निशीथ=रात्रि। गिरा=वाणी। हर बोलों=एक जाति जो गा बजा कर भीख मांगती है। लीला स्थली=कर्मक्षेत्र।

इस समाधि············आरती फेरी।

प्रसंग झांसी की रानी लक्ष्मी बाई इतिहास प्रसिद्ध वीर महिला हैं, जिन्होंने सन् १८५७ के प्रथम-भारतीय-स्वतन्त्रता-संग्राम में अपूर्व

शौर्य एवं वीरता पूर्वक युद्ध करके अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये थे और भारतवर्ष में पुनः एक नई चेतना तथा उत्साह की लहर दौड़ा दी थी। आज उनकी समाधि का राष्ट्रीय महत्व है। उसी समाधि को देख कर कवित्रि जी ने अपनी प्रस्तुत प्रसिद्ध कविता में कवि हृदय के भाव व्यक्त किये हैं।

सरलार्थ झांसी की रानी की इस समाधि में राख की एक ढेरी छिपी हुई है; जिस रानी ने कि स्वयं जल कर स्वतन्त्रता की पवित्र आरती सारे देश भर में फैला दी थी। अर्थात् सबको स्वतन्त्रता के हित बलिदान होने को आह्वान किया था।

यह समाधि..............मरदानी की

सरलार्थ यह छोटी सी समाधि, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की समाधि है। वीर-पराक्रमी रानी लक्ष्मीबाई की अन्तिम कर्म-भूमि यही स्थान है।

यहीं कहीं पर...... ....शाला सी।

सरलार्थ यहीं इसी स्थान पर उसका नश्वर शरीर टूटी हुई विजय माला के समान फैल गया है। उसी विजय माला के बिखरे फूल (शरीर के अवयव) इस समाधि में एकत्रित हैं। यह उसकी स्मृति दिलाने वाला स्मारक के समान है।

सहे वार पर वार................ज्वाला सी।

सरलार्थ- उस झांसी की रानी ने अन्त समय तक शत्रुओं द्वारा की हुई चोटों पर चोटें सहन की, परन्तु फिर भी पीछे नहीं हटी, एक मरदानी स्त्री के समान वह लड़ती ही रही। अन्त में राष्ट्र के हित में में प्राण निछावर कर, हवन के समान चिता पर चढ़कर लपट के समान चमक उठी अर्थात् सदैव के लिये अमर हो गई।

बढ़ जाता है..................सोने से।

सरलार्थ सुभद्रा जी अपने विचार प्रकट करती हैं युद्ध स्थल में आत्म-बलिदान कर देने से वीर पुरुष का अत्यधिक सम्मान बढ़ जाता है, जिस प्रकार कि सोने ही से बनी हुई भस्म सोने से भी

अधिक कीमती हो जाती है।

रानी से भी अधिक..................की चिनगारी।

सरलार्थ रानी से भी अधिक अब हमें उसकी इस समाधि से प्रेम है क्योंकि इस समाधि में ही भारत के स्वतन्त्र होने के लिये आशा की चिनगारी छिपी हुई है। (यह कविता सन् १५ अगस्त १९४७ से पूर्व की लिखी है, जब कि भारत परतन्त्र था।)

इससे भी सुन्दर...... ... .हो जाते।

सरलार्थ इस संसार में रानी की इस समाधि से भी सुन्दर ढंग की बनी हुई समाधियाँ हैं; पर ऐसी समाधियों में सोये प्राणियों की कहानी तुच्छ कीड़े,मकोड़े हो जाते हैं। अर्थात् उनका कोई विशेष महत्व नहीं है।

पर कवियों की..................वीरों की बानी।

सरलार्थ यह समाधि उन अन्य भव्य समाधियों के समान महत्व हीन नहीं है अपितु झाँसी की रानी की इस समाधि की कहानी तो युग-युग तक जीवित रहने वाली है; जो कि कवियों की अमर वाणी द्वारा प्रशंसित है। कवियों की वाणी हर किसी की प्रशंसा नहीं करती; वह तो केवल वीरों का ही यशोगान, प्रेम एवं श्रद्धा पूर्वक करती है।

बुन्देले हर बोलों...... .. ..वाली रानी।

सरलार्थ बुन्देलखण्ड में रहने वाले हर बोलों के मुँह से हमने झाँसी की रानी की यह कहानी सुनी था कि वह झाँसी की वीर रानी बड़ी वीरता के साथ युद्ध में लड़ी थी।

यह समाधि.............. मरदानी की।

सरलार्थ यह समाधि जो कि साधारण न होकर अमर समाधि है, झाँसी की रानी की है। वीर रानी लक्ष्मी बाई का यह अंतिम कर्म-क्षेत्र है।

लोहे को पानी कर देना

जब जब भारत ....संहार किया।

शब्दार्थ प्लावित=डूब कर। करुणाकर (करुणा+आकर)=दया के समुद्र।

प्रसंग प्रस्तुत कविता सुभद्रा जी ने विश्व-वंद्य महात्मा गाँधी के प्रति लिखी है। विज्ञान के मद मे मतवाली पश्चिमी-सभ्यता हिंसा एवं पशुबल को ही सब कुछ समझ बैठी थी। वह पारस्परिक द्वेश एवं ईर्ष्या के वशीभूत अस्त्र-शस्त्र को ही सब कुछ समझ बैठी थी। ऐसे ही बर्बतापूर्ण वातावरण में महात्मा गान्धी ने अहिंसा और प्रेम का प्रभाव दिखाकर अपने आत्मबल से संसार को चमत्कृत कर दिया और उसे एक नया पाठ भी पढ़ा दिया।

सरलार्थ जब-जब पवित्र भारत भूमि पर संकट आये तथा राक्षसों के अत्याचार बढ़े, मनुष्यता का अपमान हुआ और राक्षसी वृत्ति का प्रसार हुआ; तब-तब दया से भरकर दया के सागर (भगवान) ने अवतार लिआ और दीन-दुखियों के सहायक बनकर राक्षसो के समूह को नष्ट कर दिया।

दुख के बादल .... सब पुण्यवान।

शब्दार्थ यशोगान=प्रशंसा के गीत। पावन=पवित्र।

सरलार्थ दुख के निराशापूर्ण बादल हट गये और ज्ञान का आशापूर्ण प्रकाश छा गया। फलस्वरूप कवि के हृदय में कविता का जन्म हुआ। ऋषि-मुनियों ने आर्य ससकृति का इतिहास लिखा। प्रत्येक मनुष्य मे भक्ति-भावना जाग उठी और प्रत्येक दिशा में यश के गीत गाये जाने लगे। प्रत्येक व्यक्ति के मन में पवित्र प्रेमपूर्ण विचारो का उदय हुआ और प्रत्येक घर मे सभी व्यक्ति पुण्य कार्य करने वाले थे।

सतयुग त्रेता..................गुण गाया।

शब्दार्थ यश-सुरभि=कीर्ति रूपी सुगन्धि। महिमा=बड़ाई,

धरा।

सरलार्थ सतयुग में हरिश्चन्द्र, मोरध्वज आदि दानी पुरुष हुये, त्रेता युग श्री रामचन्द्रजी की कीर्ति रूपी सुगन्धि फैलाता हुआ व्यतीत हो गया। इसके पश्चात् द्वापर युग आया वह भी श्री कृष्ण भगवान की आदर्श पूर्ण कुशल राजनीति का प्रसार किया और फिर कलियुग आया तो उसके पश्चात् विश्व-वन्द्य महात्मा गांधी का युग आ गया है। फलस्वरूप गांधी जी का यश संसार में फैल गया और संसार के सभी व्यक्तियों ने एक स्वर में पूज्य बापू के गुण गाये।

कवि गद्गद्……………… कैसे गाऊँ।

शब्दार्थ रोमा रोला = फ्रान्स का प्रसिद्ध साहित्यकार। उल्लसित = प्रसन्नता से। रजकण = महत्वहीन। विभूतियाँ = महान आत्मायें।

सरलार्थ जब संसार ने मुक्त कंठ से बापू की प्रशंसा की तो फिर कवियों ने भी गद्-गद् हो अपने सच्चे हृदय से बापू को श्रद्धाँजलि भेंट की। फ्रान्स के प्रख्याति साहित्यकार रोमा रोलाँ और कवीन्द्र रवीन्द्र ने भी प्रसन्नता से बापू की प्रसंशा में गीत रचना की। इस पवित्र पर्व में धूलकण सी महत्वहीन (कवियित्री) क्या लिखूँ और लिखूँ भी तो कैसे? इतनी विश्व-विख्यात महान आत्माओं के सम्मुख गीत गाने मे मै घबराती हूं, कैसे गाऊँ?

दुनियाँ की सब…………… जन मे है।

शब्दार्थ लोहे से लोहा बजना = हथियारों की लड़ाई। परिधि = सीमा।

सरलार्थ संसार की सभी आवाजों (कार्यों) से हथियारों की लड़ाई की आवाज (विचार) सबसे बलशाली सुनाई पड़ती है और यह विचार धारा भारतवर्ष मे भी सुनाई देती है। आज विज्ञान का ज्ञान किसी देश विशेष की बपौती न रहकर सम्पूर्ण संसार मे उसका प्रचार हो गया है और चारों ओर अब प्रत्येक व्यक्ति युद्ध की चर्चा कर रहा है।

कैसे लोहे मे… .. …..के समान।

शब्दार्थ-- लोहे में धार करें=वैज्ञानिक हथियारों की उन्नति और अधिक विध्वंशक अस्त्र-शस्त्र का निर्माण। लोहे की मार= हथियारों द्वारा विध्वंश। घोर प्रहार=बड़ा हमला।

सरलार्थ- संसार के देश यही सोचने में अपनी संपूर्ण शक्ति का अपव्यय करने में लीन हैं कि किस प्रकार और अधिक विध्वंशक वैज्ञानिक हथियारों का निर्माण करें, और किसी प्रकार के हथियारों से सज्जित होकर बैरियों पर हमला करें, और मानवता को भूलकर किस बर्बरता के साथ एक दूसरे पर कठिन चोट करें और तोप चलें जिससे कि सारा संसार जल जाय और हवाई जहाज में मानव यात्रा न करके वह बमों को ले जाने वाला बन जाय और लोहे के गोले इतनी अधिक सख्या में गिरें जिस प्रकार कि वर्षा होती है।

यह लोहे के ....लड़ा दिया।

शब्दार्थ महिमा=बड़ाई, फल। क्षमता=शक्ति। लौह पान= लोहे का हाथ (शक्ति)

सरलार्थ यह इन लोहे के हथियारों के युग की महिमा है कि अनेक ग्राम आज मरघट बने हुये दिखाई देते है। यह इस शस्त्र-युग की शक्ति है कि इस पृथ्वी के अनेकों घर आज नष्ट हुए पड़े है। इस लोहे की शक्ति ने क्या नहीं किया अर्थात् सभी कुछ कर दिखाया है। सुखपूर्ण गाँवों को आज पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया। इन नये यंत्रों के आविष्कार ने भी सब कुछ कर डाला; इसाइयों को ही ईसाइयों (एक ही धर्म एवं विचारों के अनुयाइयों) से लड़ा दिया अर्थात् अहिंसा के पुजारी भी आपस में लड़ बैठे।

उस ओर साधना..................नई बसावेगा।

शब्दार्थ अरक्षित=रक्षा रहित। अजान=अनभिज्ञ।

सरलार्थ उस ओर (पश्चिमी देशों में) इस प्रकार का प्रयत्न हो रहा (शस्त्र बनाने का) है और इस ओर (हमारे देश में, पूर्व मे) रक्षारहित तथा विज्ञान के अनुसंधानों से अनभिज्ञ हैं। फावड़ा और कुदाली लेकर कार्य करने वाले हमारे देश के भोले-भाले मजदूर एवं

किसान आशा किये बैठे हैं कि एक दिन वह परब्रह्म की सत्ता इस संसार में अवश्य जन्म लेगी, वह सत्ता राक्षसी कार्यों को समाप्त करके फिर से नया-निर्माण करके, नया संसार बसायेगी।

पर किसे ज्ञात..................विश्व-पीर।

शब्दार्थ अवतरित=अवतार ले चुका। विश्व-पीर=संसार के प्राणियों के दुख-दर्द।

सरलार्थ परन्तु यह किसी को भी पता नहीं था कि उस ज्ञानी महापुरुष (महात्मा गांधी) ने इस संसार मे अवतार ले भी लिया है। जिसकी कि तपस्या के बल (सत्य एवं अहिंसा के सिद्धान्त) के सम्मुख आज सभी वैज्ञानिक एवं ज्ञानी पुरुष झुक गये हैं, (हार मान गये हैं) वह कौन है ? वह कोइ भारी भरकम शरीर वाला न हो कर एक मुट्ठी भर हड्डियों वाला (दुबला पतला) लंगोटी मात्र पहनने वाला वृद्ध फकीर (धन-वैभव रहित सन्त) है। उस सन्त (बापू) का विशाल मस्तक सत्य के तेज के कारण दमकता है और जिसकी आँखों में संसार के प्राणी मात्र की पीड़ा भरी हुई है।

जिसकी वाणी में....... ....विश्व उबारा है।

शब्दार्थ पुलिश=वज्र। असिन्धारा=तलवार की धार। अखिल=सम्पूर्ण।

सरलार्थ- जिसकी वाणी इतनी शक्तिशाली है कि वह वज्र के किवाड़ों को भी पार कर जाती है अर्थात् कठोर से कठोर हृदय वाले व्यक्ति भी पिघल जाते हैं। जिसके हृदय के प्रेम (निष्कपट प्रेम) को देखकर तलवार की धार भी मोथरी (बिना धार की) हो जाती है (दुष्ट लोग भी दुष्टता छोड़ देते हैं)। वह महान् आत्मा पूज्य महात्मा गान्धी हैं; वह विश्व बन्धु बापू हम सबका है, आज संसार उसे अत्यधिक प्रेम करता है। वह उन्हीं महान-पुरुषों की परम्परा में आता है, जिन्होंने कि इस संसार का उद्धार पहले किया है।

हे बुद्ध सुखी...................... समाती है।

शब्दार्थ परम-धर्म=महान धर्म, (अहिंसा, त्याग, तपस्या)।

सरलार्थ- स्वर्ग स्थित महात्मा बुद्ध पूज्य बापू के सिद्धान्तों में अपने महान धर्म 'अहिंसा' आदि को जान कर अत्यधिक सुख का अनुभव कर रहे हैं। ईसा मसीह (ईसाइयों के अवतार) उनका आत्म-त्याग देखकर तथा मुहम्मद पैगम्बर (मुसलमानों के अवतार) उनमें ईमान (सत्य तथा विश्वास) को देखकर प्रसन्न हैं। ऐसे महापुरुष पूज्य बापू के 'अहिंसा' के मन्त्र को सुनकर तोपों का अस्तित्व मिट रहा है, टैंक तथा बन्दूकें आदि प्रभावहीन होती जा रही हैं, ये सभी वैज्ञानिक शस्त्र अहिंसा के मन्त्र को सुनकर महत्व हीन होते जा रहे हैं।

पाषाण-हृदय जो थे.............सहारा है।

शब्दार्थ-- पाषाण-हृदय=कठोर-हृदय, क्रूर। होम=यज्ञ।

सरलार्थ जो कठोर-हृदय क्रूर-पुरुष थे वे सभी गांधी जी के 'अहिंसा-मंत्र' के सम्मुख पिघलकर मोम के समान करुणा से भर गये हैं। जो राक्षसी वृत्ति के दुष्ट लोग थे उनमें भी राम (देवता) बनने की इच्छा जागृत हो गई; फलस्वरूप उन्होंने भी अपने घरों में मे यज्ञ किये अर्थात् दानवता को छोड़ मानव बनाने के लिये पुण्य-कर्म करना आरम्भ कर दिया। यहीं से 'गांधी-युग' अब आरम्भ होता है, जिसका कि विश्व-बंधु बापू ने प्रसार किया है। उस शस्त्र-युग के अन्तिम दिन हैं, जिसको कि बढ़ावा देने वाला विज्ञान है।

विज्ञानी की है...............पानी कर देना।

शब्दार्थ परम सिद्धि=पूर्ण सफलता की प्राप्ति।

सरलार्थ- वैज्ञानिक पूर्ण सफल तभी माना जा सकता है जबकि वह नये-नये वैज्ञानिक अनुसंधान करके संसार में अस्त्र-शस्त्रों की भरमार करदे। परन्तु हे बापू, कठोर हृदय को भी पिघलाकर दयावान बना देना तुम्हारे बाँए हाथ का खेल है। अर्थात् अत्यन्त सरल कार्य है।

इस तुकबन्दी में............छलक पड़ी।

शब्दार्थ सार=तत्व। दो विभूतियों=कस्तुरबा और

महादेव देसाई।

सरलार्थ कवियित्री अन्त में कहती है हे बापू आपके यशोगान में जो यह टूटी फूटी तुकबन्दी (कविता) की गई है यद्यपि इसमें कुछ तत्व नहीं है पर श्रद्धावश जो दो आँसू की बूंदें मे पूजा के लिये लाई हूँ उन्हें कृपया स्वीकार कर लीजिये। इन मेरे आँसूओं मे अपने उन पवित्र आँसूओं का कण-मात्र मिला दो, जोकि दो महान विभूतियों कस्तूरबा और महादेव देसाई की स्मृति में बरबस ही आपकी आंखों में से छलक कर ढुलक पड़े थे।

श्रीमती महादेवी वर्मा

जीवन-परिचय श्रीमती महादेवी वर्मा का जन्म सं० १९६४ वि० में फरुखाबाद में हुआ था। आपके पिता श्री गोविन्द प्रसाद एम० ए० एल० बी० भागलपुर स्कूल में प्रधानाध्यापक थे। इनकी माता का नाम श्रीमती हेमरानी देवी था, जो स्वयं कविता करती थी। इस प्रकार आपका जन्म साहित्यिक वातावरण में हुआ था। आपने एम० ए० संस्कृत में किया है पहले आप 'चाँद' मासिक-पत्र की सम्पादिका थीं पर फिर 'प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाध्यापिका नियुक्त हुई। आज कल आप उसी पद पर आसीन हैं।

शैली महादेवी अपना व्यक्तित्व सबसे अलग रखती हैं। हिन्दी के कवि और कवियित्रियों से आपका मेल नहीं खाता। महादेवी जी का जीवन, संसार की वेदना, पुलक और हास्य में होकर व्यतीत हुआ है अतः उसकी छाप उनकी कविता पर भी स्पष्ट रूप से पड़ी है। प्रेम और वेदना के वर्णन में महादेवी जी की समता मीरा से की जाती है। उनमें वे पूर्णतः सफल भी हुई हैं यद्यपि मार्ग भिन्न है। दर्शन शास्त्र का अध्ययन करने के कारण दार्शनिकता का भी समावेश है तथा गीतों में गेयता (संगीतात्मकता) का भी पुट है।

महादेवी जी एक उच्चकोटि की रहस्यवादी कवियित्री हैं। जो अमूर्त एवं अव्यक्त सत्ता है उसके विरह में वह व्याकुल रहती हैं

तथा उसकी खोज में कण-कण से परिचित हो लेती हैं। यही कारण है कि वेदना एवं विरह से परिपूर्ण है, जो पूर्णरूपेण ईश्वरोन्मुख होने के कारण ही आप अपनी वेदना का अन्त नहीं चाहती अपितु उसी मधुर-सुख में लीन रहना चाहती हैं।

आपकी भाषा संस्कृत गर्भित खड़ी बोली है। पहले आपने ब्रज-भाषा में रचना आरम्भ की थी पर खड़ी बोली से परिचय पाने पर उसी को अपनी कविता का माध्यम बनाया। 'प्रसाद' की भाँति खड़ी बोली को काव्योचित बनाने में महादेवी जी का महत्वपूर्ण स्थान है। आपने उसमें कोमलता एवं मधुरता का समावेश किया है। भाषा पर आपका अपूर्व अधिकार है; यही कारण है कि भाषा भावानुरूप ही होती है। कहीं-कहीं तुकबन्दी के लिये आपने शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी है और उसमें उर्दू शब्दों का भी समावेश है। कहीं-कहीं आपकी भाषा और शैली दोनों ही दुरुह हो गई हैं जिसके समझने के लिये पाठक को श्रम करना पड़ता है।

रचनायें -नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत (यामा) और दीपशिखा (काव्य); अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखायें, शृङ्खला की कड़ियां (गद्य); हिन्दी का विवेचनात्मक गद्य (आलोचना)।

फूल

मधुरिमा के................कोमल प्राण।

शब्दार्थ मधुरिमा = सुन्दरता। मधु = मिठास। सुधा = अमृत। सुषमा = सौन्दर्य। छविमान = शोभायमान। अजान = अबोध। बान = स्वभाव।

प्रसंग फूल के अभिनव सौन्दर्य एवं उसकी अपूर्व कोमलता को देखकर कवियित्री उसे स्वर्ग का दूत समझती है और उसे आश्चर्य भी होता है कि इतनी स्वर्गीय वस्तु इस मर्त्य लोक में कैसे आ गई। यहाँ पर तो पग-पग पर आपत्तियाँ हैं। परन्तु जब ईश्वर ने उसे यहाँ भेज दिया है तो अब उसे दृढ़ता पूर्वक हँसते हुये जीवन की कठिनाइयों

का सामना करना चाहिये

सरलार्थ कवियित्री फूल को इस नश्वर संसार में देखकर प्रश्न करती हैं हे सौन्दर्य एवं मिठास के अवतार फूल ! तुम तो अमृत तथा सौन्दर्य के सदृश रूपवान हो। आकाश के तारागणों के समान मौन (शांत) एवं अबोध तुम आँसुओं (ओस में) में डूबे हुये (भीगे हुये) भी कितने सुन्दर लगते हो ? हे प्राणों के समान कोमल फूल ! तुम्हारा तो सदैव ही हँसते (खिले) रहने का स्वभाव था फिर इस दुखी संसार में कहाँ आ गये।

स्निग्ध रजनी से .... संदेश।

शब्दार्थ स्निग्ध=शीतल। अछूता=पवित्र। मकरन्द=पराग।

सरलार्थ शीतल चाँदनी रात्रि से हँसी लेकर और सौन्दर्य से अपने सम्पूर्ण अंग प्रत्यंग को भरकर (सजाकर); नये कोमल पत्तों का घूँघट डालकर (छिपकर) और अपने पराग को अभी तक अछूता रखे हुये; हे स्वर्ग के मोहित करने वाले संदेश ! तुमने इस नरलोक को कैसे खोज लिया ?

रजत किरणों से .... मुस्काते फूल !

शब्दार्थ रजत-किरण=चाँदी, चाँदनी। पखर=धोकर। सौरभ सुगंधि। मधु=पराग। कोष=खजाना।

सरलार्थ चन्द्रमा की चाँदी जैसी श्वेत किरणों से अपने नेत्र धोकर (श्वेत रंग के) तथा सुगन्धि का अनोखा बोझ (अत्यधिक सुगंधि) लेकर, पराग का छलकता (सीमा से अधिक) खजाना लेकर तुम अकेले ही उस संसार की सीमा पार कर इस मर्त्यलोक में चले आये हो। हे सुन्दर, हँसते हुये (खिले हुये) छोटे से फूल ! बताओ, तुम कहीं मार्ग तो नहीं भूल आये हो ?

उषा के छू .... की काट।

शब्दार्थ आरक्त=लाल वर्ण के। कपोल=गाल। उन्माद= मादकता, नशा। हेरती=खोजती है।

सरलार्थ उषाकाल (सूर्योदय से पूर्व का समय) के लाल

गालों का स्पर्श कर तेरी आकुलता किलकारी भरने लगती है (फूल अरुणोदय को देखकर ही खिल जाता है)। और प्रातः तारों को छिपते हुये देख कर तुझे न जाने कौन सा भूली हुई बात स्मरण हो आती है? वह निर्मोही ही कौन है, जिसका कि तेरे सौन्दर्य का समूह, रास्ता देखता है? (फूल जब तक डाली पर रहता है सदैव ही सुगन्धि फैलाता रहता है।

चाँदनी का शृङ्गार........................कारागार।

शब्दार्थ तावकती=देखती है। अतीत=भूतकाल, बीता समय। अभिनव=अनोखा, नया।

सरलार्थ -हे फूल! चांदनी के शृङ्गार उपादानों को अपने आँख के कोने में इकट्ठा करके (खिलकर) और अपने अमूल्य यौवन को (भ्रमर तथा वायु आदि को) लुटाकर, अपने कौन से बीते हुये स्वर्णिम-दिवसों को स्मरण कर रहे हो? क्या तुम यह बात नहीं जानते कि तुम्हारा यह अनोखा प्यार (सुगन्धि एवं हंसी) ही एक दिन तुम्हारे कारावास का कारण बन जायेंगे अर्थात् तोड़ लिये जाओगे और फिर सदा के लिये अपनी प्रिय डाली से विलग हो जाओगे

कौन वह है..... ....के संसार।

शब्दार्थ सम्मोहन राग=मोहित करने वाला संगीत। करतारु= विधाता। काँटों के हार=आपत्तियाँ, कष्ट

सरलार्थ हे सुकुमार फूल! वह कौन सा मोहित करने वाला संगीत है, जो तुम्हें इस संसार में खींच लाया है? इस मर्त्य लोक में जिस कठोर विधाता ने तुम्हें भेजा है, वह कौन है? तुम तो कोमल एवं अमर हो, तुम्हें इस कठोर एवं मर्त्य लोक में भेजकर निश्चय ही उस विधाता ने तुम्हारे साथ अन्याय किया है। खैर, अब जो कुछ हुआ सो ठीक है, अब हे सौन्दर्य एवं भोलेपन के संसार फूल! आपत्तियों को सहन कर भी सदैव हँसते (खिलते) रहो, इसी में तुम्हारी सहायता है।

अलि से

इन आँखों ने ....अधीर नहीं।

शब्दार्थ- नेह=प्रेम। साध=इच्छा। मूक=मौन।

प्रसंग कवियित्री भौंरे के कछुध-रूप की ओर संकेत करती हुई दृढ़ प्रेम के बारे में अपने विचार प्रकट करती हैं और सांकेतिक भाषा में झूठे प्रेमियों को एक शिक्षा देती है।

सरलार्थ हे भौंरे (छलिया) इन मेरी आँखों ने कभी किसी व्यक्ति विशेष की प्रतीक्षा नहीं की है, क्योंकि इनमें कभी भी प्रेमाश्रु बनकर नहीं ढुलके हैं। मेरे प्राणों की जो मौन (शांत) व्याकुलता (छिपी हुई पीड़ा) है, वह कभी भी मिट जाने की (समाप्त हो जाने की) अभिलाषा नहीं करती है।

विशेष महादेवी को वेदना अतिप्रिय है। वह उनके जीवन के साथ आई है और जीवन के साथ ही उसे विदा करने की वह इच्छुक हैं। यही विचार उन्होंने यहाँ व्यक्त किया है, जो कि उन्होंने अपनी अन्य कई कविताओं ने भी किये हैं जैसे 'मैं नीर भरी दुख की बदली।' आदि।

अलि छोड़ी न..............................पीर नहीं।

शब्दार्थ अलि=भौंरा। तरणी=नाव। मादक=नशीली।

सरलार्थ हे भौंरे। अपनी जीवन रूपी नाव मैंने कभी भी उस संसार रूपी सागर में नहीं छोड़ी है, जिसका कि कोई किनारा नहीं है, अर्थात् असीमित साहस नहीं किया है। मैंने आज तक वह देश भी नहीं देखा है। जहाँ मादक पीड़ा, प्रियतम से भी अधिक मोहक है।

जिसकी मरु भूमि....................रीति नहीं।

शब्दार्थ मरुभूमि = रेगिस्तान। मेघव्रती=चातक, पपीहा। प्रतीति=विश्वास। निभाह=निर्वाह, व्यतीत करना। रीति= नियम, पद्धति।

सरलार्थ जिसने समुद्र के जल को इस प्रकार त्याग दिया मानो वह जल हीन रेगिस्तान हो, उस चातक जैसा मुझमें विश्वास करने की क्षमता नहीं है (चातक चाहे कितना ही प्यासा हो पर स्वाति-नक्षत्र में हुई वर्षा के अतिरिक्त और कोई पानी नहीं पीता है)। जो पतिङ्गा जलकर दीपक में ही मिल गया (प्रेम के कारण) मैंने कभी भी उससे भी जीवित रहने के नियम नहीं पूछे अर्थात् मैंने किसी का अनुकरण नहीं किया वरन् अपना नवीन मार्ग बनाया।

मतवाले चकोर................प्रीति नहीं।

शब्दार्थ अकिञ्चन = दीन, तुच्छ। मधु = पराग। तृप्ति = पूर्ण संतोष।

सरलार्थ उस मतवाले चकोर से (प्रेम में दीवाने) मैंने कभी भी उसके प्रेम के राज्य के नियम नहीं सीखे। फिर, हे तुच्छ भौंरे ! तू तो केवल पराग का दीन भिखारी ही है; तुझसे मैं क्या सीखूं। तू तो उस महान प्रेमी के सम्मुख कुछ भी नहीं है। जब तक स्थिर-प्रेम (एक से) नहीं होगा तब तक तृप्ति कैसे हो सकती है अर्थात् नहीं हो सकती। (भौंरा रस का लोभी होने के कारण कभी इस फूल पर बैठता है तो कभी उस पर। इसलिए उसका प्रेम अस्थिर कहा गया है।)

पथ में नित................अनखाती नहीं

शब्दार्थ स्वर्ण पराग = स्वर्णिम (पीला) पराग। दल = पंखुड़ियाँ। अनखान = क्रोध मिश्रित उदासीनता।

सरलार्थ हे भौंरे ! तेरे मार्ग में (प्रतीक्षा) नित्य प्रति जो (कमल की कली) स्वर्णिम (पीला) पराग बिछाती थी तथा तुझे देखकर जो अत्यधिक प्रसन्न होती थी और पलकों के समान अपनी कोमल पंखुड़ियों में पराग घोलकर कभी भी अनखाये बिना (सदैव प्रसन्न मन से) पिलाती रही है

किरणों में गुथी................आती नहीं।

शब्दार्थ मुक्तावलियां (मुक्ता + अवलियाँ) = मोतियों की लड़ी

माला, (ओस के बिन्दु) पंकज = कमल।

सरलार्थ पीछे के पद की बात पूरी करती हुई कवियित्री कहती है जो (कमल कली) सूर्य की किरणों में पिरोई हुई मोतियों की लड़ियों बिना किसी संकोच के सदैव ही पहनाती रही हैं (भौंरा प्रातः जब कमल से पराग लेने जाता है तो उसका अग्रभाग जिसमें गर्दन भी होती है ओस कणों से भीग जाता है)। हे भौंरे अब गुलाब की मादकता में इतना मस्त हो गया कि उस सच्चे प्रेमी कमल को भी भुला दिया। ऐसा क्यों करते हो ?

करते करुणा-धन ....अथाह नहीं

शब्दार्थ करुण-घन = दया के बादल। निदाघ = ग्रीष्म-ऋतु। दाह = गर्मी, पीड़ा।

सरलार्थ उस प्रेम के देश में दया के बादल छाया करते हैं, वहाँ ग्रीष्म-ऋतु की गर्मी के समान, पीड़ा जलाने वाली प्रतीत नहीं होती अर्थात् प्रेम की पीड़ा जलाने वाली न होकर मधुर होती है। वहाँ आँसुओं की पवित्र धारा आकर मिलती है। पर वहाँ मृग-तृष्णा का अथाह समुद्र नहीं होता जो कि केवल भ्रम मात्र है अर्थात् प्रेम के कारण विह्वल विरही आँसू अवश्य बहाता है पर एकान्त में और सच्चे मन से; केवल संसार को दिखाने मात्र के लिए अपने ही साथ वह छल नहीं करता।

हँसता अनुराग.......................राह नहीं।

शब्दार्थ अनुराग प्रेम। इन्दु = चन्द्रमा। कुहू = अमावस्या की रात्रि। निबाह = निर्वाह, गुजर।

सरलार्थ उस प्रेम के देश में सदैव वही प्रेम का चन्द्रमा चमकता रहता है। (मृत्यु लोक में तो चांद अमावस्या के दिन छिप जाता है) पर उस देश में तो कपट (माया) की अमावस्या को स्थिर रहने का कोई साधन ही नहीं है। हे भौंरे तू यहाँ कहाँ भूला-भटका घूम रहा है; यह सच्चे प्रेम के देश का मार्ग नहीं है।

विशेष महादेवी वर्मा रहस्यवाद की श्रेष्ठ कवियित्री हैं। यहाँ

भौंरा (मन), गुलाब (संसारी मोह), कमल (सच्चा प्रेम का प्रतीक, विष्णु का आधार) मैं या ये आँखें (आत्मा) प्रेम का देश (ब्रह्म की सत्ता का लोक) आदि मानें तो यह कविता बस और भी पूर्णतः घट जाती है।

रश्मि

चुभते ही.....................कुहुर-म्लान।

शब्दार्थ अरुण=लाल। मधु=मिठास, अमृत। निर्झर=झरने। कनक=स्वर्ण, सोना। विहगों=पक्षियों। प्रबाल=मूँगा (लाल रंग का होता है)। मृदुल=कोमल।

प्रसंग प्रस्तुत कविता महादेवी जी के चित्रात्मक-प्रकृति-वर्णन का उत्कृष्ट उदाहरण है। अरुणोदय की प्रथम किरण के निकलने पर संसार किस प्रकार यंत्र की भाँति स्वयंमेव परिवर्तित होकर गतिशील हो जाता है; इसका यह सजीव उदाहरण है।

सरलार्थ हे सूर्य-किरण! तेरे लाल किरणों रूपी बाणों के स्पर्श मात्र से, सृष्टि के कण-कण से सजल-संगीत (मधुर-संगीत), अमृत के मीठे झरनों के समान फूटकर बहने लगता है। इन स्वर्णिम किरणों में (प्रातः काल की कुछ-कुछ लाल और पीली रंग की), ऐसा विदित होता है मानो सोने का गहरा समुद्र जाग कर हिलोर लेने लगता है और उस गहरे-समुद्र (अपूर्व सौन्दर्य) में पक्षियों का मधुर संगीत (चहचहाना) इस प्रकार सुन्दर प्रतीत होता है मानो पानी के बुलबुले अत्यधिक संख्या में बहे जा रहे हों। आकाश एवं पृथ्वी के मिलने का स्थान अब तक जो कुहरे के कारण अंधकारमय थी अब वह मूँगे के कोमल किनारे के समान प्रतीत होती है। (मूँगा कठोर पत्थर होता है। पर यहाँ वह रेखा कोमल है।

नव कुन्द-कुसुम.....................मूक तान।

शब्दार्थ कुन्द-कुसुम=एक प्रकार का श्वेत फूल। मेघ-पुञ्ज=बादलों का समूह। वितान=मण्डप। इन्द्र-धनुषी=रंग-बिरंगे। हिम-

बिन्दु=ओसकण। प्राण=वायु। तिमिर गात=अंधकार रूपी शरीर। रात का सोया संगीत (सूर्य के छिपने के साथ-साथ जब कमल का फूल बंद हो जाता है तो भौंरा उसी में बन्दी बन जाता है और रात भर चुपचाप सोया रहता है। प्रातः पुनः गुञ्जार करने लगता है।

सरलार्थ अब तक जो बादल श्वेत-पुष्प के समान सफेद थे वे अब (प्रातः काल) पृथ्वी के चारों ओर रंग-बिरंगे तम्बू के समान छाये हुये प्रतीत होते हैं। सजल वायु, कोमल कलियों को चटकाने का मधुर संगीत करके, उस पर रखे ओस के बिन्दुओं को हिलाती है। (यह कहा जाता है कि फूल खिलते समय चटकने का शब्द करता है जो कि संगीतमय होता है।) स्वर्णिम प्रभात में अपने काले शरीर को (भौंरा काला होता है) धोकर भौंरे, रात को जिस संगीत को बन्द कर दिया था फिर से उसे ही दुहराने लगते हैं।

सौरभ का फैला ....अजान।

शब्दार्थ- केश-जाल=बालों का समूह, घना। समीर=वायु। विहार=भ्रमण। नव-कुमार=बच्चों।

सरलार्थ प्रातःकाल वायु रूपी परियां, सुगन्धि रूपी घने बालों को फैला कर भ्रमण करती है अर्थात् वायु सुगन्धि को फैलाती हैं। तितली के कोमल बच्चे झूम-झूम कर (आनन्दित होकर) फूलों की केसर पीकर मतवाले बन जाते हैं और भोले-भाले पत्ते हिलकर मर्मर का मीठा संगीत आरम्भ कर देते हैं।

फैला अपने............ ....सुधि विहान।

शब्दार्थ स्वप्न पंख=कल्पना के पंख। खुमार=नशा, मस्ती। अश्रु-हास=दुख-सुख। सुधि=स्मृति।

सरलार्थ- सूर्य की किरणों के निकलते ही रात्रि रूपी नींद अपने कल्पना के कोमल पंख फैलाकर, क्षितिज की दूसरी ओर उड़ कर चली गई अर्थात् अब एक गोलार्द्ध के व्यक्ति जाग गये क्योंकि यहां दिन हो गया और दूसरे गोलार्द्ध के लोग अब सो रहे होंगे

क्योंकि वहां, अब रात्रि आरम्भ हो रही होगी। कमल के फूल अभी तक जो अध खुले हैं वह इसलिये कि उन्हें कोई भूली बात (प्रेम के दिन) याद आ रही है, जिसके कारण कि वह मस्त प्रतीत हो रहे हैं। यह चतुर चित्रकार के समान जो स्मृति का सवेरा है वह दुख (ओसकण) सुख (फूल की मुस्कान) का आधार लेकर हमारे हृदयों को रंज रञ्जित कर रहा है। अर्थात् हमारे मन में भिन्न-भिन्न प्रकार की आशा एवं कल्पना जागृत कर रहा है।

संसार

निश्वासों का नीड़ ....है संसार।

शब्दार्थ- निश्वासों = दुखभरी आह। शयनागार = सोने का घर। मुक्तावलियों = मोतियों की लड़ी, तारागण।

प्रसंग यह संसार विविधता तथा विरोधी तत्वों से पूर्ण है। फलस्वरूप जो जिस दृष्टिकोण से उसको देखता है, उसे उसमें वही गुण एवं विशेषतायें दिखाई देती हैं। कवियित्री ने विभिन्न प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण करके अपने विचार व्यक्त किये हैं :

सरलार्थ -प्रातःकाल का चित्रण करती हुई कवियित्री कहती हैं- जब (प्रातःकाल) दुखभरी आहों का घोंसला, रात्रि के सोने का स्थान बन जाता है अर्थात् प्रातःकाल जब रात्रि समाप्त हो जाती है और शीतल-मंद-सुगन्द वायु के रूप में वह दुखभरी आह लेती है। उसी समय तारागण के जो सुन्दर तोरण हैं, उन्हे भी कोई तोड़कर लूट ले जाता है (तारे छिप जाते हैं); उस समय (प्रातः) बुझते (छिपते) तारागणों की जो मौन पीड़ा है वह आँसूओं (ओसकण) के द्वारा यह प्रकट कर देती हैं कि तारागणों के सामन ही यह संसार भी बहुत ही क्षणिक है ?

हँस देता ....अस्थिर है।

शब्दार्थ अञ्चल = गोद। बिछलन = फिसलना, रपटना।

सरलार्थ- अपनी गोद रूपी आकाश में, जब प्रात काल रोती

फैलाकर (लालिमा विखेर कर) हँसता है (सुन्दर प्रतीत होता है); जल की लहरों पर जब भोली-भाली (बालसूर्य की) किरणें फिसल कर मिलने के लिये मचल पड़ती हैं; उस समय फूल की कलियाँ कोमल पत्तों के घूंघट को चुपचाप उठाकर पराग भरी पंखड़ियों से कहती हैं कि हमारे समान यह संसार कितना अधिक नशीला है ?

देकर सौरभ............निष्ठुर है संसार।

शब्दार्थ आँखों=फूल की पंखड़ियां। सार=तत्व। मर्मर=पत्तों के हिलने का शब्द।

सरलार्थ कुम्हलाये हुये फूल अपनी सुगंधि को फैलाकर जब वायु से प्रश्न करते हैं कि जिस की प्रतीक्षा की, जिसको सुख पहुँचाया, वही हमारी आंखों रूपी पंखुड़ियों में धूल क्यों भर देता है, अर्थात् धोखा क्यो देता है अथवा सौन्दर्य-बिहीन क्यों बना देता है ? हमें मुरझाया और कुरूप देख कर जब भौंरों का सङ्गीत यह मीठी ध्वनि करता है कि अब इन मुरझाये फूलों में कुछ भी तत्व नहीं है, उस समय पत्ते सरसर शब्द करके मानो रोते हुये कहते हैं कि यह संसार कितना अधिक कठोर है ? अर्थात् अत्यधिक निर्मम है।

स्वर्ण वर्ण से..............मतवाला संसार।

शब्दार्थ- स्वर्ण वर्ण=सुनहले अक्षर, सुनहली किरण। गोधूली =संध्या का समय।

सरलार्थ जब सुनहली अक्षरों (सूर्य किरणों) के द्वारा दिन अपनी हार लिख जाता है अर्थात् जब सूर्य छिप जाता है। उस समय संध्या अपनी जीत बनाये रखने के लिये आकाश के (प्रकाशित करने) प्रांगण में अनगिनती दीपकों रूपी तारे प्रकाशित कर देती है। उस समय उस पार का (दूसरी दिशा का) अर्थात् पूर्व दिशा में छाया हुआ अंधकार का समुद्र उफन-उफन कर तथा उसके (संध्या के) भोलेपन पर हँसकर कहता है कि यह संसार अपने अतीत काल की विशेषताओं पर ही अभी तक मतवाला (पागल, घमंडी) बना हुआ है। अर्थात वर्तमान इसका विशेषतारहित एवं भविष्य

अन्धारमय है (विशेषकर भारतवर्ष)।

स्वप्न लोक के........................पागल संसार।

शब्दार्थ स्वप्न लोक के फूल = मधुर कल्पना, यथार्थ से दूर।

सरलार्थ कवियित्री कहती है जब मेरे पागल प्राण मधुर एवं कोमल कल्पनाओं द्वारा अपने जीवन का निर्माण करते हैं अर्थात् जब मैं उन्नति करने की केवल कल्पनामात्र ही करती रहती हूँ और जब मैं (अबोध) यह सोचती हूँ कि हमारा राज्य (यह संसार) अमर (स्थायी) है; उस समय न जाने वह कौन अज्ञात् सत्ता है जो मधुर संगीत के साथ करुण गीत गाती है कि यह संसार कितना अधिक पागल (मूर्ख) है अर्थात संसार की मूर्खता पर (अमर रहने की) उस सत्ता को दया आती है। (कोई अज्ञात् सत्ता है जो भूले मानव को इस संसार की अस्थिरता की ओर संकेत करती रहती है)।

हरिवंशराय 'बच्चन'

जीवन-परिचय- आपका जन्म प्रयाग में २७ नवम्बर सन् १९०७ में हुआ। १९३० के असहयोग आन्दोलन में आपकी शिक्षा छूट गई। फलतः इलाहाबाद के अग्रवाल विद्यालय में आप अध्यापक हो गये। कुछ समय पश्चात् प्रयाग विश्व-विद्यालय से एम० ए० (अंग्रेजी) कर लेने के पश्चात् आप वहीं पर अध्यापक हो गये। और अभी तक वहीं पर हैं।

शैली- बच्चन जन्म रुचि के प्रमुख कवि हैं। वे हिन्दी में 'हालावाद' के एक मात्र प्रणेता एवं उपासक रहे। उर्दू साहित्य से प्रभावित होकर तथा उमर खैय्याम की रुबाइयों से प्रेरित होकर उन्होंने खड़ी बोली कवितायें भी 'मदिरालय' साकी वाला 'प्याला' तथा 'पीने वाला' की रचना की। अपने व्यक्तिगत जीवन को काव्य में जिस सचाई के साथ 'बच्चन' उतारते हैं वैसी सचाई तथा सरलता अन्यत्र नहीं मिलती।

'हालावाद' को लेकर 'बच्चन' तूफान की तरह आये और उसी भाँति चले गये। अतः 'हालावाद' केवल आप ही तक सीमित रहा। स्वयं 'बच्चन' जी भी अब 'हालावाद' को छोड़ जन-जीवन की ओर झुक गये हैं। बंगाल के अकाल से उत्पीड़ित जनता, कवि की रंगीली कल्पनाओं को एक चुनौती थी फिर क्या था कवि ने बंगाल के अकाल पर तथा मध्यवर्गीय सर्वसाधारण के जीवन पर कवितायें लिखीं जो अपने आकार प्रकार दोनों में ही महत्वपूर्ण हैं। एक ओर तो आपके काव्य में अपूर्व आशा एवं उत्साह मिलता है तो दूसरी ओर गहन निराशा। इस प्रकार आपका हिन्दी गीत-काव्य में एक अनूठा स्थान है।

आपकी लोक-प्रियता का सबसे प्रधान कारण आपकी सरल भाषा तथा सीधी अभिव्यक्ति की शैली है। छायावादी कवियों की भाषा अत्यन्त कृत्रिम, क्लिष्ट हो गई थी। साहित्यिकता के बोझ से वह संस्कृत-प्रधान हो गई थी। परिणाम-स्वरूप साधारण पाठक के लिए रसास्वादन करना तो दूर रहा, पर उसे समझना भी उनके लिए कठिन हो गया। 'बच्चन' ने भाषा के इस स्वरूप के प्रति सक्रिय असन्तोष प्रकट किया और इस दृष्टि में उनका महत्व और भी बढ़ जाता है। उनकी लोकप्रियता का दूसरा कारण कवि-सम्मेलनों में पढ़ने का मधुर ढंग है जिसे सुनकर श्रोता झूम जाते हैं।

ग्रन्थ: निशा-निमंत्रण, मधुशाला, मधुबाला, सतरंगिनी आकुल एकान्त संगीत, मधुकलश, तेरा हार आदि।

आशे !

(१) भूल तब.......... .....तेरा ध्यान।

प्रसंग: मानव जब-जब निराश हो जाता है तब-तब आशा उसके जीवन में एक अपूर्व उत्साह भर देती है और फिर वह दृढ़ होकर जीवन की कठिनाइयों का सामना करती है, विषमताओं से जूझता

है। इसी बात को सीधे-साधे ढंग से बच्चन जी कहते हैं -

सरलार्थ हे आशादेवि! मैं जब-जब तेरा ध्यान करता हूं, तब तब अपने अपार कष्टों को भूल जाता हूं। हृदय में जो निराशारूपी पतझड़ छाया होता है उस समय उसका भी अन्त हो जाता है और हृदय में पुनः वसंत छा जाता है अर्थात् निराशा दूर हो जाती है और अपूर्व उत्साह आजाता है। मेरा उदास मुख फिर एक नवीन तेज से चमक उठता है।

(२) पथिक जो..... ....करता प्रस्थान।

सरलार्थ हे आशादेवि! जब पथिक तेरा ध्यान करता है अर्थात् जब उसमें आशा जाग्रति होती है, तब वही यात्री जोकि साहस खो कर निराश बैठा था, जिसे कि अपना जीवन सार-स्वरूप (व्यर्थ) प्रतीत हो रहा था पुनः कमर कस कर (दृढ़तापूर्वक) तैयार हो जाता है और फिर उठकर आगे चल देता है।

(३) डूबते पा..................कार्य महान।

सरलार्थ हे आशादेवि! तेरा ध्यान करने से तो डूबते हुए को सहारा मिल जाता है, और निरर्थक प्रतीत होने वाला जीवन उसके लिए सरस (सार्थक) प्रतीत होने लगा है; संसार पुनः सार्थक हो जाता है और बड़े-बड़े कार्य सरलता से पूर्ण हो जाते हैं।

(४) शक्ति का..................जीवन जलयान।

सरलार्थ हे आशादेवि! तेरे स्मरण करने से थके व्यक्ति में पुनः एक नई शक्ति का संचार होने लगता है और फिर उसे कुछ कुछ किनारा दिखाई पड़ने लगता है (विश्वास जगता है), वह पुनः साहस करके पतवार हाथ में लेकर जीवन रूपी नाव को खेने लगता है अर्थात् पुनः कार्य-संलग्न होकर जीवन में सफलता पाने के लिए प्रयत्न करने लगता है।

सुषमा

(१) किसी समय.................ही ठहराये।

शब्दार्थ- उपास्यदेवी=इष्टदेवी। त्रय-काल=तीनों काल (भूत, वर्तमान और भविष्य)

प्रसंग ज्ञानि, कवि और तीनों अपने-अपने दृष्टिकोण से सुन्दरता की परिभाषा बताते हैं। किन्तु सामान्य व्यक्ति के मतानुसार सुन्दरता वही है जो आनन्द प्रदान करे। बच्चन जी का भी यही दृष्टिकोण है।

सरलार्थ—किस समय ज्ञानी, कवि और प्रेमी तन एक स्थान पर मिल गये। इन तीनों का सुन्दरता से ही अपने मनचाहे फल की प्राप्ति हुई थी। इन तीनों की भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों कालों की इष्ट देवी सुन्दरता ही थी। परन्तु सुन्दरता की परिभाषा तीनों ने भिन्न-भिन्न रूप में निश्चय की।

(२) वह सुषमा.....................तुझे लिया।

शब्दार्थ उन्मत्त=मतवाला। आत्मसात्=अपने में विलीन कर लेना, एकाकार।

सरलार्थ ज्ञानी ने कहा="यदि वह तुमको (मानव को) प्रकाश (ज्ञान) न दे सके तो वह सुन्दरता नहीं कही जायगी।" फिर कवि बोला "यदि वह तुमको (मानव को) मतवाला न बनादे (आनन्द-विभोर न करदे) तो वह सुन्दरता नहीं कहलायेगी।" ज्ञानी और कवि के विचारों को सुनकर प्रेमी आहें भरकर बोला "यदि वह तुमको अपने में लीन न करले (एकाकार न करले) तो वह सुन्दरता नहीं कही जायगी।"

(३) एक व्यक्ति .... मैंने पाया।

शब्दार्थ मूढ़ों=मूर्खों। निकट=समीप।

सरलार्थ एक सामान्य व्यक्ति भी उनकी बातें सुनने के लिए चला आया। जब वे तीनों अपने-अपने विचार व्यक्त कर शांत होगये

तब वह सामान्य व्यक्ति दृढ़ता पूर्वक बोला- "अरे मूर्खो ! मैं अभी तक उसे सुन्दरता नहीं समझता, जिसके समीप पहुँच कर हमें आनन्द की प्राप्ति न हो।"

(४) एक बिंदु ....परिभाषा थी।

सरलार्थ अब तीनों कवि, ज्ञानी एवं प्रेमी को इस एक ही सिद्धान्त पर मिल जाने की (सहमत होने की) आशा थी। कवि अब प्रश्न करता है तो क्या अंतिम परिभाषा ही सुन्दरता की सर्वश्रेष्ठ परिभाषा थी ?

निशा-निमन्त्रण

(१) दिन जल्दी.................... चलता है।

शब्दार्थ ढलता है=व्यतीत होता है, अस्त होता है। पंथी=राही पथिक।

प्रसंग संध्या हो रही है। सभी अपने स्वजनों से मिलने की इच्छा लिए अपने गन्तव्य तक पहुँच रहे हैं। पर कवि की पत्नी मर चुकी थी अतः वह अपनी वियोगावस्था से व्याकुल है।

सरलार्थ दिन (सूर्य) जल्दी-जल्दी व्यतीत हो रहा है। यह देख कर पथिक सोचता है कि मार्ग में ही कहीं रात न हो जाय और फिर गन्तव्य भी तो अब कोई दूर नहीं रहा है, यह बात सोचकर दिनभर चलने के कारण थका पथिक भी जल्दी जल्दी चलने लगता है। दिन शीघ्र अस्त हो रहा है।

(२) बच्चे प्रत्याशा.................... चंचलता है।

शब्दार्थ -प्रत्याशा=प्रतीक्षा।

सरलार्थ छोटे-छोटे बच्चे प्रतीक्षा में होंगे, घोंसलों से झाँक कर देख रहे होंगे, यह विचार चिड़ियों के पंखों में अत्यधिक गति तेजी भर देता है अर्थात् वह शीघ्र गति से उड़ने लगती हैं। दिन शीघ्र अस्त हो रहा है।

(३) मुझसे कौन.............. विह्वलता है।

सरलार्थ कवि यहाँ पर पत्नी-वियोग के कारण दुखी है। यहाँ वह निराश है- मुझसे मिलने के लिये कौन व्याकुल है ? अर्थात् कोई भी तो नहीं है। जब कोई प्रतीक्षा में ही नहीं है तो फिर मैं किसके लिये शीघ्र चालू यह प्रश्न मेरे पैरों की गति को धीमा कर देता है (निराश कर देता है) और हृदय में अत्याधिक व्याकुलता भर देता है। दिन शीघ्र अस्त हो रहा है।

रात आधी हो गई है।

(१) जागता मैं............. सो गई है।

शब्दार्थ सुधियों=स्मृतियों।

प्रसंग कवि पत्नी-वियोग के कारण पीड़ित है और इसी कारण उसे आधी रात व्यतीत होने पर भी नींद नहीं आती। ऐसे शान्त वातावरण में प्रकृति के उपादान ही शान्ति एवं धैर्य दिलाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

सरलार्थ इस अर्ध रात्रि के समय जबकि सारा संसार सो रहा है और स्वप्निल लोक में उसका मन भ्रमण कर रहा है, तब मैं (कवि) आँख खोले हुए अतीत (पिछले) के सुखमय दिनों को स्मरण करता हुआ जाग रहा हूँ। अब आधी रात व्यतीत हो गई है।

(२) सुन रहा हूँ.............................भिगो गई है।

शब्दार्थ द्रुमों=वृक्षों। गात=शरीर।

सरलार्थ मैं ऐसा सुन रहा हूं कि शान्ति इतनी अधिक है जितनी कि ओस की बून्दें टपक रही हैं। उन ओस कणों से रात वृक्षों के शरीर को गीला कर रही है। अधीरात व्यतीत हो गई है।

(३) दे रही..........................सो गई है।

शब्दार्थ दिलासा=धीरज, सान्त्वना।

सरलार्थ पिछले पहर की चाँदनी, जोकि मेरे पास ही आकर सो गई है (अतीत स्मृति की पूर्ण आशा) झरोखे से थोड़ी सी आकर

मुझे कितनी अधिक सान्त्वना दे रही है अर्थात् बहुत धीरज बंधा रही है। आधी रात व्यतीत हो गई है।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

जीवन-परिचय श्री 'अंचल' के पिता पं० मातादीन शुक्ल 'माधुरी' के सम्पादक रह चुके हैं इससे स्पष्ट है कि (अंचल) की कविता अपने अनुकूल वातावरण को पा कर ही बढ़ी है। आजकल आप जबलपुर के राबर्टसन कालेज में अध्यापक हैं।

शैली 'अंचल' का काव्य छाया की अस्पष्टता, काल्पनिकता, तथा अनैहिकता के प्रति स्पष्टता यथार्थ तथा एवं ऐहिकता का विद्रोह है।' जिस प्रकार स्थूल के प्रति सूक्ष्म के विद्रोह ने छायावाद को जन्म दिया उसी प्रकार सूक्ष्म के प्रति वर्तमान समस्याओं के विरोध स्वरूप 'अंचल' के काव्य ने जन्म पाया है 'अंचल' किसी वाद विशेष के प्रतिपादक न हो कर भी 'प्रगति वादी' कहे जा सकते हैं। सामाजिक-संघर्ष एवं विषमताओं का यथार्थ चित्रण इनके काव्य में मिलता है। विषमताओं को दूर करके समता का सुखद सवेरा लाने के लिये कवि निरन्तर प्रयत्नशील है। इस लगन का कारण उनका दृढ़ विश्वास तथा निश्चित उद्देश्य का होना ही है।

जहाँ कवि एक ओर संघर्ष-मय जीवन का चित्रण करता है वहाँ दूसरी ओर हृदय की कोमल कल्पनाओं को भी वह छूता है। उनी प्रणयगीतों में उसकी तरुणाई स्नेह के कोमल कठिन आघातो से रीझ खीझ कर कभा मुसकराती है तो कभी कराह उठती है। अधिकतर वियोग ही उनके काव्य में प्रधान है।

भावाभिव्यक्त की शैली एवं छंद्रों में कवि ने नये-नये प्रयोग किये हैं। तीव्र अनुभूति, मार्मिक भाव और प्रवाहमयी भाषा यह 'अचल' की कविता के प्रधान गुण हैं।

कवि होने के साथ-साथ अंचल कहानीकार, उपन्यासकार एवं समालोचक भी हैं।

अन्य मधूलिका, अपराजिता, करील, किरणबेला, लाल चूनर।

वन फूल

फूल कांटों में........................का सपन।

शब्दार्थ सुरभिवाही=सुगन्धि ले जाने वाला। फुल्ल=प्रफुल्लित, खिला हुआ। सपन=(शु० स्वप्न)=कल्पनायें।

प्रसंग 'अंचल' प्रगतिवादी तरुण कवि हैं। अतः वह जीवन की सार्थकता, संघर्षों का दृढ़ता से सामना करने में ही मानते हैं। सुख और वैभव प्रगति के सबसे बड़े शत्रु हैं। प्रकृति के उपादानों का उदाहरण देकर यहां वह यही सिद्ध करते है।

सरलार्थ फूल जो कि इतना कोमल होता है, वह कांटों (कष्टों) में प्रसन्न-चित्त हो खिलता रहा पर सुख-शय्या पर आकर मुरझा गया (श्री हीन हो गया)। वह फूल कांटों में उषा के सौन्दर्य के समान ही जगमगाता हुआ सुन्दर प्रतीत हो रहा था। उसको छू कर सुगन्धित वायु अत्याधिक आनन्दित हो बह रही थी। वह अर्ध मुकलित फूल वसन्त ऋतु में पूर्ण रूप से खिलने के स्वप्न (सुखमय जीवन की कल्पनायें) छिपाये था। परन्तु जब तक उसे डाली से तोड़ कर अलग कर दिया गया। वही फूल जो कांटों में खिल रहा था सुख शय्या-पर आकर मुरझा गया।

प्रखर रवि का........................एक दिन।

शब्दार्थ प्रखर रवि=तेज सूर्य, दोपहर का सूर्य। झंझा=तूफान, आंधी। कामी=इच्छुक।

सरलार्थ– दोपहर के सूय की कठिन (झुलसा देने वाली) गर्मी और तीव्र आँधी के असहनीय 'कठिन झोंके उस संघर्ष की इच्छा रखने वाले तरुण पुष्प को उदास (निराश) न कर पाये अर्थात् वह मुरझाया नहीं। परन्तु वही कोमल संघर्ष-प्रिय फूल झाड़ी से अलग हो कर एक दिन भी खिला हुआ न रह सका। वही फूल जो कांटों में खिल रहा था सुख-शय्या पर आ कर मुरझा गया।

जो अडिग रहता .... आघात में।

शब्दार्थ अडिग=स्थिर। अड़ा=दृढ़। प्रगति=उन्नति, विकास।

सरलार्थ—जो तारा भयङ्कर तूफान एवं घनघोर बरसात में भी स्थिर हो अपने स्थान पर दृढ़ रहता है वही शीतल एवं शान्त शरद् ऋतु की रात में टूट जाता है (जाड़ों में उल्कापात अधिक होता है) इससे सिद्ध है कि जीवन की उन्नति भी संघर्ष एवं कष्टों में छिपी हुई है अर्थात् संघर्षशील तथा कष्ट-सहिष्णु व्यक्ति ही जीवन में प्रगति कर पाते हैं। फूल इसका जीता-जागता उदाहरण है जो फूल काटों में खिल रहा था वही सुख-शय्या पर आ कर मुरझा गया।

वर्षान्त के बादल

जा रहे .... को चले।

शब्दार्थ स्निग्ध=तरल, शीतल। कज्जलिनी=काली। निशा=रात्रि। उर्मियों=लहरों। स्नेह-गीतों=प्रेम के गीत, प्रणय। राग-रंजित=प्रेम में डूबी। शृङ्गार-राजित=शृङ्गार करके शोभित।

प्रसंग—वर्षा बीत चली है। पूरे वर्ष के लिये बरसाती बादल आकाश से जा रहे हैं। प्रकृति के सभी उपादान उनको विदाई दे रहे हैं। बादल अपनी प्रियतमा से मिलने की उत्सुकता अपने सभी प्रियजनों एवं बन्धु-बांधवों को छोड़े जा रहे हैं।

सरलार्थ वर्षा बीत चली है अतः अब बादल जा रहे हैं। ये वर्षान्त के बादल पूरे एक वर्ष के लिये नीले रंग के समुद्र से अलग हो रहे हैं तरल एवं काली रात की लहरों से विलग हो रहे हैं, प्रेम के गीतों की मधुर पंक्ति के समान, प्रेम में डूबी हुई लहरों से बिछुड़ रहे हैं, और आकाश की शोभा को बढ़ाने वाली अप्सराओं के समान शोभा वाली बिजलियों से अलग हो रहे हैं। पता नहीं इन सबसे बिछुड़ कर ये बादल किस घोर (घने) वन को चले जा रहे हैं।

अब न रुकते .... में लीन होंगे।

शब्दार्थ गगनचारी=आकाश में चलने वाले, बादल ।

सरलार्थ ये आकाश विहरी बादल अब तनिक भी नहीं रुक रहे हैं। इनकी आंखों में नींद भरी हुई है (क्योंकि वर्षा के चार महीनों में लगातार बरसते रहे हैं, सोये नहीं) इसीलिये थकान के कारण चाल में धीमापन है। न जाने पर्वत की किस गुफा में (सबकुछ छोड़ कर तपस्या मे) लीन हो जायेंगे। (बादल पर्वतों से टकरा कर बरसते हुये समाप्त हो जाते हैं)।

सन्ध्या-विहगों-से ....याद आ गई।

शब्दार्थ डैने=पंख। विरहणी=प्रियतम (पति प्रेमी) से वियोगिनी स्त्री। विरहियों प्रियतमा (पत्नी, प्रेयसी) से वियोगी पुरुष। दाह=प्रेम की पीड़ा, छटपटाहट। अनिमेष=टकटकी लगाये बिना पलक बन्द किये। हरित-वसुधा=हरी-भरी दूब से भरी। निभृत=एकान्त, शान्त।

सरलार्थ सन्ध्या के समय दिन भर के थके घर को लौटते हुए पक्षियों के समान, बोझिल पंख लिये ये बादल जा रहे हैं। इनके साथ ही साथ असंख्य वियोगिनियों एवं वियोगियों की प्रेम पीड़ा भी जा रही है (समाप्त हो रही है)। वियोगियों को वर्षा ऋतु एवं शरद ऋतु में विरह असह्य हो जाता है)। हरी-भरी पृथ्वी अपलक नेत्रों से इन बादलों को बिदाई दे रही है। न जाने बहुत दूर स्थित एकान्त कुटी में रहने वाले किस पूजनीय की इन बादलों को याद आ गई है।

भर गई आ .... मन्द गति।

शब्दार्थ शारदीया=शरद काल की। आलोक-पथ=प्रकाश का रास्ता, आकाश।

सरलार्थ इन बादलों के खाली कोनों में आ कर न जाने किस का कमल वन में जागती हुई शरद ऋतु की करुणा एवं चंचल (तीव्र) रोने का शब्द आकर भर गया है। (किस वियोगिनी की विरह पीड़ा इनने सुन ली है।)

हैं सलिल-प्लावित........................ फुल्ल खेत।

शब्दार्थ सलिल-प्लावित=पानी में डूबे हुये। वेग-विह्वल= व्याकुल गति से। नमन=प्रणाम।

सरलार्थ नदी, नद, (बड़ी नदी), तालाब एवं डबरे सब पानी से ऊपर किनारे तक भरे हैं। पहाड़ों से निकलने वाले झरने व्याकुल गति से झर रहे हैं। नवीन अंकुरों से उगे हुए फूले-फले खेत, दुखी मन से इन बादलों को विदा कर रहे हैं और फूल रूपी किरणों से नमस्कार करके ये खेत उनकी ओर देख रहे हैं।

छोड़ उत्सुक........................ वर्षान्त के बादल।

शब्दार्थ व्यथातुर=पीड़ा से व्याकुल। सस्यशालि=हरे-भरे धान के खेत। आगार=घर। विराम=आराम। नव्य=नया। आकांक्षा=इच्छा, कामना।

सरलार्थ उत्सुक भाइयों के नेत्रों के प्यार के तथा छोटे-छोटे पौधों एवं हरे भरे धान के खेतों को छोड़ कर चले जा रहे हैं। वह अन्धकार से पूर्ण गहरी गुफा, जो कि थके हुये बादलों को मोहित करके आराम देने वाली है, जिससे मिलने के लिये जंगली जानवरों के समान थके हुये चले जा रहे हैं न जाने कहाँ पर है। वह कौन है जिससे मिलने की प्यास ये अपने प्राणों में छिपाये हुये हैं? संसार में एक नया जीवन (प्राण) भर कर, कौन सी प्रियतमा की याद में घिरे हुये ये बादल जा रहे हैं? ये वर्षान्त के बादल नई-नई कामना लिये हुये जा रहे हैं।

मौन-ममता

शीश के ऊपर........................ होती विजय है।

शब्दार्थ मौन ममता=मौन प्रेम। अनकहे=मौन। मूक= मौन। साकार=स्वरूप वाला प्रत्यक्ष। वर=वरदान। दुर्दम=कठिन

प्रसंग दृढ़ संकल्प मनुष्य को स्वभाविक शक्ति प्रदान करता है। कवि के विचारों में शक्ति की मौन-ममता ही मनुष्य को कर्तव्य-पथ

पर निरन्तर आगे करती रहती है। उसी शक्ति की छत्र छाया में रह कर वह संघर्षों का दृढ़तापूर्वक सामना करता है।

सरलार्थ कवि अज्ञात शक्ति को सम्बोधन करके कहता है हे अज्ञात शक्ति! तुम्हारे मौन आशीर्वाद की वाणी गूँजती रहती है जो कि मेरे जीवन की कमियों और कष्टों का मौन साथी है अर्थात जो अभावों और कष्टों में मुझे साहस बंधाता है। तुम्हारा असीमित वरदान मेरे सम्मुख मार्ग के समान प्रत्यक्ष दिखाई देता है। जहाँ पर कि कर्तव्य पालन करने की तथा कठिन उन्नति की सजीव धारा बहती है। अर्थात् जो मुझे सदैव कर्तव्य पालन करने के लिये तथा उन्नति के लिये प्रेरित करती रहती है। मुझे मार्ग में ठोकरें लगती हैं (वाधायें आती हैं) परन्तु फिर भी बार-बार गिर कर भी मैं सदैव उठता हूँ (निराश नहीं होता), क्योंकि मैंने अपने जीवन का एक उद्देश्य बना लिया है उसी धुन में बार-बार मिट जाने पर भी नवीन-निर्माण कर रहा हूँ। मुझे अपने जीवन में एक ही परंतु बल प्रदान करती है और वह यह है कि विघ्न-बाधाओं पर विश्वासी (दृढ़ सङ्कल्पी) व्यक्ति सदैव विजयी हो जाता है। मेरे शीश पर तुम्हारे मौन-प्रेम का अभय-वरदान है।

मार्ग के .... हाथ है।

शब्दार्थ अवरोध=बाधायें, रोक। अपराजेय=जो पराजित न किया जा सके, अजेय। अविनाशी=जो कभी भी नष्ट न हो, अमर। स्रोत=धारा। द्वैत=ईश्वर और जीव (दो) की अलग-अलग भावना।

सरलार्थ हे अज्ञेय शक्ति! तुम्हारे विश्वास के कारण मेरे मार्ग की बाधाओं रूपी चटानें, पिघल कर पानी बन जाती हैं अर्थात् कठिन से कठिन कार्य सरल हो जाते हैं। मेरे मार्ग में के कांटे मेरे लिये फूलों से भी अधिक कोमल बन जाते है अर्थात कठिनाइयाँ समाप्त हो जाती हैं हे अज्ञेय शक्ति! तुमने मुझे अभय वरदान देकर मुझे अजेय एवं अमर बना दिया है। तुमने दुखी हृदय के कष्टों को

दीपक के समान जलना सिखाया है अर्थात् मेरे हृदय का दुख ही दीपक की भाँति मुझे मार्ग दिखाता है। यह प्रेम की धारा कौनसी दिशा से आती है यह मैं भली भाँति जानता हूं। यही प्रेम की धारा मेरी शक्ति की बिखरी हुई धाराओं को संगठित करके एक नयी ज्योति भर देती है। केवल दृढ़ संकलप के कारण ही सम्पूर्ण सन्देह एवं अलगाव की भावना समाप्त हो जाती है। मेरे शीश पर तुम्हारे मौन प्रेम का अभय- वरदान है।

तुम कहीं भी.......................यह हृदय है।

शब्दार्थ मंगल कवच=कल्याणकारी रक्षक (कवच लोहे का बना हुआ होता था, जिसे प्राचीन काल में तलवार, भालों से बचने के लिए अपने पूरे शरीर पर पहन लेते थे)। संघर्ष-तक्षक=विरोध रूपी सर्प। भीति=भय। ढाये=गिराये=नष्ट करे। मेरु सा=सुमेरु पर्वत के समान।

सरलार्थ हे अज्ञात शक्ति! तुम कहीं पर भी हो पर तुम्हारा रक्षा-सूत मेरे हाथ में बंधा है। मुझे प्रतिपल ऐसा विदित होता है कि तुम मुझे पुकार रहे हो। तुम्हारी स्मृति का कल्याणकारी कवच मेरी भलाई करने वाला है। वह कल्याण समाज की विषमताओं को देख कर उत्पन्न निराशा मन के अंधकार को दूर कर देता है। विरोध रूपी सर्प फन उठाये हुए मुझे चारों ओर से घेरे खड़े हैं जिनकी कि फुफकार जीवन में बहुत दूर तक भयभीत करती रहती है अर्थात् कठिन आपत्तियाँ घेर लेती हैं। परन्तु सुमेरु पर्वत के समान दृढ़ विश्वास ही मेरे हृदय का अमर उत्साह है। मेरे सिर पर तुम्हारे मौन प्रेम का अभय वरदान है।

अन्तर्कथाएँ

अगस्त्य-ऋषि

ये एक महान तपस्वी थे। वृत्रासुर के मरने के पश्चात् सभी राक्षस समुद्र में रहने लग गये थे। ये राक्षस रात के समय समुद्र से निकल कर ऋषियों को खा जाया करते थे यह देख अगस्त्य ऋषि

ने आचमन करके समुद्र को बिलकुल सूखा कर दिया था। समुद्र के सूख जाने पर आतपी, वातपी राक्षसों को देवताओं ने मार डाला इसके बाद अगस्त्य ने समुद्र ज्यों का त्यों फिर भर दिया। मित्रावरुण ने अपना तेज निकालकर घड़े में रख दिया था; उसी घड़े में से अगस्त्य का जन्म हुआ था। इसी कारण इन्हें कुंभज (कुम्भ = घड़ा ज = जन्म) कहा जाता है।

अजामिल -इसने सम्पूर्ण जीवन भर बड़े घोर पाप किए थे। मृत्यु के समय उसने अपने पुत्र, जिसका कि नाम नारायण था, को बुलाया। यमदूतों ने सोचा कि मरते समय इसने नारायण (भगवान) का नाम लिया है। फलस्वरूप वे अजामिल को जीवित छोड़कर चले गये। भगवान के ऐसा प्रताप को जानकर वह हरिद्वार के समीप रहकर तपस्या करने लगा और मोक्ष पाई।

अहिल्या एक दिन इन्द्र ने कामवश होकर गौतम का भेष धारण कर अहिल्या का सतीत्व नष्ट कर दिया था। जब गौतम को इस घटना का पता लगा तो उन्होंने दोनों को श्राप दे दिया। फलतः अहिल्या पत्थर बन गई और इन्द्र के शरीर के सहस्र भाग हो गये। त्रेता युग में भगवान राम के चरण-स्पर्श होने से अहिल्या पुनः अपने रूप में हो मुक्त हो गई।

अश्वनी कुमार द्वय ये दोनों देवताओं के वैद्य हैं। इन्होंने च्यवन ऋषि का शरीर अमर कर दिया था। माद्री के भी इन्हीं वैद्यों की कृपा से नकुल और सहदेव नामक दो पुत्र उत्पन्न हुये थे।

गणिका यह जीव-जी नामक एक वेश्या थी। इसने एक तोता पाल रखा था, जिसे कि राम-राम पढ़ाया करती थी। गणिका के मरते समय तोते ने 'राम-राम' के शब्द दुहराये। इसी पर गणिका को मोक्ष प्राप्त होगई थी।

शबरी -शबरी भीलिनी थी। इसका शुद्ध नाम श्रावड़ी था। यह पंपासर के पास मतङ्ग ऋषि के आश्रम में रहती थी। भगवान राम ने

वनोवास के समय इसके झूठे वेर खाए थे, जिससे कि इसको मोक्ष प्राप्त हुई थी।

राहु-केतु समुद्र मंथन के पश्चात् जब भगवान मोहिनी का रूप धारण कर देवताओं को अमृत बाँट रहे थे, तब राहु भी देवताओं की पंक्ति मे आ वैठा था। चन्द्रमा और सूर्य ने भगवान से इसकी ओर संकेत कर भेद प्रकट कर दिया। इस पर भगवान ने अपने चक्र सुदर्शन से इसका सिर और धड़ को अलग-अलग कर दिया। इसके सिर का नाम 'राहु' और धड़ का नाम 'केतु' पड़ा। अपने पुराने वैर के कारण 'राहु-केतु' सूर्य चन्द्रमा को ग्रसते रहते हैं।

:समाप्त:

Printed at Sharda Press, Agra.